स्वतंत्र भारत

[सामयिक घटना-पूर्ण राजनीतिक उपन्यास]

लेखक

रायबहादुर पंडित शुकदेवविहारी मिश्र साहित्यवाचस्पति
और
श्रीपंडित प्रतापनारायण मिश्र
(मिश्रद्वय)

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, गौतमबुद्ध-मार्ग
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सं० २००७ वि०] [मूल्य ५)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

1. दिल्ली-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ, दिल्ली
2. प्रयाग-ग्रंथागार, ४०, कास्थवेट रोड, प्रयाग
3. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना

नोट—इनके अलावा हमारी सब पुस्तकें हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

भूमिका

मैं लेखक नहीं, पंडित नहीं, और फिर भी मुझसे इस पुस्तक की भूमिका लिखने के लिये कहा जाय, और ऐसी पुस्तक भी, जिसे हिंदी के प्रकांड पंडित लिखें। परंतु ऐसा होते हुए भी मैं अपने मित्रों के आग्रह को टाल नहीं सकता। मुझे हिंदी से प्रेम है, और मैं आज जब हिंदी को राष्ट्र-भाषा बनाने का कार्य सफल होने जा रहा है, अपना सौभाग्य समझता हूँ कि मुझसे भी हिंदी में लिखी पुस्तकों के संबंध में दो-चार टूटे-फूटे शब्दों में उसकी भूमिका लिखने के लिये कहा जाय।

मिश्रबंधुओं का स्थान हिंदी-जगत् में कितना ऊँचा है, उसके मुझे यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं। उनकी हिंदी-साहित्य-सेवा भी भुलाई नहीं जा सकती। उन्होंने हिंदी के साहित्य को अपनी लेखनी द्वारा कितना गौरव प्रदान किया है, वह भी सदा हिंदी-साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। प्रसन्नता की बात है कि मिश्रबंधुओं में से आज भी एक भाई वृद्ध होते हुए भी साहित्य की उसी तरह सेवा कर रहा है, जैसे अपनी युवावस्था में।

यह 'स्वतंत्र भारत' हमारे मित्र पंडित शुकदेवविहारी मिश्र साहित्य-वाचस्पति तथा इनके भतीजे पंडित प्रतापनारायण मिश्र का सातवाँ उपन्यास है। मिश्रजी के अन्य उपन्यासों के नाम हैं—(१) वीरमणि (सन् १९११, कथा चौदहवीं शती की), (२) चंद्रगुप्त मौर्य (सन् १९४९, कथा चौथी शती बी० सी० की), (३) पुष्यमित्र शुंग (१९४४, कथा दूसरी शती बी० सी० की), (४) विक्रमादित्य (१९४४, कथा पहली शती बी० सी० की), (५) चंद्रगुप्त-विक्रमादित्य (१९४२, कथा सन् चौथी शती की), और (६) उदयन (१९४८, कथा पाँचवीं शती बी० सी० की)। इनमें से नंबर १, २, ३ और ५ पंडित शुकदेवविहारी मिश्र ने अपने भाई डॉक्टर श्यामविहारी मिश्र के साझे में लिखे, नंबर ४ अपने भतीजे पंडित प्रतापनारायण मिश्र के साझे में, और नंबर ६ अकेले। ये सब ऐतिहासिक उपन्यास हैं, और नंबर १ को छोड़कर शेष के नायक सब अपने-अपने समय में भारतीय सम्राट् थे। नं० १ का नायक अलाउद्दीन खिलजी के समय का अध्यापक कुलपति था, तथा वर्तमान उपन्यास का नायक लखनऊ का एक वकील ऐडवोकेट है। ये अंतिम दोनो नायक पूर्णतया कल्पित पुरुष हैं, तथा शेष सब ऐतिहासिक सम्राट्। आत्मानुभव ग्रंथ भी शुकदेवविहारीजी ने अकेले लिखा है। इन सब ग्रंथों में समाज का शुद्ध ऐतिहासिक चित्रण अपने समयों के अनुसार है। यह ग्रंथ 'स्वतंत्र भारत' वर्तमान समय का ही है। हमारे मिश्रजी ने अपने इन सब ग्रंथों में भारतीय महत्ता के चित्रण करने का पूर्ण प्रयत्न विशुद्ध ऐतिहासिक रूप में किया है। बड़े हर्ष की बात है कि स्वतंत्र भारत के भी चित्रित करने का सौभाग्य इन्हें भारतीय दशा-परिवर्तन के कारण मिल गया है।

शुकदेवविहारीजी अवध में सबजज थे, तथा रियासत छतरपुर बुंदेलखंड में प्रायः १६ वर्ष प्रधान सचिव रहे। आपकी अवस्था अब ७० साल से कुछ ऊपर है, किंतु साहित्य-सेवा में आप अब भी प्रवृत्त रहते हैं। प्रतिवर्ष एक ग्रंथ लिख ही डालते हैं। स्वतंत्र भारत की रचना १३ जून, १९४६ से प्रारंभ होकर ६ अगस्त, १९४६ को समाप्त हुई। है तो यह उपन्यास ग्रंथ, किंतु इसमें लेखकोंवाला राजनीतिक विषयों का अध्ययन संसार-शक्तियों का प्रकट होना है, विशेषतया भारतीय राजनीति का। ग्रंथ में १२ परिच्छेद हैं, जिनमें कथा की डोर तो चलती ही है, साथ ही भारतीय राजनीतिक उन्नति भी भली भाँति चित्रित है। प्रथम परिच्छेद में कथा का प्रारंभ होकर महात्मा गांधी का पाठशालाओं-वाला सत्याग्रह कथित है। उपन्यास का नायक भारतभूषण शुक्ल निर्धन माता-पिता का पुत्र अपने ही परिश्रम से एम्० ए० तथा एल्-एल्० बी० पास करता है। उसके मुख्य मित्रों में राजपुत्र शैलेंद्रकुमार के अतिरिक्त अयोध्यादत्त द्विवेदी तथा मथुरादत्त पांडेय हैं। पांडेयजी का अनुचित संसर्ग मनोरमा-नाम्नी पाठिका से हो जाता है, और गर्भपात के संबंध में यह उसे विष दे देते हैं, जिससे वह मृत हो जाती है, किंतु इनके प्रतिकूल कुछ प्रमाणित नहीं होता। जब इन चारों मित्रों के सम्मुख युनिवर्सिटी छोड़ने के सत्याग्रह का प्रश्न आता है, तो दोनो ब्राह्मण-मित्र तो उसमें भाग लेते हैं, किंतु स्वयं शुक्लजी तथा राजपुत्र अलग रहते हैं। द्वितीय परिच्छेद में देश में द्वितीय संसारव्यापी महायुद्ध के पहले की राजनीतिक स्थिति दर्शायी जाती है, तथा सत्याग्रहादि के भी कथन होते हैं। अयोध्याप्रसादजी कांग्रेसी बनते हैं, और पंडियजी साम्यवादी। इधर भारतभूषणजी वकालत करने लगते हैं, तथा यह और राजकुमार विवाह करके गृहस्थ बनते हैं। तृतीय परिच्छेद में मिल के श्रमजीवियों के कथन तथा हड़ताल के विषय हैं। माधवीदेवी भी श्रमिकों की सहायिका बनती हैं। उन्हें स्वच्छंदता के विचारों से विवाह नापसंद है, न स्त्रियों का राष्ट्रीयकरण वह चाहती हैं, किंतु मित्रता के संबंध में मथुरादत्त से प्रेम हो जाता है। पीछे से इसे अनुचित समझकर आप मिल-मालिक कपूरचंद को सच्चा हाल बतलाकर उन्हीं की प्रार्थना से उनसे विवाह कर लेती हैं, तथा उनकी बेटी का विवाह अयोध्याप्रसाद के भ्राता वसुधाभूषण के साथ हो जाता है।

चतुर्थ परिच्छेद में आतंकवादियों का कथन है, जिनमें मथुरादत्त भी मिल जाते हैं, तथा भारतभूषण की गुप्त पुलीस से सूचना द्वारा पकड़े जाकर दस वर्षों के लिये दंडित होते हैं। भारतभूषण अपनी वकालत के बल पर इन्हें एक बार ऐसे ही अभियोग से छुड़ा भी चुके थे, किंतु इस बार इनके द्वारा रिवाल्वर की चोरी समझकर, नरहत्या बचाने के अभि-प्राय से मित्रता का भाव छोड़कर पुलीस द्वारा उन्हें पकड़वा देते हैं। आतंकवादियों का नेता एक ऐसी रूपवती विवाहिता कन्या का उद्धार करता है, जो अपनी सौतेली सास द्वारा पीड़ित की जा रही थी। भारतभूषण की सहायता से इस कन्या की छोड़-छुट्टी अपने बालक पति की प्रसन्नता के साथ उससे हो जाती है, और नेता आतंकवादियों का साथ छोड़कर उससे विवाह के पीछे सियालकोट में रहने लगता तथा सेठ कपूरचंद के व्यापार को वहाँ चलाता है। पंचम परिच्छेद में भारतीय भाग्योदय के नाम से स्वतंत्रता का वर्णन होता है, और छठे में पंजाबी तथा इतर मारकाटों के विवरण दिए जाते हैं। इसमें आतंकवादी नेता

को भी सहायता से सेठजी, राजा शैलेंद्रकुमार तथा भारतभूषण शुक्ल का पंजाब से उद्धार होता है। सप्तम परिच्छेद में भारतीय विविध पार्टियों के विचार अंकित हैं, तथा अष्टम में शुक्लजी के सुपुत्र का राजा साहब की कन्या से विवाह होता है, यद्यपि यह ब्राह्मण थे और वह क्षत्रिय। नवम और दशम परिच्छेदों में पश्चिमी बंगाल की राजनीतिक स्थिति के वर्णन हैं। वहाँ जाकर शुक्लजी राजनीतिक व्याख्यान देते हैं, तथा मथुरादत्तजी फिर से माधवीबाई से अपना अनुचित संबंध जाग्रत् करना चाहते हैं। वह अब इनके मनोरमा से कुत्सित व्यवहार का हाल जान चुकी थी, और जब यह अपने प्रयत्न में बल का भी प्रयोग करने लगते हैं तब रिवाल्वर द्वारा वह इनका वध कर डालती है, और भारतभूषण की सहायता से अभियोग से बच जाती है। एकादश परिच्छेद में कश्मीर के झमेलों का विवरण है, तथा द्वादश में क़बीलों का, जहाँ शुक्लजी पकड़े जाकर अपने मित्र प्राचीन आतंकवादी नेता की सहायता से बचते हैं। इन दोनो परिच्छेदों में कश्मीर की राजनीतिक तथा आर्थिक दशाओं एवं दर्शनीय स्थानों के विवरण हैं।

ग्रंथ में औपन्यासिक घटनाएँ हैं बहुतेरी तथा राजनीतिक विषयों और विचारों के भी कथन आ गए हैं। बंगाल, पंजाब, देशी रियासतों, भाषा-संबंधी, प्रांतीय विभाजनों के विचारों, संपत्तिवादियों तथा समतावादियों आदि पर कथन आधिक्य से हैं। सारे-के-सारे विचार कांग्रेस के अनुसार विशेषतया चले हैं, किंतु लेखकों के मतानुसार, न कि कांग्रेस-मंतव्यों पर। लेखक हैं तो हिंदी के प्रगाढ़ प्रेमी तथा ज़िमींदार भी, तथापि मतभेदवाले विषयों, राष्ट्र-भाषा तथा ज़िमींदारी-विसर्जन पर एक शब्द ग्रंथ में नहीं लिखा गया है। सभी बातों में लेखकों से सबका मतैक्य कठिन होता है, किंतु इतना कहना पड़ता है कि इस ग्रंथ में राजनीतिक, आर्थिक आदि भारतीय विचार शुद्धता पर अधिकतर आधारित हैं। राजनीतिक विषयों का इतना वर्णन करके भी लेखकों ने ग्रंथ के औपन्यासिक रूप को बिगड़ने नहीं दिया है। उसमें राजनीति के अतिरिक्त साहित्यिक तथा उन्नतिकारी धार्मिक एवं सामाजिक भाव भी उत्तमता-पूर्वक प्रस्तुत हैं। ग्रंथ का विषय समयानुकूल है। ज्येष्ठ मिश्रजी पहले हिंदी-साहित्य के इतिहास, समालोचना, टीका, संकलन, प्राचीन भारतीय इतिहास आदि पर ध्यान दिया करते थे, किंतु इधर रचनात्मक साहित्य पर भी आपने विशेष परिश्रम किया है। कनिष्ठ मिश्रजी ने भी साहित्यिक अंगों तथा टीकाओं के अतिरिक्त अपने पितृव्य के साथ पहले तो विक्रमादित्य का परमोत्कृष्ट उपन्यास ऐतिहासिक ढंग पर लिखा, और अब उपन्यास को राजनीति से मिलाकर दोनो लेखकों ने स्वतंत्र भारत का यह समयानुकूल वर्णन किया है। मैं पंडित शुकदेवविहारीजी तथा पंडित प्रतापनारायणजी को उनके इस ग्रंथ पर बधाई देता और आशा करता हूँ कि जनता इनके पहलेवाले ग्रंथों के समान इसका भी उचित मान करेगी।

चंद्रभानु गुप्त
मंत्री स्वास्थ्य एवं रसद-विभाग
संयुक्त प्रांत

काउंसिल हाउस
लखनऊ

प्राक्कथन

है तो यह भी हमारा एक उपन्यास ही, फिर भी काल्पनिक कथा के साथ इसमें भारतीय राजनीतिक घटनाएँ भी कुछ प्राचुर्य से जुड़ी हुई हैं। हमें स्वतंत्रता एक एकी कैसे प्राप्त हो गई, और हमारी वर्तमान दशा सांसारिक शक्तियों तथा आंतरिक झमेलों के देखते हुए कैसी है, इस प्रश्न पर भी विचार किया गया है। प्रथम सार्वभौमिक महायुद्ध के पीछे से, राजमंडलों के बनने तथा वायुयानों आदि के बढ़ते हुए व्यवहार से, हमारा पृथ्वी-मंडल बहुत कुछ सिकुड़ता-सा जाता है। अब कोई भी देश इतरों से पृथक् रहकर केवल तटस्थता की वास्तविक नीति चलाने में बहुत कुछ असमर्थ-सा हुआ जाता है। विना लड़े-भिड़े प्रेम-पूर्वक विजित, अथच दीर्घकाल से अधिकृत देशों को अधिकारियों द्वारा छोड़ बैठने की बात कभी ध्यान तक में भी नहीं आती थी, किंतु अब येही नित्य की घटनाएँ हो गई हैं। जर्मनी पर दो बार इतर शक्तियों का अधिकार इन्हीं दिनों हुआ, किंतु किसी ने इन प्रबलताओं को चिरस्थायी करने की बात न सोची। रूस भी बहुत कुछ धींगाधींगी पर उतारू होकर भी अन्य देशों में केवल समतावादी राज्य स्थापित करना चाहता है, स्वयं अपना अधिकार नहीं। आजकल के झगड़े अधिकार-प्राप्ति के लिये कम होकर बहुत करके सैद्धांतिक हैं। कहीं राज्य प्राप्त करना कोई नहीं चाहता, केवल अपना रक्षण तथा व्यापार-वर्द्धन सबको अभीष्ट है। साम्यवाद और संपत्तिवाद के दो जोड़े संसार में स्थापित हो गए हैं। अपने-अपने सिद्धांतों की वृद्धि सारे संसार में दोनो चाहते हैं। सबसे प्रबल देश अमेरिका (संपत्तिवादी) और रूस (समतावादी) हैं। रूस की थल-सेना प्राय. बीस लाख कूती जाती है। इससे इतर देशों को भय उपस्थित है कि दस-बीस वर्षों के भीतर पृथ्वी-मंडल का चित्र कैसा बनता है? छोटी रियासतें, अब सांसारिक दशा के देखते हुए, चिरस्थायिनी नहीं हो सकतीं। वे स्वयं अपनी-अपनी स्वतंत्रता न्यूनाधिक देकर इतर बलवान् जत्थों में मिलना चाहती हैं। सैकड़ों वर्षों से स्वतंत्र रूप में स्थापित बलवान् योरपीय शक्तियाँ भी अकेले रहने की हिम्मत न करके ऐसा ही कर रही हैं। इन्हीं दिनों ऐटलांटिक पैक्ट स्थापित हो चुका है, और अब प्रशांत (महासागर) पैक्ट बनने की बात चल रही है। सभी लोग इसे चाहते हैं, केवल भारत को अभी बहुतेरे आंतरिक प्रश्नों के भय से इसमें सम्मिलित होने का साहस नहीं हो रहा है। स्वतंत्र तो यह हो गया है, तथापि दस वर्षों के भीतर क्या दशा होनेवाली है, सो कोई निश्चित रूप से नहीं सोच सकता। अफ़ग़ानिस्तान रूस से विशेष संबद्ध दिखता है, किंतु पाकिस्तान से झगड़ा ठाने हुए है। इधर पाकिस्तान स्थापित तो हुआ बर्तानिया की युक्तियों तथा आशीर्वाद से, किंतु अब वहाँ की मुस्लिम लीग उस (बिर्तानिया) से अप्रसन्न समझ पड़कर रूस की ओर झुकती हुई दिखती है। रूस इस के महामंत्री को पठानिस्तान का प्रश्न दबाकर सुलझाने को बुला रहा है, अथवा केवल अपने से मेल बढ़ाने को, सो अद्यावधि अज्ञात है। भारत आजकल अपने देशस्थ साम्यवादियों के प्रतिकूल उचित कारणों से है ही। इन कारणों के भारत के लिये परमोचित होने पर भी समझा ऐसा जाता है कि रूस

इस भारतीय कार्यवाही को पसंद नहीं करता। इसलिये यद्यपि भारत रूस से सुव्यवहार बढ़ाने को परमोत्सुक है, तो भी वह यथोचित प्रकारेण बढ़ नहीं रहा है। चीन में समतावादियों का राज्य ही स्थापित हो गया है। इतरों को भय ऐसा है कि चीनी समतावाद का प्रभाव कहीं बर्मा, स्याम (थाईलैंड) और इंडोचाइना पर न पड़ने लगे। ये तीनों देश इस प्रभाव से बचना चाहते हैं, तो भी भय उपस्थित है ही। बर्मा में विद्रोही कैरेन राज्य ही उलटे देते थे। उनकी सहायता बर्मी साम्यवादी भी कर रहे हैं। अब आशा ऐसी है कि वहाँ की सरकार शीघ्र विद्रोह शमन कर ले जायगी।

स्वयं चीन तो समूचा साम्यवादियों के अधिकार में आ ही चुका है। उधर ऐसा भी समझा जाने लगा है कि यद्यपि राष्ट्रीय चीनी सरकार समाप्त हो गई है, तथापि देश पर अंततोगत्वा साम्यवादी अधिकार चिरस्थायी न होगा। इसी विचार के अनुसार अमेरिका साम्यवादियों के प्रतिकूल जानेवाली शक्तियों की सहायता करने पर तत्पर है। अमेरिका ने यह तो पहले ही घोषित कर दिया था कि यदि चीनी साम्यवादी बर्मा, स्याम, इंडोचाइना आदि पर आतंक जमाने का प्रयत्न करेंगे, तो वह (अमेरिका) शक्ति-प्रयोग द्वारा भी उनका विरोध करेगा। मलाया में साम्यवादियों का बल बहुत कुछ था, किंतु अब वह नत-सा हो गया है। इंडोनेशिया में भी साम्यवाद चल तो कुछ-कुछ रहा है, किंतु सबल नहीं है। वहाँ कई सौ वर्षों से हालैंड का अधिकार था, किंतु एशियाई जागृति तथा साम्यवाद की वृद्धि रोकने के विचारों से योरपीय शक्तियाँ अपने एशियाई अधिकार सुख से छोड़ रही हैं। बितानिया ने भारत, बर्मा लंका और पाकिस्तान को स्वतंत्र कर दिया है। स्याम सदा से स्वतंत्र तो था और है, किंतु है निर्बल। मलाया में तद्देशीय लोगों के सामने चीनी और भारतीय जन-संख्या प्रायः ५८ प्रतिशत हो गई है, तथा चीनी वहाँ के साम्यवादी एवं विद्रोही हैं। अतएव मलाया का स्वतंत्र किया जाना अभी ठीक नहीं समझा जाता। वहाँ के आदिम निवासियों की सभ्यता भी अभी समुचित प्रकारेण बढ़ी नहीं है। फ़िलिपाइंस को अमेरिका ने स्वतंत्र कर दिया है। कोचिन-चाइना को फ़्रांस स्वराज्य दे रहा है, किंतु कुछ झमेला वहाँ अभी शेष है, यद्यपि उसके शीघ्र सुलझने की आशा है। स्वतंत्र इंडोनेशिया की मित्रता भारत से प्रगाढ़ है। इन सब देशों में साम्यवाद का बल अब तक भयप्रद नहीं है। पाकिस्तान में वह है ही नहीं। अफ़ग़ानिस्तान में साम्यवाद है तो नहीं, किंतु वह देश है रूस का साथी। ईरान से रूस का बिगाड़ तथा अमेरिका और बितानिया का मेल है। अतएव अभी तक चीन तथा उत्तरी कोरिया छोड़कर साम्यवाद एशिया में नत है। साइबेरिया रूस का सदैव से है। जापान अमेरिका का साथी हो रहा है। संपत्तिवादी देशों का प्रयत्न है कि चीन के अतिरिक्त साम्यवाद एशिया में फैलने न पाए। अरब की शक्तियों में साम्यवाद का प्रवेश अभी तक नहीं है, तथा उनका सुव्यवहार बितानिया से है। हैं ये निर्बल ही। पाकिस्तान उनसे मेल बढ़ाना चाहता है। दक्षिणी योरप में यूनान में साम्यवाद बढ़ाने के पर्याप्त प्रयत्न देश-द्रोह बढ़वाकर हुए, किंतु वह दबता हुआ दिखता है। सीरिया और लेबनान मुसलमानी देश हैं, जहाँ साम्यवाद का प्रवेश नहीं है।

उत्तरी-पूर्वी योरप में साम्यवाद का अधिकार-सा है। उसमें हुंगरी, बलगारिया, पूर्वी जर्मनी, रूमानिया, लिथिवेनिया, स्टोनिया, लेटविया, फिनलैंड, पोलैंड और ज़ेकोस्लोवाकिया

की गणना है। ठेठ उत्तर में नार्वे संपत्तिवादियों से मिला हुआ है, तथा स्वीडेन तटस्थ-सा है। युगोस्लाविया था तो रूस के अधिकार में, किंतु आजकल प्रतिकूल होकर पाश्चात्य योरप से मिल रहा है। इतना अधिकार साम्यवादियों का है। फ्रांस में प्रायः आधा बल साम्यवाद का है, किंतु सरकार संपत्तिवादिनी है, और साम्यवाद का बल वहाँ घटता हुआ दिखता है, यद्यपि इस बात का निश्चय नहीं है। शेष योरप में बिर्तानिया, इटली, आस्ट्रिया और इज़राईल की गणना है। स्पेन है तो साम्यवाद का कट्टर शत्रु, किंतु वहाँ की राज्य-प्रणाली प्रायः एकाधीन होने से अमेरिका आदि से अभी उसका पूरा मेल नहीं है। डेन्मार्क, बेल्जियम, हालैंड, लक्सेमबर्ग आदि भी बिर्तानिया के मित्र हैं। ईरी तटस्थ-सा है, और आइसलैंड नगण्य है। पश्चिमी जर्मनी संपत्तिवादियों की ओर है। इन सब का बृहत्तम सहारा अमेरिका है। बिर्तानिया के प्राचीन उपनिवेश कनाडा, दक्षिणी आफ्रिका, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड आदि हैं तो स्वतंत्र देश, किंतु उससे मेल पूरा रखते हैं। उत्तरी अमेरिका में कनाडा, यूनाइटेड स्टेट्स (जिसे लोग अमेरिका कहा करते हैं) और मेक्सिको हैं, जो सब संपत्तिवादी हैं। दक्षिणी अमेरिका में १८ या १९ शक्तियाँ हैं, जो सांसारिक झगड़ों में भाग नहीं लेतीं तथा हैं संपत्तिवादिनी। अमेरिका उनकी रक्षा भी करता है। अभी उनमें जन-संख्या की कमी भी है। आस्ट्रेलिया है तो बहुत बड़ा देश, भारत का प्रायः पचगुना, किंतु जन-संख्या उसमें बहुत कम है। वह केवल योरपियनों को अपने यहाँ बसने देता है, जिससे चीन, भारत, जापान आदि देश लालच-सा करते हैं। इनमें जन-संख्या बहुत अधिक होने से घोर काठिन्य उपस्थित है। यदि आस्ट्रेलिया में बसने पाएँ, तो इन सबके क्लेश बहुत कुछ दूर हो जायँ, किंतु अभी यह प्रश्न उठा नहीं है। अभी तो आस्ट्रेलिया भारत का प्रगाढ़ मित्र रहना चाहता है।

सारी पृथ्वी की वर्तमान दशा ऊपर कह दी गई है। आफ्रिका में अभी समुचित उन्नति नहीं हुई है, और वहाँ कुछ तो देशी रियासतें हैं, तथा विशेषतया इतरों के उपनिवेश। साम्यवाद का झगड़ा १९१७ से उठा, जब से कि रूस ने जार को गिराकर साम्यवादी राज्य वहाँ स्थापित किया। जर्मन-युद्ध के समय तक रूस अमेरिका और बिर्तानिया का साथी रहा। इस द्वितीय महायुद्ध के पीछे से उसने उद्दंडता ग्रहण की है। समझ ऐसा पड़ता है कि दस-पंद्रह वर्षों के भीतर ही एक प्रचंड महा युद्ध फिर से संपत्ति और साम्यवादिनी शक्तियों में होगा। अभी रूस युद्ध चाहता नहीं, न अमेरिकीय जनता ही ऐसा चाहती है, किंतु वहाँ के व्यापारियों का काम बिना युद्ध के चलता हुआ नहीं दिखता। उनमें वस्तुओं की उत्पादिनी शक्ति बहुत बढ़ गई है। युद्ध-सामग्री के बनाने से ही उनकी समस्याओं का हल हो सकता है। दूसरा हल यह है कि सांसारिक इतर देशों में भारी धन-वृद्धि हो। ऐसा होने से वे अमेरिकन माल आधिक्य से ख़रीद सकते हैं, किंतु इसमें दो बाधाएँ हैं—एक तो इतनी धन-वृद्धि एकाएकी दुस्तर है, दूसरे वे भी अपनी उपज बढ़ाने के प्रयत्न करेंगे, तथा चाहेंगे यही कि अपना-अपना निर्यात आयात से अधिक रहे। अतएव अभी तो कोई यही समझ सकता है कि बिना युद्ध के अमेरिकन उपज की खपत सम्यक् मात्रा में इतर देशों में न होगी और वहाँ दिनोंदिन बेकारों की संख्या बढ़ेगी, जिसका कुछ प्रबंध वहाँ कीसरकार को करना ही पड़ेगा। युद्धेच्छा में भी इतनी बाधा है कि व्यापारी तो उसके

इच्छुक होंगे, किंतु माल की खपत के साथ युद्धों में जनता का भी तो विनाश होता है, जो बात अमेरिकन जनता भी कदापि नहीं चाहती। ऐसा अनुमान है कि जो राष्ट्रपति वहाँ युद्ध छेड़ेगा, उसका चुनाव दूसरी बार जनता न करेगी। अतएव जब तक वहाँ राष्ट्रपति का आगामी चुनाव नहीं होता, तब तक तो विना किन्हीं भारी कारणों के युद्ध होता दिखता नहीं, किंतु चुनाव के पीछे क्या होगा, सो अभी अनिश्चित है।

भारत ने इन्हीं दिनों स्वतंत्रता प्राप्त की है। सो इसे बहुतेरे भारी-भारी आंतरिक प्रश्न अभी सुलझाने हैं। अनाज की उत्पत्ति-वृद्धि, शिल्पोन्नति, शक्ति-संचय, स्वास्थ्य संग्रह, विद्याध्ययन-वृद्धि आदि अनेकानेक ऐसी आवश्यकताएँ हैं, जिनके लिये भारत को यदि बीस-पचीस वर्षों का शांति-पूर्ण समय मिल जाय, तो अपनी भी महत्ता यथायोग्य बढ़ सकती है। अभी तो लोग यहाँ आत्मोन्नति परम शीघ्रता-पूर्वक चाहते हैं, किंतु उसके साधनों पर समुचित ध्यान नहीं दे रहे हैं। केवल स्वतंत्रता से सब कुछ नहीं मिल जाता है। है यह उन्नति का एक परम प्रधान साधन, किंतु तो भी साधन-मात्र है, स्वयं उन्नति नहीं। इससे उन्नति प्राप्त करने का सुभीता मिल गया है, तथापि वास्तविक उन्नति के लिये घोर परिश्रम और प्रत्येक अधिवासी में उत्तरदायित्व का ज्ञान परमावश्यक है। हमारी सरकार प्रयत्न जीतोड़ कर रही है, किंतु समय से पूर्व कुछ नहीं हो सकता। होगा सब कुछ धीरे-धीरे। तुरंत की उत्कट इच्छा रखनेवाले विना साधनों पर परिश्रम किए निराशा के गर्त में पड़ सकते हैं। जनता को बहुत उतावली न करके अपने राजतंत्र परिचालकों पर विश्वास रखना चाहिए, और अवगत करना चाहिए कि हैं हमारे नेता हमारे ही लोग, जिनको हमारे हित-साधन का चोप किसी से कम नहीं है। अभी हम लोगों को स्वराज्य का समुचित अनुभव नहीं है, जिससे हम नहीं जानते कि स्वतंत्र शक्तियों की अनुभवी जनता अपने नेताओं पर कितना भारी विश्वास करती है? हमें केवल आलोचक न होकर आज्ञापालक तथा नेताओं का सहायक भी होना पड़ेगा, तब समुचित उन्नति होगी।

इस पुस्तक में पहले तो स्वतंत्रता-प्राप्ति का थोड़ा-सा इतिहास है, और तब प्रजा में मार-काट के हाल थोड़े में बतलाए गए हैं। अनंतर बंगाल, कश्मीर और क़बीलों के हाल कहे गए हैं। साम्यवादियों तथा आतंकवादियों के भी कुछ कथन हैं, तथा देशीय विचारों और मिलों के श्रमियों के भी। शेष ग्रंथ में उपन्यास का डोर चलाया गया है।

ग्रंथ समाप्त तो अगस्त, १९४९ में हो गया था, किंतु कुछ बातें मई, १९५० तक भी जुड़ी हैं।

विनीत—

लखनऊ
अगस्त, १९४९
मई, १९५०

शुकदेवविहारी मिश्र तथा प्रतापनारायण मिश्र

विषय-सूची

प्रथम परिच्छेद

प्रारंभ तथा असहयोग

पंडित अमरनाथजी शुक्ल मौजा इटौंजा, जिला लखनऊ के एक धन-हीन निवासी थे। बेचारे पाँच रुपए मासिक पर राजा साहब के यहाँ पहरेदारों में नौकर थे। उनका कोई निकट का संबंधी न था। केवल स्त्री-पुरुष थे, जो इस छोटे वेतन में किसी प्रकार कालक्षेप करते थे। संतान के रूप में दो साल का एक पुत्र था, जो माता-पिता की आँखों की पुतली था। अपनी इस हीन संपदा से किसी प्रकार भोजन वस्त्रों का प्रबंध कर पाते थे। यदि नातेदारी में कहीं से भोजन का बोलावा हो जाता, तो उस दिन के भोजनों के जो दाम बच जाते थे, उनसे मास-दो मास के लिये लवण ले लेते। इसी प्रकार कनागत या नवरात्रि आदि में प्रायः किसी धनी पुरुष से एक जोड़ा धोती का डौल लग जाता था। बातें करने में वह अनावश्यक जनेव की शपथ खाया करते थे। एक बार उनके एक मित्र मिश्रजी ने कहा—"शुक्लजी! यज्ञोपवीत के बदले आप अँगौछे की क़सम खाया कीजिए, क्योंकि उसमें जनेव से बहुत अधिक सूत होता है।"

शुक्लजी—"क्या कहें मिश्रजी! जनेव क़सम, याद ही नहीं रहता।"

एक बार जब उनकी धर्मपत्नी जहाँ भोजन बना रही थीं, उसी स्थान के निकट एक छिद्र था, जिससे निकलकर एक काले साँप ने उनकी जंघा में काट खाया, और फिर छेद में घुस गया। बेचारी शुक्लाइन की दृष्टि दूसरी ओर थी, अतः उन्होंने उसे देख न पाया, किंतु पीड़ा से विकल होकर हाय-हाय मचाई, तथा वहीं पड़ी हुई एक बेबिछी खाट पर पड़ गईं। शुक्लजी उस समय घर पर न थे, पड़ोसी चिल्लाहट सुनकर वहाँ की शोध करने लगे। दस-पंद्रह आदमियों की भीड़ लग गई। और समाचार सुनकर शुक्लजी भी दौड़े हुए पहुँचे। बेचारी स्त्री को इतना कष्ट था कि खाट पर सारे शरीर के अंग उछल रहे थे। जंघा में किसी ने सर्प-दंश का घाव न देखा, क्योंकि वह

वस्त्रों से स्वभावतः ढकी हुई थी। कोई समझ न पाता था कि इतने कष्ट का कारण क्या है ? एकाध ने तो यहाँ तक कनफुसकी की कि सुकुलाइनजी बनती हैं। उधर उनका शरीरांत हो रहा था, क्योंकि विष बड़ा तीक्ष्ण था। दस-पंद्रह मिनट में बेचारी उछल-कूदकर ठंडी पड़ गईं। शुक्लजी ने उज्ज्वल मुख को हाथ से छूकर कहा—"हाय ! मेरा प्रगाढ़ मित्र तुम्हें छोड़ कोई न था ; क्या तुम भी मुझे अकेला तजकर चल बसीं ?" बेचारे ने छोटे-से लड़के को डर जाने के भय से पड़ोस में एक स्त्री के घर छोड़ दिया। थोड़ी ही देर में थानेदार साहब आए, और सर्प-दंश का पंचायतनामा बन गया। हाल सुनकर राजा साहब के दो सिपाही भी बंदूकें ले-लेकर वहाँ पहुँचे, तथा कुछ खोदकर उस बिल में बहुत-सा पानी भर दिया गया, जिससे साँप बिलबिलाकर बाहर निकला, और बंदूक के छर्रों से मार डाला गया। काला विषधर सर्प था। थोड़े ही घंटों में बेचारी सुकुलाइन की खोपड़ी फट गई। यथासमय मरणोत्तर-संस्कार हुए, और बेचारे शुक्लजी भार्या भी खोकर अकेले रह गए, और किसी प्रकार अपने पुत्र को पालते रहे। उसका नाम उन्होंने भारतभूषण रक्खा। लड़का देखने में बड़ा होनहार समझ पड़ता था। दैव-वश तीन ही सालों के पीछे थोड़ी ही अस्वस्थता से बेचारे शुक्लजी का भी शरीरांत हो गया, और केवल पाँच वर्षों का बालक भारतभूषण संसार में नितांत अकेला रह गया। कोई निकट का संबधी था नहीं, जो उसकी देख-रेख का भार अपने ऊपर लेता। दयालु राजा साहब ने यह हाल सुनकर वहीं के एक ब्राह्मण दंपति को यह भार समझा-बुझाकर सौंप दिया, तथा बालक के पंद्रह वर्षों की अवस्था-पर्यंत भरण-पोषणार्थ पाँच रुपए मासिक देना स्वीकार किया। यही भारतभूषण के पिता का वेतन था।

नवीन पालिका पुत्र-हीन होने से इस बालक से विशेष प्रेम करने लगी, अतः थोड़ी संपदा होने पर भी बालक को अधिक कष्ट न हुआ। पर वह इतना जानता था कि वह मातृ-पितृहीन एक निर्धन व्यक्ति है। सात वर्ष का होने पर वह ग्राम्य पाठशाला में पठनार्थ भेजा जाने लगा, और अपना भविष्य अपने ही ऊपर समझकर उसने पढ़ने में चित्त बहुत लगाया। थोड़े ही दिनों में हिंदी मिडिल पास होकर लखनऊ में जाकर अँगरेजी भी पढ़ने लगा। वहाँ के लिये राजा ने दस रुपए मासिक छात्रवृत्ति नियत कर दी। बालक पंद्रह वर्षों की अवस्था में मैट्रिक पास करके कॉलेज में अध्ययन करने लगा, किंतु अब राजा

साहब द्वारा नियत की हुई छात्रवृत्ति बंद हो गई। लखनऊ में अध्ययन के समय इस दस रुपए-मात्र की छात्रवृत्ति से कालक्षेप नहीं होता था, अतः इन्हें एक सधन छात्र को दो घंटे नित्य पढ़ाकर उसकी आय द्वारा अपना व्यय पूरा करना पड़ता था, फिर भी अपने अध्ययन में इन्होंने ऐसा मन लगाया कि मैट्रिक प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर सरकारी छात्रवृत्ति पा गए। बहुत अच्छे विद्यार्थी होने से इन्हें शिक्षा-शुल्क कॉलेज में न देना पड़ा, और वहीं के छात्रावास में आप सुगमता-पूर्वक भर्ती हो गए। फिर भी केवल छात्रवृत्ति से इनका काम चल न सकता था, और इन्हें एक अन्य सधन छात्र को एक घंटा नित्य पढ़ाकर अपना व्यय चलाना पड़ता था।

कॉलेज के जीवन में इनके कई मित्र भी हो गए, जिनमें अयोध्याप्रसाद और मथुरादत्त की प्रधानता थी। बी० ए० में आकर आप एक राजा के पुत्र को घर पर एक घंटा प्रतिदिन पढ़ाने लगे। उसका नाम शैलेंद्रकुमार था। वह इनका सहपाठी भी था, किंतु इनकी महती योग्यता के कारण इनसे घर पर पढ़ता भी था। जब ये चारो विद्यार्थी बी० ए० पास करके एम्० ए० में पहुँचे, तो आपस में विचार होने लगा कि कौन-कौन क्या-क्या विषय लें ?

भारतभूषण ने कहा—"मैं तो भाई, अँगरेजी लेना चाहता हूँ, तथा ला क्लास भी अटेंड करूँगा। करनी तो अंत में वकालत है ही, फिर अन्य विषय लेकर क्या करूँ ?"

मथुरादत्त—"तुम भी क्या बातें करते हो ? वकालत में क्या रक्खा है ? झूठी-सच्ची बातें बनाकर लोगों से दाम लेने में क्या महत्ता है ?"

भारतभूषण—"संसार में सभी व्यापारों में भले-बुरे लोग रहते हैं। भलों के द्वारा सभी दशाओं में उन्नति होगी, तथा बुरों के द्वारा अवनति। जहाँ बहुतेरे वकील बुरे हैं, वहीं लाखों नररत्न भी इस व्यापार में हैं। स्वयं महात्मा गांधी किसी समय यही काम करते थे।"

अयोध्याप्रसाद—"यही बात है, भाईजी ! (मथुरादत्त से) अच्छा आप बताइए कि आप क्या आकर करना चाहते हैं ? इस विषय का निर्णय चाहे हुए व्यापारानुसार किया जाता है।"

मथुरादत्त—"मैं तो भाई ! संपादक बनना चाहता हूँ। अभी इस कार्य का

विशेष अध्ययन तो होता नहीं, अतएव मैं राजशास्त्र और संपत्ति-शास्त्र आकर करूँगा।"

शैलेंद्रकुमार—"विचार तो आपका भी पक्का है। (अयोध्याप्रसाद से) आप क्या आकर करेंगे?"

अयोध्याप्रसाद—"मैं तो संस्कृत लेना चाहता हूँ। किसी पाठशाला आदि में अध्यापक हो जाऊँगा। और आप क्या होंगे?"

शैलेंद्रकुमार—"मुझे तो कोई काम करना नहीं है, अपने पिताजी के राज्य का प्रबंध-मात्र करना पड़ेगा। ईश्वर ने आराम से कालक्षेप का अवकाश पहले से दे रक्खा है। किसी प्रकार उसमें क्षति न आने पाए, बस, इतनी योग्यता बहुत है।"

मथुरादत्त—"आप तो अच्छे पितृभक्त हैं, किंतु आप ही के साथियों के लिये किसी कवि ने निम्नांकित छंद बनाया है—

कब धौं पिताजी सुरलोक को सिधैहैं अंब, कब धौं क्रिया सों हम फुरसति पावेंगे;
कब धौं लिखैहैं नाम आपनो सुखेवट सें, कब धौं मुए को नाम खारिज करावेंगे।
कहै कविराज कब बैठिके रे गादी पर सानयुत सब पै हुकुम फरमावेंगे;
साथी प्रिय मोतन को करिकै निहाल कब ह्वैही कामदारन को गरद मिलावेंगे।

शैलेंद्रकुमार—"तुम तो भाई! कहाँ के खूसटों का वर्णन करने लगे। कोई अच्छी बात तो समझाई नहीं, लगे खबीसों का कथन करने।"

भारतभूषण—"यही बात है भाई! मैं तो समझता हूँ कि आपको भी संस्कृत लेनी चाहिए, जिसमें अपने प्राचीन पूर्व-पुरुषों की संस्कृति का ज्ञान प्राप्त हो।"

शैलेंद्रकुमार—"आप तो सहपाठी होकर मेरे गुरु भी हैं। भला, आपकी सम्मति कैसे न मानूँगा?"

भारतभूषण—"यह आप क्या कहते हैं? दो दिन कुछ बतला देने-मात्र से गुरु कैसे हुआ जाता हूँ? सहपाठी-भर हूँ।"

इस प्रकार आपस में विचार-विनिमय करके ये चारों मित्र एम्० ए० कक्षा में पढ़ने लगे। भारतभूषण का गुजर विशेषतया छात्रवृत्ति से होता रहा, तथा कुछ धन ट्यूशनों (अध्यापन) से भी प्राप्त करके समुचित प्रकारेण विद्याध्ययन चलाते रहे। ये चारों मित्र एक ही छात्रावास के विविध कक्षों में रहते थे। उसी के निकट एक छात्रावास बालिकाओं का भी था। उनमें से मनोरमा-नाम्नी एक परम सुंदरी बालिका थी, जिसकी संयोग से मथुरादत्त से कुछ-कुछ मित्रता हो गई। अतः उनकी बैठक उठक शैलेंद्रकुमारादि से घट

गई, तथा मनोरमा की ओर चित्त अधिकाधिक आकर्षित होता रहा। कुछ दिनों में इन दोनो का प्रेम-पूर्ण ऐंद्रिय संसर्ग भी हो गया। बालिकाओं के छात्रावास का आँगन एक प्रायः आठ फ़ीट ऊँची दीवार से घिरा हुआ था, और उसके किसी कक्ष से फाटक के अतिरिक्त कोई बिना उसे फाँदे बाहर नहीं जा सकता था। उसके सब ओर न्यूनाधिक चौकी-पहरे का भी प्रबंध रहता था। फिर भी उस घेरे की दीवाल के एक कोने से स्टूल के सहारे आप छिपकर रात्रियों में आने-जाने लगे। दो-ही-तीन महीनों में बेचारी मनोरमा गर्भवती हो गई, और इसके तीन-चार ही महीनों के पीछे इन दोनो को बड़ी ही चिंता गर्भ-मोचन कराने के संबंध में हुई। जब कोई युक्ति इसकी न लगी, तब मथुरादत्त ने एक दिन किसी दवा बेचनेवाले से गुप्तरीत्या विष की ऐसी शीशी प्राप्त की, जिसके स्वाद में विशेष कटुता न थी। मनोरमा को गुप्तभावेन वही शीशी देकर आपने समझा दिया कि उसके द्वारा एक ही दिन में गर्भपात हो जाता है। बेचारी कन्या ने उसे पी लिया, और मथुरादत्त छिपकर बाहर चले गए। रात में कन्या को घोर कष्ट हुआ, किंतु अपयश से बचने के विचार से उसने कोई हल्ला-गुल न किया, तथा रात ही में उसका प्राण-पखेरू उड़ गया। शीशी आप पहले ही वापस लेते आए थे। दवा के नाम का पर्चा उसमें पहले ही से न लगा था। शीशी फोड़कर इन्होंने एक कुएँ में डाल दी थी। फल यह हुआ कि जब प्रातःकाल मनोरमा मृत पाई गई, तब पुलीस ने आकर जाँच की, तथा मरणोत्तरवाली जाँच से विष-प्रयोग द्वारा उसका मरना तो प्रमाणित हो गया, किंतु यह पता न लगा कि विष दिया किसने था? उसका गुर्विणी होना भी डॉक्टरी जाँच से प्रकट हुआ, तथा कुछ बालिकाओं की साक्षी से यह भी सिद्ध हुआ कि मथुरादत्त से मनोरमा की विशेष मित्रता थी। इससे अधिक सहवास का कोई प्रमाण न मिला, और यद्यपि इन पर संदेह पुलीस का तथा इतर कुछ लोगों का भी रहा, तथापि प्रमाणाभाव से इनके प्रतिकूल न्यायालय-संबंधी कोई कार्यवाही न हो सकी। इनके तीनो मित्रों को भी इन पर संदेह तो समुचित मात्रा में हुआ, किंतु प्रमाणों के न होने से उन्होंने भी इनका साथ पूर्णतया न छोड़ा, यद्यपि मैत्री की मात्रा में बहुत कुछ शैथिल्य आ गया।

इधर देश में सन् १८८५ से कांग्रेस-नाम्नी एक संस्था स्थापित हुई थी, जो विशेषतया राजनीतिक कार्य करती थी। स्थापन तो इसका अँगरेज़ी अफ़सरों की सम्मति से ह्यूम साहब द्वारा हुआ था, तथापि परम शीघ्रता-पूर्वक इसने स्वावलंबी

रूप ग्रहण कर लिया था। लार्ड कर्जन द्वारा बंग-भंग के कारण बंगालियों को भारी क्षोभ हुआ, तथा भारतीय इतर प्रांतों ने भी उनका साथ दिया। यह आंदोलन सन् १९०५ पर्यंत विकट रूप धारण कर चुका था, तथापि तब तक राजनियमों के प्रतिकूल कार्यवाही प्रजा में न चलती थी। फिर भी १९०६ में वाइसराय लार्ड मिंटो को समझ पड़ा होगा कि हिंदू-मुसलमानों में भेद डालकर भारतीय ऐक्य को शिथिल करना ब्रिटिश भारतीय शासन के लिये ठीक है। अतएव उस काल मुसलमानों का एक डेपुटेशन बड़े लाट महोदय की सेवा में उपस्थित हुआ, और उसे ऐसे आश्वासन के वचन मिले, जिससे कुछ हिंदुओं को समझ पड़ा कि भारत में भविष्य के लिये ब्रिटिशों का प्रथम स्थान होना था, मुस्लिमों का द्वितीय और हिंदुओं का अंतिम। उनमें निराशा का भाव बढ़ा, और ब्रिटिश-न्याय से विश्वास हटने लगा। अब तक कांग्रेस अपने वार्षिक अधिवेशनों में सरकार से केवल प्रार्थनाएँ करती थी। होता ऐसा दृढ़ता-पूर्वक था, तथापि रूप प्रार्थनाओं का ही रहता था। १९०५ के निकट जो कांग्रेस बनारस में हुई, उसमें लाला लाजपतराय आदि ने यह रूप बदलना चाहा, किंतु चली बात गोखले महोदय की ही, और राजभक्ति के प्रतिकूल कोई खुला आरोप न हुआ। १९०७ में सूरत में जो कांग्रेस हुई, उसमें गरम दल के केवल ३०० सज्जन थे, तथा नरम दल के १०००। फिर भी लोकमान्य तिलक महोदय ने नरम दल की खुशामदी नीति का घोर प्रतिवाद किया। नरम दलवालों की कुछ थोड़ी-सी मार-पीट भी हुई, और सभा भंग हो गई। फिर भी मंतव्य नरम दल के अनुसार ही पास हुए। गरम दल का प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता गया, और १९१३ में उनका अधिकार कांग्रेस पर हो गया। १९१४ से १९१८ तक प्रथम संसारव्यापी महायुद्ध हुआ। बंग-भंग १९११ में ही टूट चुका था। महायुद्ध में स्वभावतः ब्रिटिशों को समझ पड़ा कि भारतीयों को किसी प्रकार प्रसन्न रखना चाहिए। १९१६ में लखनऊ-वाली कांग्रेस में हिंदू-मुसलमानों में मेल कर लिया गया, और कई अन्य बातों के साथ यह भी निश्चित हुआ कि मुसलमानों को प्रायः सभी प्रांतों की धारा-सभाओं में उनकी संख्या से अधिक प्रतिनिधित्व मिले, अथच वे प्रतिनिधि मुसलमानों ही के द्वारा निर्वाचित हों। केवल नवाब शम्शुलहसनैनी ने, जो कांग्रेस स्वागतकारिणी कमेटी के एक उप-सभापति भी थे, इस निर्णय को भारत के प्रतिकूल कहकर नापसंद किया। इस राज़ीनामे पर सारे हिंदू-मुसलमानों में केवल आप ही ऐसे थे, जिन्होंने हस्ताक्षर करने से साफ़ नाहीं कर दी।

सन् १९१७ में भारतीय महामंत्री मांटेग्यू महोदय विलायत से यहाँ के राज-

नियम दृढ़ करने आए, जिसमें भारतीय प्रसन्न हो जायँ। उन्होंने उपर्युक्त मुस्लिम-पृथक् निर्वाचन के निर्णय को हानिकर बतलाया, किंतु मुस्लिम जनता उसे माँगती रही, तथा हिंदुओं ने अपने वचनों से फिरना न चाहा, और यह व्यवस्था भारतीय भावी विधान में स्थान पा गई। इन्हीं दिनों महात्मा गांधी दक्षिणी आफ्रिका में बहुत कुछ भारतीय हित-साधन करके भारत पधारे। आपने लोकमान्य तिलक का अनुगामी होना प्रचारित किया, किंतु कुछ ही दिनों (अगस्त १६२०) में लोकमान्य का स्वर्गवास हो गया, और महात्माजी भारतीय राजनीतिक आंदोलनों के सर्वमान्य नेता हुए। आपने ब्रिटिशों से असहयोग की नीति भारतीयों के लिये चलाई, जिसे कांग्रेस ने पूर्ण उमंग के साथ कार्य में लाना स्वीकार किया। चर्खे और खद्दर का भी मान महात्मा ने भारतीय उन्नति के लिये बढ़ाया। इनका मूलमंत्र यह था कि ब्रिटिशों का राज्य-परिचालन प्रजा के असहयोग से असंभव कर दिया जाय। आपने इसी अभिप्राय से ब्रिटिश भारतीय राज्य को 'शैतानी सरकार' कहा। अभिप्राय इसका यह था कि यद्यपि देश में अशांति नहीं होने पाती थी, तथापि राज्य-परिचालन इस प्रकार से होता था कि भारतीयों की आर्थिक हानि रहती थी, और बर्तानिया का अनुचित लाभ। आपका विचार था कि उचितानुचित किसी प्रकार से ब्रिटिश राज्य का परिचालन भारत में असंभव कर दिया जाय, उनके नियमों का खुला-खुला अपमान करके लोग जेलों को भर दें, तथा यथासंभव सभी भाँति देशवासियों की अश्रद्धा ब्रिटिश शासन से कराई जाय। अन्य कार्यों के साथ यह भी शिक्षा दी गई कि विद्यार्थिगण अपना पढ़ना छोड़-छोड़कर विद्यालयों को शून्य कर दें, तथा देश में बाह्य शासन से भारी प्रतिकूलता बढ़ाएँ। इस शिक्षा का प्रभाव जब लखनऊ पर भी पड़ने लगा, तब हमारे पूर्वोक्त चारों छात्रों ने भी इस पर दृढ़ता-पूर्वक विचार-विनिमय आवश्यक समझा। एक दिन शैलेंद्रकुमार के कक्ष में परस्पर सलाह होने लगी।

भारतभूषण—"कहिए भाई शैलेंद्रजी! अब क्या मामला है? क्या किया जाय?"

शैलेंद्रकुमार—"हम तीनों तो एम्०ए० प्रिवियस पास भी कर चुके हैं, किंतु बेचारे मथुरादत्त परसाल अनुत्तीर्ण होकर पहली ही कक्षा में रह गए हैं।"

मथुरादत्त—"मेरा तो भाई एक वर्ष जा ही चुका है, जहाँ सत्यानास, वहाँ साढ़े सत्यानास सही। अब मुझे क्या तुरुक से नुरुक होना है? मैं तो असहयोग करूँगा ही।"

अयोध्याप्रसाद—"यह तो सिद्धांत की न होकर आत्मीय बात-मात्र हुई। रपट पड़े, तो हर गंगा का मामला रहा। विद्यार्थी-समुदाय का लाभ किस दशा में है, यह सोचना है। कर्तव्य का प्रश्न है। एक वर्ष की असफलता से बुरे उदाहरण द्वारा औरों को भी बिगाड़ना तो ठीक नहीं।"

मथुरादत्त—"अनुचित उदाहरण इसे कहता कौन है? मैं तो इसे देश-सेवा तथा स्वार्थ-त्याग का ज्वलंत उदाहरण मानता हूँ।"

भारतभूषण—"यही पहले से कहना था। यदि ठीक बात हो, तो सभी को अपनाना उचित होगा ही, किंतु मुझे तो यह अनुचित शिक्षा दिखती है।"

शैलेंद्रकुमार—"सो कैसे भाई? क्या महात्माजी भी बेजा बात कह सकते हैं?"

भारतभूषण—"यदि सोलहो आने बात पक्की होती तो महामना मालवीयजी इसका विरोध हिंदू-विश्वविद्यालय के संबंध में क्यों करते? उन्होंने तो महात्माजी को अपने ही सभापतित्व में व्याख्यान देने का पूर्ण अवसर दिया, किंतु उसी के साथ अपना भी व्याख्यान देकर बालकों को उचित कार्यवाही बतला दी। फल यह हुआ कि यद्यपि बहुतेरे विद्या-मंदिरों के छात्र पाठ छोड़-छोड़कर मूर्खों की भाँति भटकते फिरते हैं, तथापि हिंदू-विश्वविद्यालय ठीक-ठीक चल रहा है।"

मथुरादत्त—"आपने कोई तर्क तो दिया नहीं, केवल महामना मालवीयजी का विचार महात्माजीवाले से श्रेष्ठतर कह डाला।"

शैलेंद्रकुमार—"फिर यह भी तो सोचना चाहिए था कि मालवीयजी ने जब घोर प्रयत्न द्वारा काशी-विश्वविद्यालय स्थापित किया था, तब वह उस में छात्रों की उच्छ्रंखलता कैसे ठीक समझ सकते थे?"

अयोध्याप्रसाद—"जब स्वयं आप इसे उछ्रंखलता मान रहे हैं, तब मालवीयजी के प्रतिकूल कथन क्या करते हैं?"

शैलेंद्रकुमार—"यह शब्द-मात्र मैं शीघ्रता से बिना विचारे कह गया। प्रयोजन मेरा यह था कि जब उन्हीं ने विश्वविद्यालय स्थापित किया था, तब वह किसी भी कारण से उसका छात्र-शून्य होना नहीं सह सकते थे।"

भारतभूषण—"इससे तो प्रकट होता है कि आप उन्हें ऐसा विचार-शून्य मानते हैं कि कुछ काल के लिये किसी उचित कार्य-साधन में भी उसकी शून्यता उन्हें असह्य थी।"

अयोध्याप्रसाद—"यह मानना ही पड़ेगा कि वह इस कार्य को अनुचित समझते थे। जो व्याख्यान उन्होंने दिया था, उसका प्रकट तात्पर्य भी यही था।"

मथुरादत्त—"फिर भी केवल उन्हीं के मतभेद से मामला निर्णीत तो नहीं हो सकता। महात्माजी तो कर्तव्य-पालनार्थ हमें ऐसा आदेश दे ही रहे हैं।"

भारतभूषण—'जब भारत के दो परमोत्कृष्ट नेताओं में मतभेद है, तब निश्चय क्या हो सकता है ?"

अयोध्याप्रसाद—"महामना महोदय तो वास्तव में नरम दल के पोषक हैं। कांग्रेस में ही उन्होंने महात्माजी का विरोध किया था। केवल पुराने व्यवहार के कारण उन्होंने कांग्रेस छोड़ा-भर नहीं।"

मथुरादत्त—"उसका फल क्या हुआ था ?"

अयोध्याप्रसाद—"बहुमत उनके प्रतिकूल अवश्य था, किंतु सैकड़ों नेता मालवीयजी के मत को उचित समझते थे।"

मथुरादत्त—'बहुमत तो महात्माजी की ओर था ?"

शैलेंद्रकुमार—"बहुमत तो मूर्खों का होता है। शुद्धता का निर्णय तर्कानुसार होता है, केवल बहुमत पर नहीं। बहुमत ने तो मूर्खता-वश महात्मा सुकरात को वध-दंड तक दे दिया था। उन्होंने कहा भी था कि एक विज्ञ के आगे सौ मूर्खों का मत अमान्य है।"

मथुरादत्त—"ऐसा तर्क उठाने से तो समाज में किसी प्रश्न का निर्णय ही न हो सकेगा।"

भारतभूषण—"निर्णय की आवश्यकता तो प्रबंधार्थ होती है, शुद्ध मतार्थ नहीं।"

शैलेंद्रकुमार—"तब फिर शुद्ध मत कौन-सा समझा जाय ?"

भारतभूषण—"जो उचित, माननीय एवं तर्कानुकूल हो।"

अयोध्याप्रसाद—"क्या मालवीयजी तथा महात्माजी-से ऊँचे नेताओं के मतों पर निर्णय करने की पात्रता हम लोगों में समझी जा सकती है ?"

भारतभूषण—"स्वयं महात्माजी अंधानुकरण को मानसिक दासता बतलाते हैं।"

शैलेंद्रकुमार—"जब ऐसे दो महात्माओं में मतभेद है, तब अंधानुकरण से बचने को हमें विचार करना ही पड़ेगा।"

भारतभूषण—"केवल मतभेद पर क्या, सभी प्रश्नों और दशाओं में विचार करके कर्तव्य-निर्णय उचित ही है। जब परमात्मा ने हमें विचार-शक्ति प्रदान की है, तब उसका उपयोग न करना क्या ईश्वरीय शक्तियों की अवहेलना नहीं है ?"

अयोध्याप्रसाद—"जी हाँ, अपने को भी विचार करना ही ठीक दिखता है।"

शैलेंद्रकुमार—"यह तो स्पष्ट ही है कि अध्ययन छोड़ने से हम अपने ही पैर में कुल्हाड़ी मारते हैं।"

भारतभूषण—"इतना तो महात्माजी ने भी सोच लिया होगा। वह तो यह कहते हैं कि हम लोगों के साल-दो-साल अध्ययन की हानि उठाने से संसार में सरकार का पर्याप्त अपयश होगा।"

शैलेंद्रकुमार—"अपयश क्यों होने लगा? सरकार तो पढ़ाने को प्रस्तुत है। जब आप स्वयं नहीं पढ़ते, तो उसका क्या दोष? क्या दुनिया अंधी है?"

अयोध्याप्रसाद—"दुनिया तो अंधी होती ही है। समझते बहुतेरे लोग सब कुछ हैं, किंतु हानि तो हम अपनी भूल से उठाते हैं, और बिगड़ सरकार पर जाते हैं।"

भारतभूषण—"जब हमीं लोग जान-बूझकर अध्ययन छोड़ेंगे, तब हमारे अभिभावक हम पर दोष न रखकर सरकार से क्यों बिगड़ेंगे?"

मथुरादत्त—"यही तो दुनिया में अंधेरखाता चलता है। हम लोगों पर कुछ अप्रसन्न अवश्य होंगे; किंतु हानि से चिढ़कर अंत में गांधीजी के सरकार पर दोष मढ़ने से मतक्य हो जायगा। हानि के कारण उन दोषों पर ध्यान विशेष जमेगा, और विलायती सरकार के विरुद्ध लोक-विग्रह बढ़ेगा।"

अयोध्याप्रसाद—"विग्रह बढ़ने से होता क्या है? सरकार कुछ हमारे इच्छानुसार तो स्थापित है नहीं, जो लोकप्रियता पर बहुत ध्यान दे। सभी सरकारें लोकप्रियता न्यूनाधिक अवश्य चाहती हैं, किंतु उसके अधीन तो नहीं रहतीं? यदि आप सारे विद्यालयों को छोड़ बैठिए, तब भी उसकी क्या हानि है?"

शैलेंद्रकुमार—"वही लोकप्रियता का प्रश्न है। यदि सारा भारत अप्रसन्न रहे, तो किसी गड़बड़ के समय राज्य सुगमता से उखड़ सकता है।"

भारतभूषण—"अभी तो इसका रूप दिखता नहीं। संसारव्यापी महायुद्ध सन् १८ में समाप्त ही हो चुका है। अब शीघ्र ही कोई दूसरा महायुद्ध तो हुआ नहीं जाता। अप्रसन्न रहिए, तो घर में दो रोटियाँ अधिक खा लीजिए। कोई फल तो निकट भविष्य में प्राप्त होता दिखाई नहीं देता।"

मथुरादत्त—"महात्माजी का तो कथन है कि साल-भर में ही स्वराज्य प्राप्त हो जायगा?"

शैलेंद्रकुमार—"ऐसे कथन प्रायः आकाश-कुसुमवत् ही होते हैं। 'भविष्य' तो मानुष-ज्ञान के बाहर की वस्तु है। और सौ पचास वर्षों तक तो कुछ होता दिखता नहीं।"

भारतभूषण—"जब भविष्य 'अज्ञेय' मान रहे हो, तो सौ-पचास वर्षों का ब्योरा सोचना भी उचित नहीं है। इतना प्रत्यक्ष है कि हानि अपनी निश्चित एवं तुरंत की है, तथा लाभ अनिश्चत है, न-जाने कब हो। भविष्य की कोई निश्चित समझ में नहीं आती। जिसका जैसा मत हो, उसके अनुसार वह कार्य करे।"

मथुरादत्त—"मैं तो भाई पहले ही कह चुका कि मैं असहयोग में कूदता हूँ। जो होनी होगी, होती रहेगी। पाप-पुण्य नित्य होते ही रहते हैं। महात्माओं की आज्ञा मानकर कुछ प्रायश्चित्त भी तो योग्य है। मेरा तो मत निश्चित है।"

अयोध्याप्रसाद—"और मेरा भी।"

शैलेंद्रकुमार—"किंतु भाई, मैं अपना राज्य लेकर कहाँ जा सकूँगा? पहले तो पिताजी ही अप्रसन्न होंगे, दूसरे राजकीय कोप से राज्य पर विपत्ति सुगमता से आ सकती है। मत मेरा भी असहयोग के अनुकूल ही है, किंतु मैं परिस्थिति से विवश हो रहा हूँ।"

भारतभूषण—"सिद्धांतरूपेण तो आपका कथन असिद्ध है, किंतु दुनिया को देखते हुए करणीय है। धनवानों को न चाहते हुए भी दब्बू-चप्पू होना पड़ता है।"

अयोध्याप्रसाद—"यही बात है; भाईजी! मेरे पिताजी तो प्रस्तुत हैं, किंतु स्वतंत्रता के विषय में वह स्वयं गरम दल के पक्षपाती हैं।"

शैलेंद्रकुमार—"तब तो आप मजे में हैं। भाई मथुरादत्तजी! आपके कुटुंब की क्या दशा है?"

मथुरादत्त—"विवाह तो अभी हम चारों में से किसी का हुआ नहीं है। मेरे पिताजी भी उपस्थित नहीं हैं, एक भाई हैं, जो आयु में बड़े होकर भी मुझ पर दबाव नहीं डालते, और मुझे वचन दे चुके हैं कि जब तक कुछ कमाने-धमाने न लगो, तब तक मैं पचास रुपए मासिक देता जाऊँगा।"

शैलेंद्रकुमार—"तब तो तुम भी मजे में हो। भाई भारतभूषण! तुम्हारी क्या दशा है?"

भारतभूषण—"मुझे तो भाई यह कार्य कर्तव्य-कोटि में आता ही हुआ नहीं दिखता। फिर, यदि करना भी चाहूँ, तो धनाभाव से विवश रहूँगा। पढ़ने ही के लिये केवल छात्रवृत्ति है, जिससे व्यय तक नहीं निपटता, और ट्यूशन करके काम चलाता हूँ। असहयोग में पड़ने से छात्रवृत्ति तुरंत बंद हो जायगी, और ट्यूशन भी गई-आई होगी। तब फिर काम कैसे चलेगा?"

शैलेंद्रकुमार—"यदि केवल धन का प्रश्न हो, तो पचास या सौ रुपए मासिक, जो चाहो, मुझसे ले लिया करो। कोई आभार भी न होगा। मैं समझूँगा कि अपने बदले अपने से एक श्रेष्ठतर व्यक्ति को देश-प्रेम में निरत कर रहा हूँ।"

भारतभूषण—"है तो आपका विचार उदारता-गर्भित, जिसके लिये अनेकानेक धन्यवाद अर्पित करता हूँ, फिर भी किसी से धन लेकर मैं स्वदेश-प्रेम में निरत होना उचित नहीं समझता। मैं सिद्धांतरूपेण भी इस विचार के प्रतिकूल हूँ। बिना काम किए धन ले भी नहीं सकता"

शैलेंद्रकुमार—"यह तो आप अनावश्यक संकोच करते हैं। हाँ, मतभेद की बात ही भिन्न है।"

अयोध्याप्रसाद—(शैलेंद्रकुमार से) "कुँवरजी! आपकी उदारता प्रशंसनीय अवश्य है, किंतु सिद्धांतरूपेण भारतभूषणजी की दोनो बातें ग्राह्य हैं। मेरा इनसे असहयोग के कर्तव्य-पथ पर मतैक्य नहीं है; किंतु जो इनका मत है, उसके अनुसार इनके दोनो निर्णय उचित हैं।"

भारतभूषण—"धन्यवाद भाईजी!"

शैलेंद्रकुमार—"जैसी सबकी सम्मति। सार इसमें भी बहुत कुछ है।"

भारतभूषण—"मेरी बात तो बहुमत से कट रही है, फिर भी एक भारी तर्क अभी शेष है। यदि आज्ञा हो, तो निवेदन कर दिया जाय।"

शैलेंद्रकुमार—"कहिए क्यों न? क्या तर्कों के कथन में भी संकोच की आवश्यकता है?"

भारतभूषण—"स्वराज्य तो अभी दिखाई नहीं देता, किंतु यदि कहीं मिल गया, तो चलाना हमीं कॉलेजों के विद्यार्थियों को होगा। जब हम पहले ही से अधिकार भंग करने के अभ्यस्त हो जायँगे, जैसा कि पठन छोड़ने में अवश्यंभावी है, तब भविष्य में हम नियम-परिचालन कैसे करेंगे?"

अयोध्याप्रसाद—"हम लोग कुछ स्वराज्य के नियम तो भंग नहीं करते, हम केवल विदेशियों द्वारा संस्थापित लोकतंत्र से प्रतिकूलता करने जा रहे हैं, तब हमारे अभ्यास अपने ही मान्य नेताओं के प्रतिकूल दुर्व्यवस्था का प्रचार कैसे करेंगे?"

शैलेंद्रकुमार—"यह बात तो कुछ जमती नहीं। जब एक बार बड़ों की आज्ञाओं का निरादर करेंगे, तब अपने नेताओं की भी जो आज्ञाएँ अनुचित जँचेंगी, उनके विरुद्ध भी असहयोग क्या, उद्दंडता के कार्य स्वभावतः होने लगेंगे। मानुषीय प्रकृति ही ऐसी है कि दुर्व्यवहारों की ओर सुगमता-पूर्वक प्रवृत्त हो जाती है।"

भारतभूषण—"फिर यह केवल हम विद्यार्थियों का ही प्रश्न भी नहीं है ; आज भी अवध-प्रांत के रायबरेली, प्रतापगढ़, फ़ैज़ाबाद आदि ज़िलों में किसानों द्वारा लगान न अदा करने का असहयोग चल रहा है। सहस्रों लोग ज़िलों के मूल स्थानों पर एकत्र हो जाते हैं, और गोलियाँ चलने तक से भी नहीं दबते। इन लोगों के उदाहरणों का प्रभाव कच्ची अवस्था के विद्यार्थियों पर अवश्यमेव पड़ेगा, तब समय पर हम लोगों का नियमों से आबद्ध रहना कठिन हो जायगा। ऐसी दशा में यदि स्वराज्य चलाना हुआ, तो अपने ही नेताओं को वैसे ही व्यवहार विवश होकर करने पड़ेंगे, जैसे कि विदेशी अधिकारी-वर्ग कर रहा है। ऐसा होने से स्वयं अपना लोकतंत्र देश-प्रेम खोकर निर्बल हो जायगा, क्योंकि विदेशियों के समान बाहरी बल पर आधारित न होकर वह तो हमारे ही बल से बली होगा। मेरी समझ में ऐसी बातों से समय पर कल्याण न होगा, और विधान तक बिगड़ेगा।"

मथुरादत्त—'तुम तो भाई सबेरे की छींक के लिये साँझ ही से मुँह फैलाते हो। स्वराज्य का नाम-निशान भी नहीं है, और तुम उसके लिये अभी से चिंतित हो। पहले विदेशी राज्य बिगाड़ने के प्रयत्न करो। समय पर स्वराज्य सबल करने के उचित उपाय सोचने में हमारे नेता मूर्ख न प्रमाणित होंगे।"

शैलेंद्रकुमार—"समझ मुझे भी यही पड़ता है।"

अयोध्याप्रसाद—"तब फिर आइए मथुरादत्तजी ! हम दोनो कार्यारंभ करें।"

द्वितीय परिच्छेद

रंगमंच

महात्मा गांधी दक्षिणी आफ्रिका में अपना आंदोलन समाप्त करके जब भारत पधारे, तब कुछ दिन यहाँ के प्राचीन नेताओं से सलाहें करते रहे। गोखले महोदय पहले ही स्वर्गवासी हो गए थे। महात्मा का मत बहुत कुछ लोकमान्य तिलक से मिलता था, किंतु वे भी अगस्त, १९२० में स्वर्गासीन हो गए। उनके पश्चात् महात्मा ही सर्व-प्रमुख भारतीय नेता रह गए। १९२१ में आपने लगान-बंदी तथा विद्यार्थियों के असहयोगवाला सत्याग्रह चलाया। उसी वर्ष विलायत से सम्राट् के युवराज भारत पधारे। वहाँ का नियम यह है कि राज-काज का भार मंत्रिमंडल तथा पार्लियामेंटों पर रहता है, अथच सम्राट् उससे असंबद्ध रहते हैं। जब भारत में युवराज के प्रतिकूल भी असहयोग चलाने का विचार उठा, तब यही तर्क बताया गया। गांधीजी का विचार हुआ कि विलायत का यह नियम हम पर लागू नहीं है, क्योंकि हमारी पार्लियामेंट तक का कोई प्रधान अधिकार नहीं है, और यद्यपि सम्राट् का कोई मुख्य उत्तरदायित्व भारतीय राज्य-प्रणाली से नहीं है, तथापि हैं तो वह भी हमारी न चाही हुई बाह्य राज्य-प्रणाली से पूजित, जिससे हमारे लिये सम्राट् अथवा युवराज का भी मान ब्रिटिश राज्य-प्रणाली का ही मान होगा, जिसे हम चाहते नहीं। फल यह हुआ कि युवराज महोदय के प्रतिकूल बंबई से ही सत्याग्रह चल पड़ा। मौलाना मुहम्मदअली एक साल कांग्रेस के सभापति तथा महात्मा के सहायकों में थे। इन दिनों वह जेल में थे। वाइसराय लार्ड रेडिंग थे। समझा जाता है कि उनकी ऐसी इच्छा थी कि युवराज के कलकत्ते पहुँचने के पूर्व महात्मा से सरकार का कोई समझौता हो जाय, जिसमें बंबई का-सा सत्याग्रह वहाँ न हो। महात्मा ने समझौते की बात प्रारंभ करने के पूर्व मौलाना का जेल-मुक्त होना आवश्यक समझा, किंतु बड़े लाट महोदय ने यह बात न मानी, और समझौते की बात ही प्रारंभ न हुई। बहुतों का विचार हुआ कि इस प्रकार तनने में महात्मा ने भूल की, नहीं तो संभवतः कोई अच्छा समझौता हो जाता। उधर कांग्रेस का विचार था कि सरकार पर तब तक इतना दबाव न पड़ा था कि कोई योग्य

समझौता होता। फलतः अहिंसात्मक सत्याग्रह चलता रहा। महात्मा उसे शांति-मूलक चाहते थे, किंतु चौरीचौरा-नामक स्थान में जनता ने पुलिस की चौकी जला दी, तथा दंगा कर दिया। इससे पूर्व भी सहस्रा कांग्रेसी तथा इतर लोग जेलों में भरे जा चुके थे। अपने ही अनुयायियों द्वारा शांति-भंग से खिन्न होकर महात्मा ने फ़रवरी, १९२२ में असहयोग-आंदोलन स्थगित कर दिया, जिससे कांग्रेसियों को भारी खेद हुआ। इसके पश्चात् महात्मा को छ साल की सज़ा हो गई।

उधर महात्मा की सम्मति के प्रतिकूल पंडित मोतीलाल नेहरू तथा देशबंधु दास के नेतृत्व में स्वराज्य-पार्टी स्थापित हो गई थी। कौंसिलों आदि में पूरा बल प्राप्त करने के लिये स्वराजिस्टों को कुछ इतरों से भी मत मिलाने को अपने सिद्धांत न्यूनाधिक गिराने पड़ते थे, जिससे इनका इस पार्टी से असंतोष बढ़ने लगा। उधर देश में सांप्रदायिकता का बल बढ़ा, और मस्जिदों के सामने बाजे न बजाने, नमाज़, आर्ती आदि के झमेले प्रबलता से उठाए जाने लगे। कांग्रेसियों को समझ पड़ता था कि इन झगड़ों के मूल में मुसलमानों को सरकारी अनुचित बढ़ावा था। इधर समझ पड़ने लगा कि बिना मुसलमानों से मेल हुए सरकार दब नहीं सकती। उधर यह प्रकट होने लगा कि हिंदू उन्हें कितना भी अधिक अधिकार दें, शक्ति सरकार के हाथ में होने से वह उन्हें किसी-न-किसी व्याज से कुछ अधिक देकर हिंदुओं के प्रतिकूल ही रक्खेगी। मेल के लालच से हिंदू जो अधिकार खोवेंगे, वह इनके हाथ से तो चला जायगा, किंतु उसका मूल्य हिंदू-मुस्लिम-मेल प्राप्त न होगा। कुछ हिंदुओं को आश्चर्य-सा होता था कि प्रायः सारे ब्रिटिश अफ़सर मुसलमानों की ही ओर झुकते हैं, हिंदुओं की ओर कोई भी नहीं। बात यह थी कि मुसलमानों की अल्प संख्या होने से यदि अधिकारी हिंदुओं की ओर झुकते, तो संभवतः मुसलमान निराश होकर हिंदुओं से दब जाते, तथा दोनो का मिलित बल सरकार के प्रतिकूल लगने लगता। १९२० से १९२९ तक मुसलमानों से मेल करने के लिये हिंदुओं के प्रयत्न चलते रहे, किंतु सब असफल रहे। केवल १९२२ की लाहौरवाली कांग्रेसी बैठक में वायव्य सीमा-प्रांत के पठान कांग्रेस के सच्चे साथी हो गए। स्वराज्य-पार्टी १९२४ से ही टूट चुकी थी, क्योंकि उससे सिवा हानि के कोई लाभ न समझ पड़ा था।

महात्मा गांधी ने समय से पूर्व जेल-मुक्त होकर सरकारी नियम भंग करने का आंदोलन चलाया। जो-जो ऑर्डिनेंस सरकार निकालती जाती थी, उन सबों

का भंग करना कांग्रेसी अपना सिद्धांत समझते थे। महात्मा ने लवण-संबंधी नियमों का भंग करना प्रधान कार्य बनाया। १९२८ में भारतीय राज्य-प्रणाली में सुधारों पर रिपोर्ट देने के लिये विलायत से साइमन-कमीशन आया। उसमें कोई भारतीय न था, जिससे उसका पूर्ण विरोध किया गया, और किसी बड़े नेता ने उसके आगे कोई माँग न पेश की, तथा जहाँ-जहाँ वह गया, वहाँ-वहाँ 'साइमन वापस जाओ' की आवाजें ऊँची हुईं। बड़े लाट की ओर से सर सप्रू तथा जयकर महोदय समझौते के लिये यर्वदा जेल में महात्मा के पास गए थे, किंतु उन्होंने स्वराज्य माँगा था, जो सरकार देने को तैयार न थी। कांग्रेस ने बाहरी कपड़ों तथा अन्य वस्तुओं के प्रतिकूल भी असहयोग चलाया, तथा खद्दर और चर्खे का मान बढ़ाया। इन आंदोलनों के संबंध में हमारे दोनो असहयोगी विद्यार्थी मथुरादत्त तथा अयोध्याप्रसाद भी कई बार जेल गए। १९२९ में अनाज के दाम बहुत गिर गए, और किसानों के द्वारा फिर से कर-बंदी आंदोलन चलाया गया।

ऐसे झगड़ों से उकताकर सरकार ने भारतीय नेताओं को मूर्ख बनाकर अपने ही मुखों से असफल बनाने का विचार किया। इससे पहले महात्माजी से बड़े लाट अर्विन महोदय ने समझौता किया, जो पंडित जवाहरलाल को पसंद न आया, और फिर विलायत में १९३० तथा १९३१ में एक गोलमेज सभा एकत्र की गई। उसमें भाग लेने के लिये ऐसे भारतीय नेता चुने गए, जो हिंदू, मुसलमानों तथा सिक्खों के अधिकारों पर ही बहसें करते रहे, और कोई मुख्य फल न निकला। दूसरी गोलमेज में कांग्रेस की ओर से अकेले महात्माजी प्रतिनिधि होकर गए, और सांप्रदायिक झमेलों के सुलझाने में भगीरथ प्रयत्न करते रहे, किंतु कोई फल न प्राप्त हुआ। मुसलमानों को यही आशंका रही कि भारत को स्वराज्य मिलने से उन्हें हिंदू बहुमत के अधीन रहना पड़ेगा, तथा उन्हें हिंदू जितना कुछ माँगने से देंगे, उससे अधिक सरकार बिना माँगे ही देगी। मुसलमानों और सिक्खों के साथ हिंदू-दलित जातियों का भी प्रश्न उठाया गया, और उन्हें हिंदुओं से पृथक् मानकर हिंदू-बहुमत का बोझ हलका करने के भी प्रयत्न हुए, किंतु दलित जातियों का प्रश्न चल न सका, क्योंकि थीं वे अंततः हिंदू ही, अतः वे हिंदुओं के प्रतिकूल न गईं। फिर उनके मंदिरों में प्रवेश का प्रश्न उठाया, जिसका समर्थन उच्च श्रेणी के हिंदुओं तक ने किया। उनके पृथक् चुनाव का प्रश्न भी गांधीजी के उपवास के भय से सर्व-सम्मति से निर्णीत हो गया। १९३४ में बिहार-प्रांत में कठिन

भूकंप आया, जिसमें प्रयत्न सारे ऊँचे भारतीयों ने किए। १६३५ में भारतीय राज्य-संबंधी नया क़ानून बना, जो किसी सच्चे भारतीय को पसंद न आया।

रंगमंच दिखलाने के लिये यह प्रायः १५ वर्षों का राजनीतिक विवरण थोड़े में दिया गया, जिससे ज्ञात रहे कि हमारे कथा-नायक ने कैसी दशाओं में समय-समय पर काम किया। उधर दो मित्र तो विश्वविद्यालय छोड़कर राज-नीतिक आंदोलन में कूद पड़े, तथा भारतभूषण और शैलेंद्रकुमार अपने पठन-क्रम में परिश्रम करके समय पर परीक्षोत्तीर्ण भी हो गए। शुक्लजी एम्० ए० तथा एल्-एल्० बी० में प्रथम कक्षा में उत्तीर्ण होकर दोनो परीक्षाओं में सबसे पहले स्थान के अधिकारी हुए, तथा लखनऊ में जमकर वकालत करने लगे। थोड़े ही दिनों में इन्हें बहुत होनहार समझकर उच्च श्रेणी के एक सधन वाजपेयीजी ने अपनी एम्० ए० पास कन्या-रत्न के साथ इनका विवाह कर दिया। उधर शैलेंद्रकुमारजी का भी विवाह लाहौर के एक धनाढ्य कुटुंब की कृतविद्य कन्या के साथ हो गया। दोनो के विवाहों में दूसरे मित्र भी बरात में गए थे। समय के साथ शुक्लजी की वकालत उत्तमता से चलने लगी, और इनकी गणना लखनऊ के ऊँचे वकीलों में होने लगी। यहाँ के नवाब शम्शुलहस्नैन साहब भी एम्० ए० में इनके सहपाठी थे, और उसी समय से दोनो में प्रगाढ़ मित्रता भी हो गई थी। मुसल-मानों के साथ बैठकर भोजनादि करने में आपको इनकार कभी न था, किंतु अभोज्य पदार्थ नहीं खाते थे। कहते थे कि मलिनता-हीन हाथ को अशुद्ध मानने की आज्ञा शास्त्र में नहीं है, केवल अभोज्य वस्तुओं का भोजन बचाना आवश्यक है। मित्रता के कारण प्रतिसप्ताह रविवार को प्रायः नौ बजे दिन को आप नवाब साहब के साथ दो-तीन घंटों की बैठक अवश्य रखते थे, जिसमें पहला कार्य-क्रम प्रातः-कालीन भोजन ही रहता था। दोनो मित्रों में यह भी विचार प्रायः हुआ करता था कि हिंदू-मुसलमानों का मेल कैसे हो? भारत में प्रायः ७४ प्रतिशत हिंदू, सिक्ख, आर्यसमाजी आदि मिलकर थे, और प्रायः २६ प्रतिशत मुसलमान। उनमें अच्छे लोगों को भी यह भय रहता था कि स्वराज्य होने से मुस्लिम-संस्कृति का न्यूनाधिक ह्रास संभव था, क्योंकि बहुमत के कारण धारासभाओं में सम्मति अंत में चलने को थी हिंदुओं की ही। अतएव वे सोचते थे कि प्रांतीय धारासभाओं में चाहे कुछ भी क्रम हो, किंतु केंद्रीय में हिंदू-मुसलमानों की संख्या में मंत्रिमंडल तथा धारा-सभाओं में समान होने से आपस का झगड़ा अथवा संदेह टूट सकता था। फिर भी समझा जाता था कि हिंदू प्रायः तिगुने होकर केंद्रीय सभाओं में समानता का

नियम सुख-पूर्वक माननेवाले नहीं थे। दूसरा विचार यह था कि यदि हिंदू-मुसलमानों में आपस में स्त्री-पुरुषों के विवाह होने लगें, तो भी संबंधों के प्राचुर्य से यह आपसी तनातनी टूटकर राजनीतिक मेल उत्पन्न हो जाय। पहले तो ऐसा भी सोचा जाता था कि हिंदू-मुसलमानों के एक साथ खाने-पीने से यह वैमनस्य दूर हो सकता है; किंतु अनुभव से यह बात पक्की न निकली। नवाब साहब ने कई बार भारतभूषण को समझाया कि ऐसे उपन्यास, नाटकादि बनाए जायँ, जिनमें ऐसे विवाहादि की प्रशंसा होकर संसार में इनका चलन बढ़ाने के प्रयत्न हों। यह सुझाव भारतभूषण को पसंद भी आया, किंतु उनके मित्रों ने समझाया कि ऐसे ग्रंथों का हिंदुओं में न तो मान होगा न चलन, क्योंकि हिंदू दृढ़ता-पूर्वक ऐसे विवाहों के प्रतिकूल होंगे।

यह बात अवश्य है कि प्राचीन काल के हिंदू ऐसे खान-पान तथा वैवाहिक संबंधों के प्रतिकूल न थे। भारत के प्राचीनतम निवासी कोल थे, और पीछे से यहाँ बिलोचिस्तान से द्राविड़ आए। समय पर आर्यागमन भी हुआ, और उनकी आर्य अथवा द्विज संज्ञा हुई, तथा कोलों की अनार्य। द्राविड़ यथास्थित चातुर्वर्ण्य में मिल गए। आज भी दशब्राह्मणों में पंचगौड़ (आर्य) तथा पंच-द्राविड़ कहलाते हैं। नाग एक छोटी-सी उन्नत जाति थी, जो प्रायः आर्यों से मिल गई। बहुतेरे द्राविड़ और कोल तथा कुछ पतित आर्य शूद्र कहलाने लगे। फिर भी इन सब जातियों के आर्यों से खान-पान तथा न्यूनाधिक वैवाहिक संबंध भी थे। दसवीं-बारहवीं शताब्दी बी० सी० (ईसा-पूर्व) में जब आर्मीनिया से भी बहुतेरे लोग आकर भारत में बसे, तब उनकी गोपालन के कारण 'गोप' संज्ञा होकर वैश्यों में गणना हुई। अनंतर कुछ ग्रीक लोग आकर यहाँ बसे, जिनमें से उच्च पदों के लोग भागवत् कहलाकर क्षत्रिय समझे जाते और यज्ञादि भी करते थे। दूसरी शताब्दी बी० सी० में शक जाति के लोग सीस्तान से आकर यहाँ बसे, उनमें से भी मुख्यों की गणना क्षत्रिय वर्ग में हुई। वे भी हमारे चातुर्वर्ण्य में मिल गए। अनंतर छठी शताब्दी में हूण भी आकर इसी प्रकार हमारे हो गए। ये सभी राज्य-प्राप्त्यर्थ आए थे, किंतु ये हमारे धर्मों की न केवल निंदा न करते, वरन् उसका मान भी करते थे। इनकी मानसिक उन्नति कुछ नीची होने से समय पर हमारे बहुतेरे धार्मिक विचार हम सबके लिये बहुत कुछ स्थूल हो गए। अतएव प्रकट है कि हमने बाहरवालों को न केवल नीचा न समझा, वरन् उनसे खान-पान, विवाहादि संबंध जोड़कर उन्हें समय पर अपने में मिला भी लिया। जब सातवीं शताब्दी में सिंध में अरबवाले आए, तब उनसे भी प्रेम-पूर्ण व्यवहार हुआ; किंतु

ग्यारहवीं शताब्दी में अफ़ग़ानों ने आकर यहाँ न केवल अपना राज्य जमाया, वरन् हमारे धर्म को भी नीच कहकर खड्ग द्वारा तक हमें मुसलमान बनाने का प्रयत्न किया। धर्म के संबंध में शस्त्र-प्रहार से हम लोगों को उनका धर्म बहुत नीच जँचा और हमने पहले-पहल असहयोग का प्रयोग करके न केवल उनसे खान-पान विवाहादि के संबंध न खोले, वरन् मुसलमान बने हुए स्वयं अपने ही भाइयों से भी यही व्यवहार किया। अतएव प्रकट है कि उन लोगों के साथ हम लोगों का यह बर्ताव बाहरी लोग होने के कारण नहीं हुआ, वरन् उनकी धार्मिक असहिष्णुता के कारण ऐसा हुआ। और क्रमशः समय पर इसने धर्म का रूप धारण कर लिया, इसी धारणा से सम्राट् अकबर के महासेनापति खानखाना ने महाराणा प्रतापसिंह को निम्नांकित दोहा लिख भेजा था—

ध्रम रहसी रहसी धरा खिसि जासी खर साण ;
अचल विसंभर ऊपरे रखियो नहचो राण।

इसके द्वारा उनका प्रयोजन महाराणा प्रतापसिंह को यह समझाने का था कि आप अकबर से दबकर संधि न करें, और विश्वंभर पर अचल निश्चय रक्खें, जिससे पृथ्वी और धर्म दोनो स्थिर रहेंगे, तथा शत्रुओं की खरी शान मिट जायगी। अतएव प्रकट है कि अकबर के ही समय में यह वैवाहिक असहयोग का विचार धर्म का रूप पा चुका था। नवाब साहब ने ऐसी ही बहुतेरी बातें समझाई। भारतभूषण ने भी ऐतिहासिक उदाहरणों को स्वयं दे-देकर उनके तथ्य स्वीकार किए, तथापि वर्तमान धार्मिक विचारों की कट्टरता ऐसी देखी कि इतर बहुतेरे ग्रंथ बनाने पर भी इस विषय पर कुछ लिखने का उन्हें साहस न हुआ। मित्र-भाव इन दोनो का यथावत् चलता रहा। समय पर शुक्लजी ने कांग्रेस के राजनीतिक विचारों से सहयोग स्थापित किया, किंतु अपनी आर्थिक, कौटुंबिक तथा सामाजिक दशाओं पर विचार करके सक्रिय रूप में इतनी उद्दंडता न दिखलाई कि जेल ही में जाना पड़ता। एक बार चार मित्रों के साथ कुछ राजनीतिक कार्य करने बरेली गए। उनमें से एक सज्जन ने तो व्याख्यान ही न दिया, किंतु तीन बोले अवश्य। उस काल कुछ विषयों पर व्याख्यान सरकार द्वारा मना थे। पुलीस के चार लेखक वहीं सभा में बैठे हुए व्याख्यानों पर बड़े-बड़े नोट बना रहे थे। तीन व्याख्याताओं में शुक्लजी का भाषण सबसे मुलायम हुआ, इनके साथी दीक्षितजी का कुछ कड़ा तथा शैलेंद्रकुमारजी का सबसे उद्दंड। पीछे मित्रों ने इनसे पूछा- "कहो भाई शुक्लजी! भाषण कैसे हुए?" आपने कहा—"मैं तो भाई, जेल की सड़क

पर ही न गया, दीक्षितजी जेल के फाटक तक पहुँचकर पलट आए, तथा कबर साहब ने जेलवाले फाटक के अंदर पैर तो रक्खा, किंतु उक्ति-पूर्वक फिर उठा लिया।" यह उत्तर सुनकर मित्र-मंडली खूब हँसी। हमारे शुक्लजी कुछ दिन नरम दल तथा हिंदू महासभा में भी गए-आए। नरम दल का तो इन्होंने इतना ही काम देखा कि पत्रों या व्याख्यानों में कांग्रेस तथा सरकार दोनो की निंदा करके अपनी सम्मति प्रकट कर देना जो बहुत कुछ कांग्रेस से मिलती थी। उनका सिद्धांत था कि केवल माँगने से ही सब कुछ मिल जाता है। हिंदू-सभावाले व्याख्यानों में प्रायः महात्माजी की निंदा कर देते थे, और अपने विचार प्रकट करते थे ; किंतु कार्य-रूप से उनकी कोई विशेष महत्ता न थी।

उधर सरकार का यह कथन था कि भारतीय स्वतंत्रतावाले आंदोलन में शक्ति ही क्या है ? उनका कहना था कि भारत में ग्यारह प्रतिशत से अधिक पढ़े-लिखे नहीं हैं, और उनमें से भी हजार में दस से अधिक कांग्रेस की माँगों के पीछे नहीं हैं। सरकार ऐसा मानती और समझाने का प्रयत्न करती थी कि स्वतंत्रता की माँग जनता के ठोस विचारों पर आधारित न होकर केवल एक सहस्र में से दो-चार उच्च श्रेणी के विद्वानों के मस्तिष्कों की उपज-मात्र है। थी तो यह कुछ-कुछ वक्रालोचना, किंतु कहने-भर को इसमें बहुत कुछ बल दिखता था। मुसलमानों की प्रधान जन-संख्या खुली-खुली प्रतिकूल थी ही, तथा अपढ़ जनता इस माँग का समुचित अर्थ ही न जानती थी। नरम दल तथा हिंदू-महासभा कार्यरूपेण इसका कोई उत्तर न दे सकी, और कांग्रेस ने जनता का सहारा लेने का पूरा प्रयत्न किया। कांग्रेसी लोगों ने मिलों के श्रमजीवियों, किसानों आदि से संभव अथवा असंभव बहुतेरे वादे किए, तथा उन्होंने अपने उचित या अनुचित जो-जो कष्ट बतलाए, उनका बहुत अंशों में समर्थन करके उनका पूरा सहयोग प्राप्त किया। इन बातों से कांग्रेस का प्रभाव देश में तो बैठा ही, सरकार भी इससे अंदर-ही-अंदर दबने लगी। इधर हमारे भारतभूषणजी की मित्रता शैलेंद्रकुमारजी से प्रगाढ़ होती रही, तथा नवाब साहब से भी समय के साथ बढ़ती गई।

उधर मथुरादत्तजी एक-दो बार जेल गए तथा वहाँ के जीवन में इनकी जान-पहचान एक समतावादी (Communist) महाशय से हो गई, जो अति शीघ्र प्रगाढ़ मित्रता तक पहुँच गई। इन्होंने उनके द्वारा समता-सिद्धांतों का भी ज्ञान प्राप्त किया, तथा जब दोनो जेल के बाहर आए, तब उनकी संगति से इनका मेल पूरी समतावादिनी पार्टी से हो गया, तथा ये उसके

सदस्य (Member) भी बन गए। इस दल में मुस्लिमों का प्रायः आधिक्य था, और मेंबरों में कुछ स्त्रियाँ भी थीं। यह एक राजद्रोही गुप्त समाज है, जिसके विचार हैं कि देश में कोई धनी अथवा निर्धन न होना चाहिए, वरन् सारी संपत्ति का राष्ट्रीयकरण होकर सबका उस पर समान अधिकार होना उचित है। इस विचार-धारा का श्रीगणेश मार्क्सवाद आदि से हुआ था, और समय के साथ उन्नति होती आई थी। इसका सबसे बड़ा प्रभाव रूस पर पड़ा था। वहाँ के सम्राट् ज़ार को हटाकर इन लोगों ने उस देश में समता-सिद्धांत के अनुसार राष्ट्र और समाज १९१७ के निकट स्थापित किया था। समय के साथ इन सिद्धांतों में परिवर्तन या परिवर्द्धन भी होते आए थे, और जब पूर्ण साम्यवाद से देशोन्नति में पूरी बाधा पड़ी, क्योंकि कोई भी समुचित प्रकारेण कार्य न करना चाहता था, तब वहाँ के राज्य-संचालकों ने अपने विचारानुसार उचित परिवर्तन न चाहते हुए भी किए, यथाकाल उस राज्य का यह रूप हुआ कि कोई भी यथारुचि व्यापार कर सकता है, किंतु अपने ही हाथों, न कि एक भी नौकर द्वारा। जिसके परिश्रम से देश में कोई समुचित उन्नतिकारी कार्य स्थापित हो, उसे पुरस्कार भारी-भारी मिलें। उस धन के द्वारा वह अच्छे-से-अच्छे वस्त्राभूषण धारण करे, बढ़िया घर में रहे, और चाहे जितने नौकर अपनी सेवार्थ रक्खे, किंतु कोई व्यापार किसी नौकर द्वारा न चला सके। रूसी सरकार सारे संसार में अपने सिद्धांत चलाने का बहुत बड़ा चोप रखती है, तथा इस प्रयत्न में अपरिमित संख्या में धन भी व्यय करती आई है। उसी के द्वारा भारतीय समतावादियों को भी यह संस्था यहाँ चलाने में धन की बहुत बड़ी सहायता चिरकाल से मिलती आई है। यह सहायता ऐसी गुप्तरीत्या आती है कि यथासाध्य कोई इसे पकड़ न पाए। यहाँ तक चालाकी की जाती है कि कश्मीर के बीहड़ पहाड़ी मार्गों से जो धन छिप-छिपाकर आता है, उसमें सैकड़ों-हज़ारों लोगों के हाथ तो रहते हैं, किंतु दो-दो, तीन-तीन से अधिक इस काम में लगे हुए लोग भी अन्यों को नहीं जानते। एक मनुष्य एक से धन लेता और आगे बढ़कर दूसरे को छिपकर देता है। इसी प्रकार हाथोहाथ धन व्यय करनेवालों के पास तक पहुँच जाता है। उसका पूरा हिसाब भी रक्खा अवश्य जाता होगा, किंतु कैसे, सो बतलाना साधारण लोगों के लिये असंभव है। जितना कुछ सुना-सुनाया जान पड़ता है, उसकी भी तथ्यता पर पूरा विश्वास नहीं जमता।

समता-सिद्धांत देश की सारी संपत्ति का राष्ट्रीयकरण चाहता है, अर्थात् सारी संपत्ति सारे देशवासियों की मिलकर है, पृथक्-पृथक् किसी की कुछ नहीं। ये लोग महात्माजी के शांति-संपन्न युद्ध के प्रतिकूल हैं, और सिद्धांत-साधनार्थ खुले-खुले बल-प्रयोग चाहते हैं। ये लोग अपने-अपने देशों के शुभाकांक्षी न होकर केवल रूस को पितृभूमि तथा पूज्य मानते हैं। इच्छा इनकी यह रहती है कि अपने-अपने देशों के राज्य-परिचालन में विशृंखलता उत्पन्न करके लोक-तंत्र असंभव कर दें, और फिर विप्लव करके अपने सिद्धांतों का चलन बढ़ाएँ। जिस किसी दल को राज्य के प्रतिकूल कोई भी उचितानुचित शिकायत हो, उसी का समर्थन देखने-भर को करें, जिसमें राज्य-प्रबंध बिगड़े। शिल्प, व्यापार, कृषि आदि सभी कार्यों को बिगाड़ना और लोकतंत्र अप्रिय बनाना इनका मूल सिद्धांत है। सरकार जो कुछ उचित से भी उचित करे, उसे प्रजा में झूठ-सच कथनों द्वारा अनुचित प्रमाणित करना इनका काम है। जब मथुरादत्तजी ने पूर्णतया ऐसे सिद्धांतों को जाना, तब पहले तो वह घबड़ाए, किंतु कांग्रेसी सिद्धांत स्वभावतः उन्हें बहुत मुलायम दिखते थे, अतएव समय के साथ इसके निगूढ़ तत्त्वों से भी इनका सहयोग होता गया। कुछ समतावादियों में स्त्रियों के राष्ट्रीयकरण का भी सिद्धांत चलता था, जिसका प्रयोजन यह था कि स्त्रियों का किसी एक पुरुष से विवाह अनावश्यक है, और समाज-परिचालकों द्वारा एक-एक स्त्री-पुरुष एक-एक, दो-दो मास या अन्य नियत समयों तक पति-पत्नी के समान एक साथ रहें, तथा संतानों के पालन का भार प्रत्येक स्त्री पर न होकर प्रायः सौ-सौ बच्चे सात-सात, आठ-आठ दाइयों के आभार में रहकर पोषित हों, और वे किसी की संतान न समझे जाकर राज्य के पुत्र पुत्री हों। जैसे महाकवि कालिदास ने महाराजा दिलीप की प्रशंसा में रघुवंश में कहा था—

"रक्षण-शिक्षण-भरण हेत सो भूप प्रजन को
भयो पिता, पितु-मातु रहे केवल जनमन को।"

वही बात यह समाज साहित्य छोड़कर वास्तविकता के रूप में चाहता है।

इसी समाज के उद्दंड मंतव्यों के अनुसार गुप्तरूपेण काम करते हुए मथुरा-दत्तजी एक बार पुलीस द्वारा पकड़े जाकर मैजिस्ट्रेट के सामने लाए गए। इनके इच्छानुसार इनके गुप्त साथियों ने भारतभूषण को वकील बनाकर मामला जीत लिया। इनकी वकालत-संबंधिनी योग्यता के प्रसाद से वह अभियोग से मुक्त कर दिए गए। इस संबंध में अयोध्याप्रसादजी ने भी प्राचीन मित्रता के कारण बहुत

दौड़-धूप की थी। अनंतर चारो प्राचीन मित्रों ने शैलेंद्रकुमारजी के घर पर एक बार फिर कथनोपकथन किए। उस वार्तालाप में मथुरादत्तजी न तो किसी को समझा सके, न इन्हें कोई समझा सका। इनके सिद्धांत ऐसे उद्दंड हो गए थे कि इन मित्रों से मतैक्य असंभव था। अतएव सहायता के कारण अयोध्याप्रसाद और मुख्यतया भारतभूषणजी को भूरि-भूरि धन्यवाद देकर वह तो चले गए, और शेष तीनो मित्रों में कथानोपकथन होने लगे।

शैलेंद्रकुमार—"भाई अयोध्याप्रसादजी! आपका अनुभव कांग्रेसी कामों का कैसा है?"

अयोध्याप्रसाद—"मैं तो भाई इसी कार्य में कई वर्षों से जुटा हुआ हूँ, यहाँ तक कि विवाह भी नहीं कर सका हूँ। आप दोनो तो कुटुंब-परिचालन में भी संलग्न हैं। समझता हूँ कि प्रसन्न-जीवन बीतता होगा।"

भारतभूषण—"ईश्वर की कृपा से गार्हस्थ्य जीवन तो अच्छा चल रहा है। हम दोनो के एक-एक पुत्र भी है, किंतु इन बातों को छोड़कर आप कांग्रेस का वर्णन कीजिए। प्रश्न तो आपसे इसी का हुआ था, किंतु आप गार्हस्थ्य विषय पर आ गए।"

अयोध्याप्रसाद—"अपनी दोनो कृतविद्य भाभियों का हाल यदि कुछ जानना चाहा, तो क्या बेजा है? मैं तो वर्षों से किसानों, मिल-मजदूरों आदि के पीछे दौड़ता-दौड़ता तंग आ गया हूँ। शांति का अनुभव केवल जेलों में होता है।"

शैलेंद्रकुमार—"क्या विवाह करोगे ही नहीं?"

अयोध्याप्रसाद—"इसका तो कोई निश्चय नहीं है। जैसी ईश्वरेच्छा होगी, समय पर हो रहेगा।"

भारतभूषण—"अच्छा, मथुरादत्तजी के वैवाहिक विचार कैसे हैं? उनका जीवन तो बहुत उद्दंड दिख रहा है।"

अयोध्याप्रसाद—"उद्दंडता तो उनकी विद्यार्थिजीवन से ही प्रारंभ हो गई थी। जहाँ तक समझ पड़ता है, बेचारी मनोरमा को उन्हीं ने ही समाप्त कर डाला।"

शैलेंद्रकुमार—"यह तो दृढ़ संदेह-मात्र का विषय है; भला, आजकल क्या कर रहे है?"

अयोध्याप्रसाद—"संपत्ति और तरुणी दोनो के राष्ट्रीयकरण पर उनका विश्वास है ही। कहते ही हैं—'भला रहे मेरा भाई, मेरे घर-घर भौजाई।' उस दल में कई प्रमदाएँ भी हैं, जो तरुणी-राष्ट्रीयकरण को उचित मानकर सक्रिय रूप से प्रवृत्त हैं।"

भारतभूषण—"तब तो हमारे मथुरादत्तजी अपने उच्च सिद्धांतों से लाभ भी उठा रहे हैं।"

अयोध्याप्रसाद —"सिद्धांत संसार के लाभार्थ होते ही हैं। उनके मामलों को मैं भली भाँति जानता भी नहीं। यही इधर-उधर से जो सुन पड़ता है, सो जान गया हूँ।"

शैलेंद्रकुमार—"अब इन बातों को छोड़ो मित्रवर! और कांग्रेस का हाल बतलाओ। लोग आत्मबलि तो आधिक्य से कर रहे हैं, तथा श्रमजीवियों, कृषकों आदि पर उनका प्रभाव भी अच्छा दिखता है, किंतु सरकार अपना सौ-सवासै वर्षों का जमा-जमाया राज्य कैसे छोड़े देती है? कुछ समझ में नहीं आ रहा है। भला, आप क्या सोचते हैं?"

अयोध्याप्रसाद—"गीता में कहा ही गया है कि 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' (मनुष्य का अधिकार केवल कर्मों में है, उनके फलों में नहीं।) बहुतेरे ऊँचे-ऊँचे नेता आत्मबलि पर पूर्णरीत्या तुले हुए हैं। फल क्या होगा, सो ईश्वर के हाथ में है। किसानों का सत्याग्रह, नमक-सत्याग्रह, साइमन-सत्याग्रह आदि हुए तो बड़े मार्के के तथा सफल, बेचारे युवराज का निरादर केवल सिद्धांतों के कारण कुछ अनुचित-सा हुआ। फिर भी सनसनी देश में फैल अच्छी रही है।"

भारतभूषण—"सरकार कुछ घबराई हुई-सी दिखती अवश्य है।"

अयोध्याप्रसाद—"यह बातें तो होती ही रहेंगी, मैं पूछता हूँ कि आप केवल स्वार्थ-साधन में ही प्रवृत्त रहेंगे, या कभी देश-सेवा भी करेंगे?"

भारतभूषण—"कांग्रेस से भी सहयोग तो करने लगा हूँ, और कभी-कभी उसके कार्यों में बाहर भी जाता हूँ। केवल जेल जाने-भर की उद्दंडता नहीं करता। क्या इतने पर भी आप केवल स्वार्थ-साधन का अभियोग लगाएँगे?"

अयोध्याप्रसाद—"सो तो नहीं है, किंतु 'अधिकस्याधिकं फलम्' की बात है ही।"

शैलेंद्रकुमार—"करें, सो क्या करें, बेचारे मेरी भावज के हठ से भी विवश हो जाते हैं। यह तो पूर्णरूपेण कांग्रेसी कार्य में कूदने के भी इच्छुक दिखने लगते हैं, किंतु वाजपेयीजी का भी दबाव पड़ जाता है। चित्त से उद्दंड स्वयं भी नहीं हैं।"

भारतभूषण—"यदि सभी लोग उद्दंडता पर ही कमर कस लें, तो लोक-परिचालन कैसे हो ?"

शैलेंद्रकुमार "लवण-सत्याग्रह, साइमन-सत्याग्रह, गांधी-अर्विन-समझौते आदि तो सब हो चुके हैं, अब कोई फल भी निकलेगा या नहीं ?"

अयोध्याप्रसाद—"विलायत में गोलमेज़ सभा होने की चर्चा तो हो रही है ; किंतु फल की पूर्ण आशा नहीं बैठती। हिंदू-मुस्लिम-टंटा जो सरकार ने उठा रक्खा है, वही उनके राज्य का जीवनाधार समझ पड़ता है।"

भारतभूषण—"है तो उन्हीं का उठाया अवश्य, किंतु भारतीय इतिहास भी इसको कुछ बल प्रदान करता है। मुसलमान यहाँ आए थे विजयी होकर। किंतु अब स्वराज्य मिलने से पराजित-से हुए जाते हैं।"

अयोध्याप्रसाद—"यह भी कोई बात है। जितने मुसलमान आजकल हैं, उनमें से ८० प्रतिशत के निकट मुसलमान बने हुए हिंदू हैं। फिर उनमें से पंचमांश के निकट शिया हैं, जो सुन्नियों से कम व्यवहार रखते हैं, तथा हिंदुओं से विशेष। तबर्रा पढ़ना शियों का धर्म है। उधर उसके उत्तर में सुन्नियों ने चारयारी के झंडे उठाए हैं। स्वयं उन्हीं में पूरा मेल कब है ?"

भारतभूषण—"है यह सब, किंतु वोट देने के समय शिया भी आपसी मतभेद भूल जाते हैं, तथा साथ सुन्नियों का ही दे जाते हैं। राष्ट्रीय दल में हैं बहुतेरे मुसलमान अवश्य, जो कांग्रेस का तो साथ कहने-भर को देते हैं; किंतु चित्त से शुभाकांक्षी मुसलमानों के ही रहते हैं।"

अयोध्याप्रसाद—"देश-प्रेमी मुसलमानों पर संदेह करना ठीक नहीं है। सब लोग ऐसे हैं भी नहीं। बहुतेरे सच्चे कांग्रेसी हैं। अपने भाइयों पर जो उनकी कभी-कभी कृपा दिख जाती है, उसके विषय में यह भी तो समझना चाहिए कि हिंदू-कांग्रेसी क्या हिंदुओं का साथ नहीं देते ?"

शैलेंद्रकुमार—"देते यदा-कदा हैं अवश्य, किंतु स्वयं महात्माजी को देखिए कि कभी सांप्रदायिक स्वार्थ की ओर जाते ही नहीं। ऐसा कोई भी मुसलमान बतला तो दीजिए।"

अयोध्याप्रसाद—"महात्माजी, तो संसार की एक अमूल्य निधि हैं। उनकी समता किसी से नहीं हो सकती। ऐसा कोई दूसरा हिंदू ही बतलाइए।"

भारतभूषण—"यह उत्तर अवश्य अकाट्य है। इतना अवश्य है कि राष्ट्रीय

मुसलमानों की संख्या थोड़ी है, तथा उनका प्रभाव देश पर कम है। तो भी जो कुछ हैं, वही बहुत है।"

अयोध्याप्रसाद—'यही बात है। मुस्लिम लीग का प्रभाव देश में सांप्रदायिकता के बल पर बढ़ रहा है। वे लोग सिक्खों को भी सिखिस्तान का लालच देकर अपनी ओर मिलाना चाहते हैं, यद्यपि यह प्रयत्न सफल होता नहीं दिखता।"

भारतभूषण—"हैं तो सिक्ख भी हिंदू ही; ऐसे गए बीते क्या होंगे कि मुसलमानों से ही मिल जायँ? दलित वर्ग भी रहेगा चैतन्य, ऐसी आशा है।"

अयोध्याप्रसाद—"आजकल भाई! शोषित और शोषक वर्गों के झगड़े ऐसे उठाए जा रहे हैं कि नहीं समझ पड़ता, इस प्राचीन देश की क्या दशा होगी?"

शैलेंद्रकुमार—"क्या आप इस मामले में भी कुछ अनुभव रखते हैं?"

अयोध्याप्रसाद—"जब सारे दिन सब काम छोड़कर कांग्रेस के ही कामों में भटकता हूँ, तब ऐसे प्रश्नों का हाल क्यों न जानूँगा? मिलों के श्रमियों के संबंध में इस प्रश्न के उठाने का प्रयत्न साम्यवादियों द्वारा हो रहा है, यद्यपि अभी तक इसने बल नहीं पकड़ा है।"

भारतभूषण—"देखिए, देश की दशा कैसी चलती है। लक्षण तो कुल मिलाकर उन्नति के दिखते हैं। आगे हरि-इच्छा।"

इस प्रकार बात करके उपाहार के पीछे तीनो सज्जन अपने-अपने कामों में लगे।

तृतीय परिच्छेद

मिलों के श्रमजीवी

(अ) साधारण दशा

कानपुर में बहुतेरी मिलें हैं, प्रधानतया कपड़ों की। उनमें से प्रत्येक में कई शिफ्ट मिलाकर हजार-हजार से तीन-तीन हजार तक मजदूर होते हैं। किसी-किसी को आह्निक मजदूरी मिलती है, और अधिकतर को काम के अनुसार। साँचेवाले प्रायः काम ही के अनुसार दाम पाते हैं। छुट्टी मिलने के समय उनके फाटकों पर मेला-सा लग जाता है। इनके अतिरिक्त जमादार, क्लर्क, अफ़सर आदि होते हैं। जो लोग मजदूरों को लाकर जुटाने का काम करते हैं, उन्हें जाबर, हेड जाबर आदि कहते हैं। उन लोगों के खाते अलग-अलग रहते हैं, और अपने-अपने खातों के अनुसार उन्हें भी दाम मिलते हैं, जो पाँच-पाँच सै, छ-छ सै मासिक तक पहुँचते हैं। बंबई, अहमदाबाद, शोलापुर, नागपुर, देहली, कानपुर, कलकत्ता आदि में कपड़े की मिलें विशेषतया हैं। बहुतेरी इधर-उधर मदरास-प्रांत में हैं, और कुछ पंजाब, राजपूताना आदि में भी। बंबई में जो 'जाबर' कहलाते हैं, और कानपुर आदि में वही 'मिस्त्री' कहे जाते हैं। कलकत्त से दस-बारह मीलों के भीतर ग्यारह-बारह पटसन की भी मिलें हैं, पर मुख्यता कपड़ों की ही मिलों की है।

जो स्त्रियाँ काम करने मिलों को जाती हैं, उनके छोटे बच्चों के लिये साठ-सत्तर पालने दो-तीन कक्षों में रहते हैं। जहाँ बच्चे छोड़कर वे काम पर जाती हैं, वहाँ दो-एक दाई तथा मेहतर एवं अन्य नौकर समुचित संख्या में मिलें रखती हैं। बच्चों के वहाँ छोड़े जाने पर मिल के द्वारा संपन्न किए हुए साफ़ कपड़े उन्हें पहनाए जाते हैं, और घर वापसी पर अपने-अपने कपड़े फिर पहना दिए जाते हैं। छोटे बच्चों के लिये मिल गाय का दूध भी देता है। श्रमियों के स्थानों में रेडियो लगे रहते हैं, जिनके गाने आदि लाउड स्पीकरों द्वारा दूर तक पहुँचा दिए जाते हैं। काम करने वाले सबजगहों पर छुट्टी में हर समय गाने आदि सुन सकते हैं। ऐसे प्रबंध बढ़िया मिलों में रहते हैं। अस्पताल काम

करनेवालों के लिये प्रायः सभी मिलों में रहते हैं। किन्हीं-किन्हीं में श्रमियों के बालकों के लिये .फ्री स्कूल भी रहते हैं। होली-दीवाली आदि में श्रमी लोग मिल-मिलकर नाचते-गाते और अपने को प्रसन्न करते हैं। जब मिल-मालिकों के यहाँ विवाह-जनेव आदि के काम होते हैं, तब सारे काम करनेवालों का न्योता हो जाता है। विवाहादि के लिये उनसे कोई चंदा कभी नहीं माँगा जाता। होली में मिल-मालिक अपने-अपने मैनेजरों, क्लर्कों आदि को मिठाई भेजते हैं, तथा ऊँचे कर्मचारियों के प्रायः निमंत्रण किया करते हैं। जिनसे विशेष प्रसन्न रहते हैं, उनके निमंत्रण प्रायः प्रति सप्ताह होते हैं। उनसे मित्र-भाव घरौतन का-सा रहता है। स्त्रियाँ, बच्चे आदि दोनो ओर से आया-जाया करते हैं। जब उनकी पुत्रियों के विवाह होते हैं, तब बेटी और दामाद दोनो ऊँचे कर्मचारियों के घरों को जाते हैं तथा उन्हें भेट भी विवाह के समय समयानुकूल दी जाती है। ऐसे कर्मचारियों की पुत्रियों के विवाहों के समय मिल-मालिक भी अच्छी-खासी भेटें देते हैं। यही दशा रियासतों, बड़े जमींदारों आदि के यहाँ भी होती है। रियासतों में तो साल में पाँच-छ सै के कपड़े यों भी भेट में आते हैं। दीवाली में चार-पाँच सै से पंद्रह-बीस सै तक रुपए बड़े-बड़े मिल-मालिक लक्ष्मी-पूजा में रखते हैं। उच्च कर्मचारी, क्लर्क आदि का ऐसे समयों पर कर्तव्य है कि बिना बुलाए जायँ अवश्य। वे रुपए बहुत शुभ समझे जाते हैं, और पूजन के पीछे कर्मचारियों, मित्रों बच्चों आदि में बाँट दिए जाते हैं। उन्हें लेने से कोई इनकार नहीं कर सकता। मिल-मालिक अच्छे-अच्छे महलों में ऊँचा जीवन बिताते हैं। साधारण व्यय भी अच्छा करते हैं। प्रतिवर्ष जब हिसाब लगता है, तब ऊँचे-नीचे सभी कर्मचारियों तथा श्रमियों तक को एक से तीन मास तक का वेतन बोनस में मिलता है। यह बोनस तभी बँटता है, जब मिल को समुचित लाभ होता है। ऐसा होता प्रायः सदैव है। जब महीने में वेतन बँटता है, तब उसकी प्रसन्नता में श्रमी लोग उस दिन आधा, तिहारा ही काम करते हैं। धन बचाने की चिंता बहुत कम करते हैं। प्रायः सारे श्रमी उस दिन मद्य का सेवन आधिक्य से करते हैं, तथा मधुशालाओं सिनेमा, थिएटर, रंडियों आदि के यहाँ उस रात को अच्छी भीड़ रहती है। एक यहूदी महाशय ने ५०) बोनस के पाकर कुछ तो मद्य में व्यय कर दिए, तथा शेष धन की मिठाई, दुवन्नी, चवन्नी आदि लेकर मार्ग में सारी-की-सारी बाँट दी, अथच घर में खाली जेब लिए जा पहुँचे। तब से मैनेजर साहब ने उनके स्थान पर उनकी स्त्री को

बोनस, वेतन आदि देना प्रारंभ कर दिया; जिसमें बेचारी का घर तो चले। मिल अपने काम करनेवालों को अपने यहाँ के कपड़े थोक-बिक्री की दर से दे देती है, जिससे मिल की तो हानि नहीं होती, तथा उन लोगों को लाभ हो जाता है।

बंबई में एक गिरनी कामगार यूनियन थी, जिसके प्रायः सारे कार्यकर्ता सदस्य थे। सब लोग उसमें आय के अनुसार मासिक चंदे भी देते थे। उसके द्वारा उनके अधिकारों आदि के संबंध में माँगें हुआ करती थीं, जिनका न्यूनाधिक प्रभाव मिल-मालिकों पर भी पड़ता था। ऐसे ही यूनियन अन्य स्थानों पर भी हैं। जब हड़तालें होती हैं, तब यूनियनों की पूँजियों से मजदूरों को सहारा भी दिया जाता है। मिल-मालिकों के भी संघ बने रहते हैं, जिनकी सभाएँ कठिन अवसरों पर होती हैं, और सारे मिल-मालिक सलाहें कर-करके तथा वकीलों, नेताओं, अपने समर्थकों आदि की सम्मतियाँ ले-लेकर यथावसर निर्णय करते हैं। कठिन अवसरों पर दो-दो, चार-चार मास तक मिलें बंद भी हो जाती हैं। ऐसे अवसरों पर मिलों की तो लाखों की हानि होती ही है, किंतु निर्धन कार्यकर्ताओं के लिये जीवन-मरण के प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं। १६२६-१६३० तक श्रमियों का समर्थन प्रायः कांग्रेस के ही कर्मचारी करते थे। ऊँचे-ऊँचे मिल-मालिकों का प्रेम-पूर्ण संबंध महात्मा गांधी से भी रहता था, जिससे झगड़े बहुत आधिक्य से नहीं होते थे। झगड़ों का मूल प्रायः बोनस का प्रश्न होता था, और मजदूरी की मात्रा भी। समाजवादियों का तब तक कांग्रेस से पार्थक्य नहीं हुआ था, और कांग्रेसी साधारण सिद्धांत ही उस काल घोर समाजवाद-से समझे जाते थे। साम्यवाद के विचार उठ चुके थे, किंतु उनकी प्रचंड उद्दंडता तब तक स्थापित न हुई थी। आतंकवादी आरंभ में कांग्रेस के अंदर ही रहते थे, और कुछ हिंदू-सभा में भी। यद्यपि इन संस्थाओं के विचार तथा कार्य-प्रणाली आतंकवाद के प्रतिकूल थीं, तथापि उद्दंड स्वभाव के लोग आतंकवाद के कार्यों में संलग्न हो जाते थे। आतंकवादियों के द्वारा कई निर्दोष या सदोष ब्रिटिशों तथा उनके समर्थक भारतीयों आदि के विनाश समय-समय पर हुए। ऐसे ही लोग अपने विचारों के अनुसार अनुचित कार्यकर्ता सधन लोगों पर डाके भी डालते थे। ये लोग न तो वास्तव में कांग्रेसी थे, न हिंदू सभावाले। इनकी विचारा-वली सभी से भिन्न थी, किंतु समझते थे लोग अपने को देश-हितैषी ही। यूनियनों में कांग्रेसियों, समाजवादियों आदि के प्रभाव न्यूनाधिक अवश्य हो जाते थे।

कानपुर में कपूरचंद-नामक एक भारी मिल-मालिक थे। वास्तव में तो मिल-मालिक कोई एक व्यक्ति नहीं होता, वरन् सैकड़ों, हजारों लोग कुछ-कुछ हिस्सों के मालिक होते हैं, किंतु जो उस मिल का प्रबंधक होता है, उसके हिस्से बहुत अधिक होते हैं। वही उसका कर्ता-धर्ता विधाता होता तथा मिल-मालिक कहलाता है। हमारे कपूरचंदजी एक ऐसे ही मिल-मालिक थे, जिनके मिल में प्रायः २,००० लोग काम किया करते थे। उन श्रमियों का एक यूनियन भी था, जिसमें समय-समय पर श्रमियों के हितार्थ मंतव्य पास हुआ करते थे। हमारे अयोध्याप्रसादजी उन दिनों वहीं काम किया करते थे, और इनका प्रायः बीस वर्ष का छोटा भाई वहीं कॉलेज में पढ़ता था। कपूरचंदजी पंजाबी खत्री थे। उनके एक पुत्र तथा एक ही पुत्री थी, जो कॉलेज में पढ़ती तो न थी; किंतु वहाँ जाती-आती और पहली कक्षा का कोर्स पढ़ती थी। अयोध्याप्रसादजी के भ्राता का नाम वसुधाभूषण था। उन्हें जेब-खर्च के लिये १०) मासिक मिलते थे, और कॉलेज में सरकारी छात्रवृत्ति भी वह पाते थे। अपने भाई अयोध्याप्रसादजी के कार्यों में भी वह कभी-कभी सहयोग दे दिया करते थे। कॉलेज में एक परम सुंदरी बालिका उन्हें कभी-कभी मिल जाती थी, जिससे उनका समय पर संयत मित्र-भाव बढ़ने लगा। आप जब मिलते थे, तब उपाहार-गृह में ले जाकर उसे सुख-यात्रा भी अपने साथ कराते थे; किंतु दाम प्रायः वही दे देती थी। इनके बहुत हठ करने पर कभी-कभी इन्हें देने देती थी। अपनी मोटर पहले ही घर भेजकर इनके साथ पदाति रूप में चलती थी। वसुधाभूषणजी पढ़ने में बड़े ही चैतन्य थे, और उस बालिका को भी पाठ अवगत करने में सहायता दे दिया करते थे। उसने इनकी आर्थिक कृशता के विचार से कई बार दो-दो, चार-चार सै रुपए देने चाहे; किंतु इन्होंने कभी स्वीकार न किया। इन दोनो की मैत्री शुद्ध प्रीति पर ही आधारित रहती थी।

(ब) मिल में हड़ताल

उधर मिल के श्रमियों पर कांग्रेस का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ने लगा। यद्यपि समय को देखते हुए उन्हें मजदूरी कम नहीं मिलती थी, तथापि धन की समुचित रक्षा पर तो उन लोगों का ध्यान ठीक-ठीक रहता न था, जिससे उन्हें आर्थिक कष्ट बना ही रहता था। बहुतेरे ऋण लेकर महीने-भर काम चलाते थे, और वेतन पाने पर कुछ तो मद्य-सिनेमा आदि में फूँक देते थे, और शेष महाजनों

के पास पहुँच जाता था। बहुतेरे मिल से ही ऋण उधार लेते रहते थे, जो वेतन बँटने के समय काट लिया जाता था। इस प्रकार अपनी आर्थिक कृशता की कथा वे कांग्रेसियों, यूनियनों आदि को सुनाया करते थे, और वहाँ से उनका समर्थन होता था। हमारे मथुरादत्तजी के भी उद्दंड भाषण ऐसे समयों पर होने लगते थे, जिससे मजदूरों के रोएँ खड़े हो जाते थे। एक बार यूनियन की बैठक में हजार-बारह सै साँचेवाले बैठे थे। उस काल इनका भाषण यों हुआ—

मथुरादत्त—"भाइयो ! आप लोगों को समझना चाहिए कि सारे देश में जो कुछ धन उत्पन्न होता है, वह सब हमीं-आपके पुरुषार्थ का फल है; किंतु स्वाद उसका हमें न मिलकर धनिकों को प्राप्त होता है। यहाँ मिलों में देखिए, तो सारा कपड़ा बनाते तो आप लोग हैं; किंतु महलों में रहते हैं मिल-मालिक। आपके रहने को आठ-आठ फ़ोट लंबा-चौड़ा साफ़ कक्ष भी अलभ्य है। ऐसे कमरों में भी आप लोग कभी-कभी दस-दस, पाँच-पाँच की संख्याओं में रहते हैं। मच्छड़ रात-भर काट-काटकर शरीर चलनी कर देते हैं। पेट-भर खाने को अच्छा सुस्वादु भोजन नहीं मिलता। अपने मैले-कुचैले, फटे, बदबूदार कपड़ों को देखकर आप ही की इच्छा उन पर थूक देने की होगी। घर में एक मोढ़ा भी अप्राप्त है। उधर मिल-मालिकों के महलों की चित्रकारी देखिए, तो इंद्र-भवन लजाता-सा दीखेगा। भारी-भारी कमरों में मोटे-मोटे ग़लीचे बिछे हैं, जिन पर चलने में पैर तीन अंगुल धुस जाता है। खस की टट्टियाँ लगी हुई हैं, तथा बिजली के पंखे चल रहे हैं। भारी-भारी कौचें पड़ी हुई हैं, जिन पर बैठते ही शरीर पाँच अंगुल भीतर धुस जाता है। दरवाजों पर तीन-तीन केवाड़ लगे हुए हैं, एक-एक अच्छे रँगे हुए लकड़ी के, एक-एक शीशों-वाले दिलहों के और एक-एक महीन जालीदार लोहे के। उन्हें खोलते ही तुरंत बंद कर लेते हैं कि जिसमें कक्ष में कोई मशक आदि न घुस जाय। दिन में तीन-तीन बार झाड़े-पोंछे जाते हैं। कहीं गर्द का नाम नहीं देख पड़ता। भोजन, षड्रस-पूर्ण छप्पन प्रकार के मसालों का हर समय प्रस्तुत है। यहाँ आपको भूख के मारे किसी प्रकार का भोजन अप्राप्त है, वहाँ उनके लिये सबसे बड़ा प्रश्न पचने का है। डॉक्टरों से नित्य इसी बात की दवाएँ लेते रहते हैं कि दुष्पच का काठिन्य दूर रहे। कपड़े दिन में तीन-तीन बार बदलते हैं। एक ही बार पहनने के पीछे वस्त्र धोबी के यहाँ धुलने चला जाता है। एक-एक बच्चे के सँभालने को तीन-तीन नौकर लगे हुए हैं, जिनकी वर्दियाँ सुनहले-रूपहले

कैतून से चमाचम चमक रहीं हैं। पृथ्वी पर पैर रखना जानते ही नहीं। जब निकलते हैं, तब भारी-भारी मोटरों पर।

अब कहिए भाइयो! यह सारी संपदा किसके पसीने से कमाई गई है? यह सारा धन आप ही लोग कमाकर इन्हें देते हैं, और स्वयं बिलों में रहकर, चीथड़े पहनकर पेट-भर भोजनों के लिये भी तरसते हैं। भाइयो! हम लोग शोषित वर्ग में हैं, तथा यही हमारे मिल-मालिक शोषक हैं, जो हमारा खून चूस-चूसकर मोटे हुए हैं।"

कुछ श्रमी—"क्या ही बढ़िया भाषण हो रहा है। भाइयो! ध्यान-पूर्वक सुनो।"

मथुरादत्त—"यही दशा खेतिहरों और राजाओं की है। जहाँ देखिए, लूट मची हुई है। यह भूमि क्या जमींदारों ने बनाई है? जिस ईश्वर ने हमें उत्पन्न किया है, उसी ने पृथ्वी भी बनाई है। परिश्रम करके धान्य हम उत्पन्न करते हैं, फिर लगान लेनेवाले ये जमींदार कौन हैं? जहाँ देखो भाइयो! वहीं लूट मची हुई है। दो-दो हजार लोग जुटकर काम हम-आप करते हैं, पेट भरता है किसी और का। थू है ऐसी अमीरी पर।"

मिल-मैनेजर—"देखो, भाइयो! आप लोगों ने मथुरादत्तजी का इकंगी भाषण बहुत कुछ सुन लिया। अब दूसरा पक्ष भी सुनने की कृपा कीजिए।"

एक श्रमी—"यह यूनियन की बैठक है, मिल का प्रांगण नहीं। यहाँ हम लोग आपकी झायँ-झायँ सुनने एकत्र नहीं हुए हैं। मथुरादत्तजी ने एक अक्षर भी अनुचित नहीं कहा है। आप कृपया प्रस्थान कीजिए।"

मिल का सर दफ्तर माल—"यदि मैनेजर साहब तक की बात सुनने को आप लोग तैयार नहीं हैं, तो स्वयं ही अपने वेतन बढ़ा लीजिए। जब तक दोनो ओर की बात न सुनी जायगी, तब तक शुद्ध निर्णय क्या होगा? निर्णय तो तभी हो सकता है, जब दोनो पक्ष एक दूसरे की बात सुनकर मामले के मूल तक पहुँचें।"

द्वितीय श्रमी—"आप कृपया चुप तो रहिए। यह हमारी यूनियन है। आपका यहाँ क्या काम है। जाइए, अपना काम देखिए।"

तृतीय श्रमी—"ऐसी उद्दंडताओं से संसार का कार्य नहीं चलता। यदि मिल की बात भी सुनने को आप तैयार नहीं हैं, तो वह आपसे काम ही क्यों लेगी। जाइए, अपने घर खुश रहिए। बात सुनने में क्या दोष है; मानो

या न मानो। अंत में चाहे डटे अपनी ही बात पर रहो, किंतु सुन तो उनकी भी अवश्य लो।"

चौथा श्रमी—"अच्छा भाई, सुनने में क्या दोष है?"

मिल-मैनेजर—"भाइयो, पंडित मथुरादत्तजी ने जमींदारों तथा मिल-मालिकों की आय पर अनुचित आक्षेप किए हैं। यद्यपि जमींदारों का मामला हमसे असंबद्ध है, तथापि कथन उस पर भी हुआ ही है। अतः मेरा भी दो शब्द कहना अनुचित न होगा। जो लगान किसानों से लिया जाता है, उसमें प्रायः ४५ प्रतिशत सरकार लेती है, सात प्रतिशत वसूली आदि में व्यय होता है, और प्रायः ४८ प्रतिशत जमींदारों को मिलता है। सरकार हमारी रक्षा करती, उन्नति के प्रबंध बाँधती, विद्या-दान करती तथा सैकड़ों अन्य प्रकारों से जनता को लाभ पहुँचाती है। उसकी मालगुजारी तो हर प्रकार से समर्थनीय है। रही जमींदारों की ४८ प्रतिशत आय, सो उसके लिये उन्होंने पृथ्वी को जोतने योग्य बनाने में प्रचुर व्यय किया है, तथा बहुतों ने पृथ्वी पूरे दाम लगाकर मोल ही ली है, अतः उनका कुछ थोड़ा-सा पाना अयोग्य नहीं दिखाता।"

एक श्रमी—"आप जमींदारी छोड़कर मिलों की बात चलाइए, श्रीमान्!"

मिल-मैनेजर—"यह विषय तो मैंने यों ही कह दिया था, अब मिलों पर ही आता हूँ। आप स्वयं देखिए कि करोड़ों रुपए लगाकर जो कारखानों के लिये इतनी-इतनी भारी इमारतें बनवाई गई हैं; वे क्या आप-से-आप खड़ी हो गई हैं? फिर असंख्य धन लगाकर जो कलें आई हैं, विना उनके आप लोगों में से एक-एक क्या प्रतिदिन पाँच गज भी कपड़ा तैयार कर सकता? इमारतों और कलों के अतिरिक्त प्रबंध में लाखों का व्यय होता है। सामान जुटाने में असंख्य धन लगता है। विना यह सब हुए आप लोग क्या काम कर सकते थे? आप खुद देखिए कि बाहर लोगों को जो मजदूरी मिलती है, उससे सतगुनी-अठगुनी क्या प्रत्येक साँचा चलानेवाला नहीं पाता? ऐसी दशा में शिकायत क्या हो सकती है? पूरा व्यय काटकर बेचारे मिल-मालिकों को अपने लगाए हुए धन पर ६ प्रतिशत भी तो नहीं बैठता। उस पर भी ऊपर से सरकार को न-जाने कितना टैक्स देना पड़ता है। आप लोग हैं किस हवा में? मिल-मालिक आपसे क्या लिए लेते हैं? उलटे अपने करोड़ों रुपए लगाकर आप ही को बाहर से सतगुनी-अठगुनी द्रव्य कमाने का अवसर देते हैं।"

माधवी—"सज्जनो ! मैनेजर साहब का व्याख्यान समाप्त हो गया है ; इनके विचारों के उत्तर में अब मैं भी कुछ कहना चाहती हूँ।"

एक श्रमी—"अवश्य कहिए, बाईजी ! आप तो सदैव हमारे यूनियन पर कृपा करती आई हैं। अपने पिता द्वारा छोड़ी हुई लाखों की संपत्ति की कुछ भी परवा किए बिना हम लोगों के साथ घंटों कार्य-संपादन करती हैं, अथच यूनियन का एक पैसा भी व्यय कराना दूर रहा, उलटे उसी को अपनी जेब से सैकड़ों देती हैं। ऐसी गुणवती देवी संसार में मिलेगी कहाँ ?"

माधवी—"बड़ी कृपा। मैं जमींदारी के संबंध में कुछ भी न कहूँगी, क्योंकि यह मामला हमारे विषय से असंबद्ध है, यद्यपि मैनेजर साहब के कथनों के प्रतिकूल बहुतेरी बातें कही जा सकती हैं, तथा मथुरादत्तजी के शुद्ध एवं परमोच्च विचारों का समर्थन सुगमता-पूर्वक किया जा सकता है।"

द्वितीय श्रमी—"देवीजी ! इस जमींदारी के पचड़े को छोड़कर आप मिल पर ही भाषण करने की कृपा कीजिए, क्योंकि यही हमारा विषय है, और इसी पर हमारे जीवन-मरण का प्रश्न लगा हुआ है। इसीलिये हम लोग आज एकत्र भी हुए हैं।"

माधवी—"यही बात है, भाईजी ! अच्छा, सुनिए। हमारे यहाँ रूस में किसी को धन द्वारा सेवक रखकर कमाने का अधिकार नहीं। यह अधिकार केवल सरकार को रहता है। वहाँ श्रमियों को जो कुछ पारिश्रमिक मिलता है, उसके ऊपर जो कुछ बचता है, वह सरकार ही को जाता है। जिससे उलटकर सारी जनता को लाभ पहुँचाता है। यहाँ हम श्रमियों को तो एँड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ता है ; किंतु उससे लाखों का लाभ होता है मिल-मालिकों को। फिर यह भी मानने को मैं तैयार नहीं हूँ कि इनको केवल ६ प्रतिशत का लाभ होता है। ऐसी ऐसी भी मिलें हैं, जो ४० या ५० प्रतिशत लाभ उठाती हैं। १९१४-१८ के महायुद्ध के समय मिलों को १०० प्रतिशत से भी बढ़कर लाभ हुए थे। तब भी बेचारे श्रमियों को क्या मिल गया था ? यही थोड़ा-सा बोनस तथा महँगाई हाथ लगी थी।"

मिल-मैनेजर—"महायुद्ध के समय किसी-किसी मिल को एकाध साल विशेष लाभ हो पड़ा, सो तो देवीजी को स्मरण है; किंतु बीसों मिल जो टूट गए, उनकी हानि किसने पूरी कर दी ? मिल-मालिक लोगों में कुछ बुद्धिमान् व्यक्ति जो कुछ विशेष लाभ कभी-कभी उठा लेते हैं, वह अपने शिल्प-चातुर्य के ही बल पर कर पाते हैं। यदि सरकार ये काम उठाए, तो कभी भी न तो इतना लाभ प्राप्त कर सके,

न श्रमियों को इतना पारिश्रमिक या बोनस दे सके। जो मिल उत्तमता-पूर्वक चल रहे हैं, प्रबंधकों के रचनात्मक चातुर्य से; न कि केवल साँचे चलानेवालों के बल पर। सभी बातों में मस्तिष्क-प्रबलता की आवश्यकता होती है। शक्ति तो बैल में विशेष है, फिर क्यों मनुष्य का सामना नहीं कर पाता ? आप लोग मिल-मालिकों के लाभ पर तो जाते हैं, किंतु यह क्यों नहीं सोचते कि स्वयं आप बाहरवालों से अठगुना वेतन पाते हैं, और ऊपर से प्रतिवर्ष कुछ बोनस भी मिल ही रहता है। आप लोग स्वयं मद्यादि में बेजा व्यय करके धनाभाव के कष्ट में पड़ते हैं। यदि सँभालकर चलें, तो दस-पाँच वर्षों में हज़ारों रुपए पास हो जायँ।"

एक श्रमी—"मैनेजर साहब, तो हम लोगों को बैल और मूर्ख बना रहे हैं! भाइयो! मेरी समझ में तो जो व्याख्यान पंडित मथुरादत्तजी तथा देवी माधवी बाई ने दिए हैं, उनका कोई उत्तर नहीं है।"

द्वितीय श्रमी—"हम लोग खुले-खुले शोषित वर्ग में हैं, और ये शोषक हमें मूर्ख बना रहे हैं। पंडितजी महाराज! अब आप ही आज्ञा कीजिए कि हम लोगों को क्या करना चाहिए ?"

मिल का सर दफ़्तर माल—"क्या सारे मेंबर इन्हीं दोनो श्रमियों के कथन से सहमत हैं ?"

बहुत श्रमी—"और नहीं, तो क्या आप लोगों के झाँसों में आवेंगे ? सहमत चित्त में आप भी होंगे; किंतु मिल के अफ़सर होकर कहते और-की-और हैं।"

(मिल-मैनेजर और सर दफ़्तर माल का प्रस्थान)

मथुरादत्त—"भाइयो! मैं आप लोगों को सौ-सौ धन्यवाद देता हूँ कि श्रीमती बाईजी के तथा मेरे कथनों पर आपको विश्वास हुआ है। हम लोगों को मिल-मालिक को एक मास का नोटिस देना चाहिए कि चार मास का वेतन प्रत्येक श्रमी को बोनस में मिले, तथा सवा सौ रुपयों से कम किसी साँचेवाले को मासिक वेतन न मिले। यदि ऐसा न होगा, तो एक मास के पीछे पहली तारीख़ से सारे श्रमी हड़ताल कर देंगे, और उसमें हमारा कोई दोष न होगा।"

बहुतेरे श्रमी—"बहुत ठीक है। ऐसा ही किया जायगा।"

इस प्रकार भारी करतल-ध्वनि के साथ यह मंतव्य पास हो गया, और सारे मेंबर अपने-अपने घरों को चल दिए। पंडित मथुरादत्तजी भी माधवी बाई के साथ अपने घर को चले गए। रास्ते में बहुत प्रसन्नता के साथ बातचीत होती गई। भवन पर पहुँचते-पहुँचते प्रायः रात के दस बज चुके थे। पंडितजी के यहाँ

भोजन तैयार था। बाईजी अपने घर के लिये चलने की शीघ्रता कर रही थीं, किंतु पंडितजी मार्ग से ही कुछ स्वादिष्ठ वस्तुएँ मोल ले आए थे, तथा घर का भी भोजन श्रेष्ठ था ही। इनके हठ करने पर बाईजी ने वहीं इनके साथ भोजन किया, और वह फिर चलने की शीघ्रता में हुईं। इस पर यों वार्तालाप होने लगा—

मथुरादत्त—"बाईजी! आप तो बहुत ही शीघ्रता में रहा करती हैं। कभी हम दीनों पर अनुग्रह की दृष्टि नहीं पड़ती।"

माधवी—"यह क्या कहते हो, पंडितजी? मैं तो तरुणियों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में हूँ नहीं, न साम्यवाद की ही पक्की मेंबर हूँ। उसके कुछ सिद्धांतों को मानती अवश्य हूँ; किंतु केवल कुछ को, सब को नहीं। विवाह मैंने न तो किया, न करने का विचार ही है। फिर भी आज तक अनुचित मार्ग पर पैर नहीं रक्खा है। किसी पुरुष से संसर्ग का अब तक प्रश्न भी नहीं उठा है।"

मथुरादत्त—"मैं कब आपके उच्चाचरण पर दोष लगाने का साहस करता हूँ; किंतु जिसकिसी का संपर्क परमगर्हित मानता हुआ मैं तो मित्र-भाव की पूर्णता के पक्ष में अवश्य हूँ। संसार में अनुभव सभी बातों का बिना किए जीवन में पूर्णता नहीं आती। विवाहादि का विचार ईश्वरीय आज्ञा पर अवलंबित न होकर केवल एक मानुषीय नियम है। मैं तो इन चरणों पर मस्तक रगड़ने को सदा से प्रस्तुत रहा हूँ, चाहे विवाह के रूप में हो या केवल मित्रता के।"

माधवी—"विवाह के प्रतिकूल तो मेरा मत सदा से रहा आया है। इससे स्त्रियों की स्वतंत्रता में न्यूनाधिक प्रतिबंध पड़ता ही है। रही मित्रता की बात, सो मेरी-आपकी मैत्री कई मास से चली आती है, जिसमें कोई न्यूनता नहीं है। ऐंद्रिय संबंध इसके लिये आवश्यक नहीं। ऐसे प्रस्ताव सुनकर कोई सच्चरित्रा तरुणी क्रोध से जामे-बाहर हो सकती है। मैं इतना न तो क्रोध ही करती हूँ, न इन बातों को अपमानकारिणी मानती हूँ; फिर भी आपको सूचित किए देती हूँ कि आज अंतिम बार ऐसी चर्चा सुन रही हूँ। कृपया भविष्य में ऐसे कथनों से दूर ही रहिएगा।"

मथुरादत्त—"आप तो देवीजी मेरे यहाँ पधार बीस-पचीस बार चुकी हैं। प्रत्येक बार चरण-रज सेवन की अपनी आकांक्षा में बड़ी कठिनता से स्ववश कर सका हूँ। अब या तो कृपा-कटाक्ष फेरिए, या यह तमंचा भरा हुआ यहीं प्रस्तुत है, बस, लिबलिबी (Triger) दबा दीजिए। जब तक इस शरीर से प्राण-पखेरू नहीं उड़ता, तब तक ऐसी प्रार्थना से पराङ्मुख होने की

शक्ति ही इस दास में नहीं है। यह विश्व-विमोहक रूप, ऐसी बुद्धि, ऐसा विशद देश-हितैषिता का कोष तथा यह २० वर्ष की अवस्था रखकर भी यदि मुझ-जैसे चरण-सेवकसे केवल 'ना' कहना ही आपने सीखा है, तो इससे बढ़कर अत्याचार और हो ही क्या सकता है ? ऐसी दशा में तो प्राण ले लेना एक बहुत छोटा-सा अपकार होगा।"

माधवी—"पांडेजी ! मैं आपको ऐसा प्रबल रसिक नहीं समझती थी, न अब तक यहाँ आने में कभी मुझे ऐसा भान हुआ कि आपकी कुदृष्टि मुझ पर इस प्रकार से पड़ती थी। मैं तो आपको एक प्रबल देश-हितैषी अथच उत्कृष्ट साम्य-वादी-मात्र समझती थी।"

मथुरादत्त—"इन दोनो सद्‌गुणों को धारण करते हुए क्या कोई व्यक्ति पुंसत्व से रहित हो जाता है ? आपकी जगन्मोहिनी मूर्ति देखकर तो पहले ही दिन से मैं आपे में नहीं रहा था। न-जाने किस कष्ट-कल्पना से प्रस्ताव करने से मैं अपने को रोके रहा। आश्चर्य है कि मेरा ऐसा प्रेम-पूर्ण भाव आपने कभी समझा ही नहीं। मैं तो यह बात मानने में भी असमर्थ-सा हूँ, केवल अप्रसन्नता के भय से ऐसा संदेह प्रकट नहीं करता। महिलाएँ ऐसे भाव अति शीघ्र ताड़ जाने में परम दक्ष होती हैं। मैं तो यही प्रार्थना करूँगा कि विवाह से अपने को वंचित न रखिए। जैसे मेरे विचार हैं, वैसे ही आपके भी। फिर मेरे संग से आपकी स्वतंत्रता में क्या बाधा पड़ सकती है ? इस दास पर कृपा-कटाक्ष फेरने से विमुख अब तो न रहिए।

माधवी—"मैं तो सेठानी हूँ, और आप ब्राह्मण हैं। भला, हम दोनो का विवाह कैसे हो सकता है ?"

मथुरादत्त—"आप भी क्या बातें करती हैं, देवीजी ! चलिए, आज ही आर्य-समाज में हम दोनो नाम लिखा लें, और कल ही नियम-पूर्वक विवाह संपादित हो जाय।"

माधवी—"मैं तो पांडेजी ! विवाह कभी न करूँगी। इस बात को आप निश्चित समझिए। उधर अवैध संसर्ग भी मैं अत्यंत गर्हित समझती हूँ।"

मथुरादत्त—(पैर पकड़कर तथा उन पर सिर रखकर) "अब तो देवीजी, बिना हाँ कहलाए ये चरण-कमल न छोड़ूँगा। कोई बलात्कार का प्रश्न नहीं है। चाहे 'हाँ' कहकर इस दीन पर अमृत-वर्षा कर दीजिए, अथवा तमंचा लेकर मेरा शरीरांत ही कर डालिए। तीसरा कोई मार्ग नहीं है।"

माधवी—"तुम तो पांडेजी ! बड़े ही हठवादी हो। मुझे बड़े ही असमंजस में डाल रक्खा है।"

ऐसा शुभ वचन सुनकर मथुरादत्तजी पहले दस-बीस चुंबनों से अपने को कृतार्थ करते हैं, फिर दोनो प्रसन्नता के साथ प्रायः दो घंटे एक अच्छी शैया पर विश्राम करते हैं। अनंतर माधवी बाई के इच्छानुसार उन्हें उनके मकान पर पहुँचा आते हैं। और, यह नवीन संबंध गुप्त रूप से चलता रहता है।

उधर मिल-मालिक कपूरचंदजी अपने श्रमियों का नोटिस पाकर कुछ चिंतित होते हैं। ऐसा ही नोटिस दो-तीन अन्य मिल-मालिकों को भी मिलता है, और उनके संघ में यह प्रश्न उपस्थित किया जाता है। कपूरचंदजी लखनऊ से भारतभूषणजी को बुलवाकर उनसे भी सलाह करते हैं। वकील साहब कुछ वेतन-वृद्धि द्वारा श्रमियों को प्रसन्न रखने का मंत्र देते हैं, किंतु परम शीघ्रता से हार मानने से भविष्य में भी ऐसे खटके की बात भी कह देते हैं। श्रमियों में नित्य सलाहें होती रहीं, अथच अयोध्याप्रसाद, मथुरादत्त, माधवी बाई तथा वसुधाभूषण के भी व्याख्यान समय-समय पर होते रहे। धीरे-धीरे एक मास पूरा होने के निकट आया। इस बीच माधवी बाई और वसुधाभूषणजी दस-पाँच बार कपूरचंदजी की सेवा में उपस्थित हो-होकर श्रमियों के हितार्थ उनसे प्रार्थनाएँ तथा विचार-विनिमय करते रहे। कपूरचंदजी वसुधाभूषण की सज्जनता तथा माधवी बाई के रूप एवं बुद्धि-प्रखरता से बहुत कुछ प्रभावित होते गए। इन दोनो के प्रयत्नों से वे बहुत कुछ दबने को भी प्रस्तुत रहे; किंतु उस परिमाण पर नहीं जिससे श्रमियों को पूर्ण संतोष हो जाता।

धीरे-धीरे एक मास की अवधि पूरी हो गई, और हड़ताल का प्रारंभ हो गया। झुंड-के-झुंड श्रमी लोग मिल के फाटक पर प्रस्तुत रहते, और जो लोग वहाँ काम करने को जाना चाहते, उन्हें अनुनय से रोकते थे। मिल के लोगों ने भी कार्यकर्ताओं को समझाने-बुझाने में ढील न की, तथा नवीन कार्यकर्ता लाने के भी प्रयत्न किए। जो लोग हड़ताली श्रमियों का कहना न मानकर काम चलाने पर ही तुले होते हैं, उन्हें लोग ब्लेकलेग्स (काले पैरोंवाले) कहते हैं। ऐसे लोगों को हड़ताली श्रमिक मार-पीटकर भी काम करने नहीं जाने देते थे। इन हुड़दंगों से तंग आकर मिल-मालिक पुलीस की सहायता लेने लगे। अब श्रमियों पर पुलीस की लाठियाँ चलने लगीं, और प्रचंड झमेले करनेवालों पर गोलियाँ भी चल जाती थीं। दस-बीस श्रमी सक्षत हो-होकर अस्पताल भेजे जाने लगे। अयोध्याप्रसाद, मथुरादत्त, माधवी बाई आदि उनकी सेवा-शुश्रूषा में संलग्न रहती थीं। यूनियनों से श्रमियों को धन की सहायता नियमानुसार मिलती थी।

माधवी बाई ने भी प्रायः पच्चीस सहस्र रुपए व्यय करके उनके कुटुंबों का पालन-पोषण किया। एक दिन मिल की सैकड़ों गट्ठे रुई जिस गोदाम में रक्खी थी, उसमें श्रमियों द्वारा आग लगाने का प्रबंध हुआ। उसके रक्षक बल-प्रयोग द्वारा स्ववश कर लिए गए। आग लगने में कसर न थी कि इतने ही में माधवी बाई और वसुधाभूषण के प्रयत्नों से मिल-मैनेजर कुछ अपने सिपाहियों तथा पुलीस के साथ वहाँ पहुँच गया, तथा रुई बच गई। मिल-मालिक वसुधाभूषण तथा माधवी बाई से बहुत प्रसन्न हुए।

(स) हड़ताल का अंत

इन दोनो का यह प्रयत्न ऐसे गुप्त भाव से हुआ कि श्रमियों का भी विश्वास इन पर से न हटा था। क्रमशः धनाभाव के कष्टों से श्रमी लोगों के कुटुंब बहुत विकल हो गए, और समझ पड़ने लगा कि अब यह झमेला दो-चार दिन भी उनका चलाया न चलेगा। उधर वसुधाभूषणजी अपनी सहपाठिका कन्या से बराबर मिलते रहते थे, और इन दोनो का साथ कॉलेज के निकट पढ़ने तथा उपाहार-गृहों में बराबर होता रहता था। इन दोनो का संयत प्रेम तो शनैः-शनैः बहुत बढ़ गया था; किंतु सहपाठिका ने अपना परिचय सदैव उनसे छिपाए रक्खा। वह कॉलेज में तो पढ़ती न थी, वरन् अपने ही घर पर कॉलेज का कोर्स पढ़ा करती थी, जिससे उसका व्यक्तित्व बाहरवालों से छिपा रहता था। जब श्रमियों की दशा बहुत गिरी हुई दिखलाई, तब एक दिन वसुधाभूषण ने अपनी सहपाठिका से यों बातें कीं—

वसुधाभूषण—"बाईजी! मैं एक निर्धन पुरुष हूँ; किंतु अब तक मैंने किसी का आभार कभी स्वीकार नहीं किया है। आप उपाहार-गृह-संबंधी तथा अपना-मेरा इतर व्यय भी स्वयं करने को सदैव सन्नद्ध दिखाती रहीं, यद्यपि मैं यह बात पसंद न करता था। फिर भी अब तक मैं यह नहीं जानता कि आपका आर्थिक विभव कैसा है? क्या इस प्रश्न का उत्तर आप दे सकती हैं? मैं आपको कष्ट नहीं देना चाहता, किंतु कारण-वश न चाहते हुए भी मुझे आपसे आज यह प्रश्न करना पड़ा है।"

सहपाठिका—"पंडितजी! आप निर्धन हों या सधन, यह तो मैं जानती नहीं, किंतु इतना ज्ञान है कि आप न्यूनाधिक व्यय कर सकते हैं, तथा किसी का आभार लेना बहुत अनुचित समझते हैं। हूँ तो मैं एक सधन कुटुंब की बालिका, किंतु निजी व्यय के लिये बहुत धन नहीं पाती। फिर भी कृपया कहिए कि आज आपके

सम्मुख क्या काठिन्य उपस्थित हुई है, जो आपको अपने उच्च सिद्धांत से न्यूनाधिक डिगने की आवश्यकता प्रतीत होती है ?"

वसुधाभूषण—"बाईजी, हूँ तो मैं एक निर्धन विद्यार्थी ; किंतु परमात्मा ने इतना अवकाश दे रक्खा है कि किसी से प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आप जानती होंगी कि मेरे ज्येष्ठ बंधु अयोध्याप्रसादजी अपना कार्य करने के अतिरिक्त कांग्रेस के कार्यों में भी बहुत कुछ संलग्न रहते हैं, तथा उन्हीं की देखा-देखी मुझे भी कभी कुछ कांग्रेसी काम कर देने का उत्साह हो जाता है। इन दिनों यहाँ के प्रसिद्ध मिल-मालिक कपूरचंदजी के श्रमीगण हड़ताल किए हुए हैं, और प्रायः २० दिनों से मिल बंद है। अब तक किसी भाँति उनका काम चलता रहा ; किंतु अब वह धनाभाव से दो-चार दिन भी नहीं चला सकते, और उनका पक्ष पराजित हो रहा है। यदि चार-छ दिन भी हड़ताल और चल जाय, तो कपूरचंदजी के तेवरों से मुझे समझौता की आशा है।"

सहपाठिका—"इसके लिये कितने धन की आवश्यकता है ?"

वसुधाभूषण—"यदि दस सहस्र रुपए किसी प्रकार मिल जाते, तो उनकी हार बच जाती।"

सहपाठिका—"इतना धन तो पंडितजी ! मेरे पास है नहीं ; किंतु अपने दो अलंकार बेचकर धन एकत्र कर सकती हूँ।"

वसुधाभूषण—"इतना कष्ट मैं आपको नहीं देना चाहता, भगिनीजी !"

सहपाठिका—"इसमें कोई हानि नहीं है। यदि मेरे दो अलंकारों से दो सहस्र लोगों की जीविका सुधरती है, तो मैं अपना कष्ट सह्य मानूँगी।"

वसुधाभूषण—"मैं तो ऐसी मंत्रणा आपको दे नहीं सकता, किंत दो सहस्र लोगों के हित-साधन में यदि आप मेरी प्रेरणा के विना तत्पर हों, तो मैं रोकूँगा भी नहीं।"

सहपाठिका—"तब यही स्थिर रहा। मैं आज ही संध्या को इतना धन आपको यहीं दे दूँगी। आशा है, इससे वे सात-आठ दिन हड़ताल और चला सकेंगे।"

वसुधाभूषण—"आप सहपाठिका-मात्र नहीं, वरन् साक्षात् देवी हैं। मैंने कभी किसी का भार नहीं। लिया ; किंतु आज पहलेपहल मेरा भी मुह काला हुआ जाता है। बहुत लज्जित हो रहा हूँ।"

सहपाठिका—"ऐसा आप क्यों कहते हैं ? आप अपने लिये तो कुछ चाहते

नहीं, वरन् परोपकारार्थ धन माँगते हैं। इसमें आपका सिद्धांत नत नहीं होता।"

वसुधाभूषण—"बड़ी ही कृपा देवीजी !"

समय पर धन पाकर वसुधाभूषणजी ने यूनियन के कोष में दे दिया, और श्रमियों का काम फिर से चलने लगा। उधर कपूरचंदजी एक तो भारतभूषण तथा माधवी बाई से यों भी संतुष्ट रहते थे, फिर अपनी रुई जलने से बचने में और भी हर्षित हुए। जब यह ज्ञात हुआ कि माधवी बाई ने अपने पचीस सहस्र व्यय करके श्रमियों का पालन किया था, तब वह उनसे बहुत ही प्रसन्न हो गए। एक बार एकांत में बाईजी जब उनसे श्रमियों के लिये प्रार्थना करने गईं, तब यों वार्तालाप होने लगा—

कपूरचंद—"बाईजी ! आपके उदार मानस तथा रूप-माधुर्य दोनो से मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ। मेरी धर्मपत्नी का देहांत पर साल हो ही चुका है, केवल एक कन्या प्रायः १६ वर्ष की है, और उससे भी छोटा एक पुत्र। क्या आप मेरे साथ विवाह करने की कृपा कर सकती हैं ? अभी मेरी भी अवस्था ३२वें वर्ष में है।"

माधवी—"सेठजी ! कहाँ तो हड़ताल के विषय में बातें होती थीं, कहाँ आप ने यह अद्भुत प्रश्न उठा दिया। मैं तो सिद्धांतरूपेण विवाह के प्रतिकूल हूँ। मेरी स्वच्छंद प्रकृति भी शायद आपको सह्य न हो सके।"

कपूरचंद—"विवाह तो अभी आपका हुआ नहीं है, अवस्था भी प्रायः २० या २१ वर्षों की दिखती है। सारा संसार विवाह करता ही है। इसके प्रतिकूल कौन-सा सिद्धांत बाधक है ?"

माधवी—"मैं स्त्री-स्वच्छंदता के पक्ष में बहुत कुछ हूँ, जिसका न्यूनाधिक पतन विवाह-बंधन से निश्चित-सा है।"

कपूरचंद—"आप सदैव मुझसे प्रतिकूलता करती रहीं, केवल एक बात में अनुकूल हुईं। यदि मेरी उतनी सेवा न करतीं, तो भी आपके प्रति मेरा मान न्यून न होता। मैं विवाहोपरांत भी आपको पूर्ण स्वच्छंदता देने को प्रस्तुत हूँ। केवल दुश्चरित्रता असह्य होगी, जो आपके उच्च सिद्धांतों को देखते हुए असंभव समझ पड़ती है।"

माधवी—"अच्छा, अब स्वच्छंदता के प्रश्न पर आती हूँ। मैंने अब तक विवाह अवश्य नहीं किया है, किंतु पांडेय मथुरादत्तजी से मेरा संसर्ग कुछ दिनों से चल रहा है। इसका क्या उत्तर दीजिएगा ?"

कपूरचंद—"और किसी से तो कभी संसर्ग नहीं हुआ ?"

माधवी—"नहीं। उनसे भी प्रायः दो ही मास से है।"

कपूरचंद—"क्या वह स्थायी रहेगा या छूट भी सकता है ?"

माधवी—"उसका स्थायित्व आवश्यक नहीं। मैं हूँ सेठानी और आप पंजाबी। हम दोनो का वैवाहिक संबंध केवल आर्य-समाज के नियमों पर ही संभव हो सकता है।"

कपूरचंद—"यही बात है, देवीजी ! मैं गुप्तरूपेण हड़ताल का निर्णय आप ही पर छोड़ता हूँ। जो चाहें कर दीजिए। यह विचार लीजिए कि हानि सहकर मिल का भी चलना असंभव होगा। अभी विवाह होने से आपका प्रभाव श्रमियों पर से उठ जायगा, पहले निर्णय कर ही दीजिए, पीछे समय पर विवाह भी हो जायगा। पांडेयजी का संसर्ग अभी से छोड़ दीजिए।

माधवी—"यही बात होगी। क्या आप मेरी इस दो मास की उद्दंडता क्षम्य मानते हैं ?"

कपूरचंद—"बड़ी कृपा हुई। मैं आपके सद्गुणों पर ऐसा मुग्ध हूँ कि दो मास की भूल भुला सकता हूँ।"

अनंतर माधवी बाई और वसुधाभूषण के प्रयत्नों से कपूरचंदजी की स्वीकृति के साथ श्रमियों का प्रश्न सुलझ गया तथा हड़ताल भी समाप्त हो गई। धीरे-धीरे वसुधाभूषण का प्रेम अपनी सहपाठिका से बहुत बढ़ गया, और उसने प्रकट कर दिया कि वह और कोई नहीं, वरन् सेठ कपूरचंद की ही पुत्री थी। यह सुनकर आप केवल आश्चर्यान्वित ही नहीं हुए, वरन् पुत्री द्वारा पिता के प्रतिकूल श्रमियों की गुप्त सहायता से उसके परमोच्च आचरण पर भी बहुत रीझ गए। अब इनका प्रेम दांपत्य रूप में आ गया। दोनो एक दूसरे को अत्यधिक चाहने लगे।

अनंतर माधवी बाई का विवाह सेठजी से हुआ, तथा इनकी और भारतभूषण की सम्मति से सेठजी की पुत्री का भी विवाह वसुधाभूषण से हो गया, और इन्हें पाँच लाख का दायज मिला।

चतुर्थ परिच्छेद

आतंकवाद (Terrorism)

माधवी बाई की विरक्ति से अत्यधिक हतोत्साह होकर मथुरादत्तजी आतंकवाद की ओर झुक पड़े, और उन लोगों की संगति में क्रमशः साहसी (डकैत) भी हो गए। पहले तो एकआध बार इनकी इच्छा सेठ कपूरचंद और माधवी बाई पर भी वार करने की हुई, किंतु अयोध्याप्रसादजी तथा भारतभूषणजी ने समझाया कि इन दोनो का आचरण अनुचित नहीं है। उन्होंने यह भी बता दिया कि एक बार वह मनोरमा से भी घोर पाप कर चुके हैं, इस बात को वह अब गुप्तरूपेण उनके समक्ष स्वीकार कर रहे हैं। उनका कहना था कि एक तो मनोरमावाली कथा बिना बतलाए इन्हें माधवी बाई से प्रेम जोड़ना न था, क्योंकि ऐसा जानकर वह इनसे प्रेम कभी न जोड़ती। फिर जब एक बार अवैध प्रेम में पड़ने से उसने अपकीर्ति से बचाव दुर्लभ देखकर अपना सिद्धांत छोड़, बिना धोखा दिए, सेठजी से विवाह करना ही उचित समझा, तब इनसे संपर्क असंभव हो ही गया। ऐसी दशा में इन्हें उससे या सेठजी से रुष्ट होने का कोई अवसर न था। उन दोनो का मत हुआ कि सेठजी ने ही आचरण की उच्चता पर इतना ध्यान दिया कि उसका एक घोर पतन भी क्षम्य मान लिया। माधवी बाई के सिद्धांतों के अनुसार यह कोई पतन भी न था, उसने तो केवल लोक-निंदा के भय से विवश होकर विवाह किया। ऐसा उसने एक बार भारतभूषणजी से कहा भी था। इन बातों से मथुरादत्तजी भी दोनो पर संतुष्ट हो गए; किंतु तो भी अपने प्रचंड हतोत्साह को न सँभाल सकने से उन दोनो मित्रों की सम्मति के प्रतिकूल आतंकवादी और साहसी हो ही गए। इधर भारतभूषणजी तथा अयोध्याप्रसादजी की पदोन्नति समय के साथ बराबर होती गई, और संसार में इनकी भारी कीर्ति फैल गई।

उधर मथुरादत्तजी इन दोनो के मार्ग से पराङ्मुख होकर यथापूर्व तीसरे मार्ग में चले गए। अब कानपुर और लखनऊ से व्यवहार छोड़कर आप कलकत्ते में जा बसे; क्योंकि वहीं इनके नवीन मित्रों का मुख्य अड्डा था। अच्छी, चौड़ी सड़कों

को छोड़कर इन लोगों ने सँकरी, तंग गली के एक शून्य सदन को अपना स्थान बना रक्खा था। पुलीस इन लोगों का पीछा किया ही करती थी, और उससे बचने को इन लोगों को समय-समय पर विविध रूप रखना तथा भाँति-भाँति के व्यापारों में अपने को संलग्न बतलाना पड़ता था। ये लोग ब्रिटिशों के मुख्यतः शत्रु थे, तथा उनके हितैषी भारतीयों पर भी प्रहार करने में कसर न रखते थे। जो धनी भारतीय ब्रिटिशों की विशेष चापलूसी करते या उनकी सहायता में तत्पर रहते, उन्हें लूटकर अपने कार्यों के लिये धन एकत्र करना इनका प्रमुख व्यवसाय था। इन कामों तथा विविध रूप धरने अथच दूर-दूर रेल आदि पर जाने में इन लोगों का व्यय प्राचुर्य से होता ही था, अतएव लूटपाट द्वारा धनोपार्जन इन्हें आधिक्य से करना पड़ता था। इनके सभ्य कभी तो महा दीन बनकर भिक्षुकों की भाँति चलते थे, और कभी मोटरों, प्रथम श्रेणी की रेलगाड़ियों आदि पर। इनके गोइंदे स्थान-स्थान पर लगे रहते थे, जिनके द्वारा मेंबरों को छिपाकर तमंचे आदि मिलते तथा अन्य सहायताएँ प्राप्त होती थीं। मार-पीट और धन-संचाय के अतिरिक्त इनका मुख्य कार्य प्रायः अस्त्र-संग्रह था। एक-एक बढ़िया तमंचा, समुचित संख्या में कारतूस आदि प्राप्त करने में ये लोग सैकड़ों रुपए व्यय कर डालते थे। एक दिन विचार-विनिमयार्थ ग्यारह बजे रात को अड्डे पर इनके सभ्यों की सभा एकत्र होने को थी। उसी सूने मकान के दुतल्ले पर एक कक्ष में कड़ए तेल का एक दीपक पीतल की दीवट पर जल रहा था। एक-एक, दो-दो करके आंतकवादी एकत्र होने लगे। धीरे-धीरे प्रायः सब लोग समय पर एकत्र हो गए, केवल प्रधान सभ्य नहीं आया। वहाँ मिठाई-नमकीन आदि भोज्य पदार्थों के साथ चाय भी चल रही थी। मुख्य सभ्य के न आने से सबको चिंता हुई, और अच्छे-अच्छे तमंचे लेकर दो चतुर चर उसे खोजने निकले। जिस ओर से साथी को आना था, उसी ओर लुकते-छिपते दोनो चर चल पड़े। प्रायः आधा मील जाने पर उन्होंने देखा कि उनका नेता दो पुलीस कानिस्टेबिलों के हाथ में गिरफ़्तार है। दोनो पुलीसवाले उसे रस्सी में बाँधे मारते हुए लिए जा रहे हैं, और वह मुख से कोई शब्द भी न निकालता। रात का विकट सन्नाटा था, और राह में कोई पथिक आता-जाता न दिखता था। दोनो चरों में से एक ने बढ़कर पुलीसवालों को डाँटा कि वे निर्दोष बंदी को क्यों मार रहे हैं? बंदी अपने साथियों को पहचानकर रस्सी खींचता हुआ पुलीसवालों से चार-छ डग दूर हो गया, और साथियों के रिवाल्वर दगे, जिनसे दोनो पुलीसवाले धड़ाम-धड़ाम वहीं गिर

पड़े। उसी स्थान के निकट सड़क पर एक मैनहोल था, जिसे खोलकर इन लोगों ने पुलीसवालों के शव नीचे, नाले में ढकेलकर ऊपर से लोहे का ढक्कन बंद कर दिया। फिर निकट के एक पानी के बंबे से जल निकालकर जहाँ-जहाँ उनके रुधिर के धब्बे थे, वे स्थान भली भाँति धो डाले। अनंतर साथी से गले मिलकर तीनो लोग प्रायः आधी रात के समय अपने अड्डे पर जा पहुँचे। साथियों ने दोनो चरों को धन्यवाद दिए, तथा नेता के मुक्त होने पर उसे बधाई दी। उसने सब हाल बताया कि एक नर-वध के संबंध में अभियुक्त से सूरत मिलने के कारण पुलीसवालों ने उसे पकड़ा था। अनंतर नेता और चरों ने भी चाय पीकर सब लोगों के साथ सभा की बैठक का कार्य प्रारंभ किया। इन लोगों ने बड़े-बड़े जौहरियों, महाजनों आदि के लूटने के विचार स्थिर किए, तथा कई और कार्यों पर भी बातें हुईं। अनंतर सभा भंग हुई, और कुछ लोग तो वहीं लेट रहे, और कुछ अपने-अपने स्थानों को चले गए। पुलीस के सफल होने पर सब लोग साथ-ही-साथ बंदी न हो जायँ, इस विचार से बहुत लोग एक ही स्थान में एक साथ न रहते थे।

एक बार भारतभूषणजी कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन देखने कलकत्ते पधारे। वहाँ हीरा-जवाहर बेचनेवाले एक बड़े व्यापारी धर्मदासजी इनके पास उपस्थित होकर बातें करने लगे—"पंडितजी! आजकल कलकत्ते में आतंकवादियों का बड़ा बल है। बहुतेरे भले आदमियों को लूटे बैठे हैं।"

भारतभूषण—"यह तो बड़े ग़ज़ब की बात है। इतने बड़े शहर में क्या समुचित प्रबंध नहीं हो पाता?"

धर्मदास—"होता क्यों नहीं। बहुतेरे आतंकवादियों को पकड़-पकड़कर मृत्यु-दंड तक दिए जा चुके हैं; तथापि उनकी संख्या नहीं घटती। नवीन कार्यकर्ता उन्हें मिल ही जाते हैं।"

भारतभूषण—"आजकल उपद्रव बढ़ा अवश्य है; क्या आपको तो कोई कष्ट नहीं हुआ?"

धर्मदास—"यही तो बात है। दो दिन हुए, मुझे भी एक धमकी का पत्र मिल चुका है कि दस सहस्र रुपए उनकी भेंट करूँ, नहीं तो मेरा कल्याण नहीं होगा।"

भारतभूषण—"यह बात है, सेठजी! धन किस प्रकार से माँगा जाता है?"

धर्मदास—"कहते हैं, वह अमुक समय, अमुक स्थान पर पहुँचा दिया जाय।"

भारतभूषण—(पत्र ध्यान-पूर्वक पढ़कर) "मेरे एक मित्र विजयकुमार चटर्जी यहाँ के आंतक-विभाग संबंधी गुप्त इंस्पेक्टर हैं। मैं उनकी सहायता से न केवल आपका धन बचा दूँगा, वरन् उन दुष्टों में से कुछ को पकड़वा भी लूँगा।"

धर्मदास—"बड़ी ही कृपा हुई, शुक्लजी महोदय !"

अनंतर चटर्जी की सहायता से शुक्लजी ने उचित प्रबंध कराया। धन नियत स्थान पर पहुँचाया गया, किंतु जो लोग छिपकर उसे लेने गए थे, उनमें चार पकड़े जाकर दीर्घ काल के लिये दंडित हुए। इन्हीं दिनों मथुरादत्तजी एक दिन दूसरे दर्जे की गाड़ी पर कलकत्ते की ओर आ रहे थे। नियत यह था कि इनका एक सहायक बीच के एक स्टेशन पर इन्हें दो लौकियों के अंदर छिपे हुए दो श्रेष्ठ रिवाल्वर आतंकवादियों के निमित्त देगा। अकस्मात् भारतभूषणजी भी उसी दर्जे में बैठकर कलकत्ते जा रहे थे। इन्होंने मथुरादत्त को पहचानकर उनसे बहुत-सी बातें भी कीं। मार्ग में इन्होंने देखा कि मथुरादत्त स्टेशनों पर बिकनेवाली लौकियाँ मोल ले रहे हैं। इस पर इन्हें संदेह हुआ। फिर आगे के एक स्टेशन पर एक बेचनेवाले ने दाम चुकाकर इन्हें दो लौकियाँ दीं, जिन्हें देखते ही मथुरादत्त के चेहरे पर अपूर्व ज्योति-सी चमक गई। भारतभूषणजी ताड़ गए कि हो-न-हो, इन लौकियों में कुछ भेद है। अतएव एक स्टेशन पर युक्ति से उतरकर आपने चटर्जी महोदय को गुप्त रूप से तार दे दिया, जिससे वह मामले को समझ गए। जब रेल हावड़ा-स्टेशन पर पहुँची, और मथुरादत्तजी एक झौवे में रखवाकर कुली द्वारा पंद्रह-बीस लौकियाँ ले चले, तब चटर्जी ने चट अपने आदमियों द्वारा इन्हें पकड़वा लिया, तथा थाने में ले जाकर उन लौकियों को तुड़वाया, तो उनमें दो रिवाल्वर निकल पड़े। पुलीस के पत्रों की जाँच की गई, तो पांडेयजी का चित्र कई डकैतियों के संबंध में मिला। फलतः न्यायालय में वह अपराधी प्रमाणित हो गए, जिससे उन्हें दस वर्षों के लिये सपरिश्रम कारागार का दंड मिला। इस गिरफ़्तारी के संबंध में उनका संदेह भारतभूषण पर नहीं गया।

एक साधारण धनी की सुंदरी बहू वहीं रहती थी। वह तो युवा थी, किंतु उसका पति छोटा था, अथच बहू की सास सौतेली थी, जो उसे भाँति-भाँति के कष्ट दिया करती थी। ससुर अपनी स्त्री की बात सुनता था न कि बहू की।

विवश होकर उसने अपने पति से हाल बतलाया, तो उसने कहा—"क्या तुम्हारे लिये मैं मा-बाप से झगड़ा मोल लूँ ?"

बहू—"नाथ, मुझे क्या आप यहाँ कहारी का काम करने को लाए थे ? कुछ तो दया कीजिए। देख लीजिए कि अपराध किसका है ?"

पति—"यह तो मैं नित्य देखता हूँ कि तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, और सौतेली माताजी तुमसे न केवल कठोर काम लेती हैं, वरन् निष्कारण कष्ट भी देती हैं। मैं भी उनकी कठोरता से बच नहीं पाता।"

बहू—"फिर इन कठिनाइयों का क्या कोई उपचार नहीं है ?"

पति—"तुम स्वयं समझ देखो। लाज के कारण तुम्हारे संबंध में न मैं पिताजी से कुछ कह सकता हूँ, न माताजी से। अभी कुछ कमाने की मुझमें शक्ति नहीं है, क्योंकि मैं विद्यार्थी-मात्र हूँ। चार-छ वर्षों तक अभी कोई युक्ति मुझे नहीं सूझती।"

बहू—"यह तो नाथ ! 'औषध दूरि हिमाद्रि पै, सिर पै सर्प कठोर' की बात दिखती है।"

पति—"है तो कुछ ऐसा ही, फिर मैं करूँ क्या ?"

बहू—"तब फिर मुझे अब माता के यहाँ जाने की आज्ञा दे दीजिए। यहाँ मैं रह नहीं सकती। सहनशीलता की भी एक सीमा होती है।"

पति—"मैं तो इस विषय में माता या पिता से कुछ कह नहीं सकता, और मेरा कहना वे मानेंगे भी नहीं। तुम्हीं किसी प्रकार से कहलाओ।"

इस पर बेचारी बहू ने एक पड़ोसिन द्वारा ससुरजी से अपने नैहर जाने की प्रार्थना कराई; किंतु उन्होंने न केवल आज्ञा न दी, वरन् क्रोध भी बहुत किया। जब बहू को किसी प्रकार अपने कष्टों के शमन का कोई उचित मार्ग न दिखा, तो वह बहुत निराश हो गई। एक दिन वह पड़ोस के पोखर पर बैठी रो रही थी कि अकस्मात् आतंकवादियों का नेता वहीं होकर निकला। वह बहू के रूप-लावण्य से बहुत ही प्रसन्न हुआ, और इसे रोती देख निकट आकर सांत्वना-पूर्वक बोला—"देवीजी ! आपको क्या कष्ट है ? क्या मैं किसी प्रकार आपकी सहायता कर सकता हूँ ?"

बहू—"महाशय ! मैं कठोर नरक में पड़ी हुई हूँ, जिससे कोई उबार नहीं दिखता। मेरा पति बेचारा बालक विद्यार्थी है, जो सौतेली मा तथा पिता से मेरे

विषय में कुछ कह नहीं सकता। मुझ पर दया करना चाहता अवश्य है; किंतु धनाभाव और अधिकाराभाव से विवश है। उधर उसकी सौतेली माता सारे दिन मुझे खिझाना ही अपना एकमात्र गार्हस्थ्य-कर्तव्य समझती है। इसी दुःख से मैं कातर हूँ। क्या कहूँ ?"

नेता—"क्या मेरी सहायता आप स्वीकार कर सकती हैं ?"

बहू—"सहायता तो इस समय मैं शैतान तक की स्वीकार करूँगी; किंतु उसका कोई मार्ग नहीं दिखाता।"

नेता—"मार्ग तो प्रत्यक्ष है। आप यह नरक-कुंड छोड़कर मेरे साथ चली चलिए।"

बहू—"ऐसा क्योंकर हो ? महाशय ! धर्म छूटता है। आप हैं कौन ? देखने में तो परम रूपवान्, तेजस्वी, सज्जन समझ पड़ते हैं; किंतु धर्म का प्रश्न है ?"

नेता—"देवीजी ! आप दुःखित और पराधीन व्यक्ति अथच घोर अन्याय से पीड़ित भी हैं। मैं आपको धोखा नहीं दे सकता। हूँ तो मैं कलकत्ते के साहसियों तथा अतंकवादियों का नेता, किंतु वास्तविक सज्जनता में किसी भले आदमी से भी जाँचने में न्यून न निकलूँगा। आपको एँड़ी से चोटी तक बहुमूल्य जड़ाऊ अलंकारों से लाद दूँगा। अच्छे-से-अच्छे वस्त्राभूषण धारण कीजिए, तथा चार को खिलाकर अच्छे से अच्छा भोजन कीजिए। एक-दो सेवक भी दे सकता हूँ, अधिक नहीं; क्योंकि मुझे छिपकर रहना पड़ता है।"

बहू—"बातें तो आपकी अच्छी हैं, किंतु ऐसी खल-मंडली में मुझे सुख से किस प्रकार रख सकिएगा ?"

नेता—"उस मंडली में आपको न रहना होगा। मैं स्वयं उनमें नहीं रहता। अपने सहायकों के अड्डे के निकट मेरा एक गुप्त निवास-स्थान है, जिसे वे लोग जानते अवश्य हैं। उसके अतिरिक्त एक अन्य भवन भी है, जिसे वे नहीं जानते, न पुलीस जानती है। उसी में आप विराजेंगी।"

बहू—"जब आप साहस तथा आतंकवादियों के काम करेंगे, तब आपकी स्वतंत्रता पुलीस के आक्रमणों से कितने दिन रक्षित रहेगी, तथा ऐसी कमाई का पैसा खाना मुझे कहाँ तक योग्य होगा ?"

नेता—"मैं आपके कारण अपने सारे अधर्म-पूर्ण कार्य छोड़ दूँगा। जो संपदा मैं आपको दूँगा, वह पापों द्वारा अर्जित न होकर मेरी निजू संपत्ति है। साल-दो साल गुप्त रूप से रहकर जब पाप-कर्मों से निवृत्त रहूँगा, तब धीरे-धीरे पुलीसवाले भी मेरा शोध लेना छोड़ देंगे।"

बहू—"बातें तो आपकी उचित दिखाती हैं, यदि सत्य हों।"

नेता—"इसमें संदेह न कीजिए, देवीजी ! आपके कष्टों से मेरा चित्त ऐसा विचलित हो गया है कि आपको प्रसन्न करने के लिये मैं अपनी जीवनचर्या तक बदलने को प्रस्तुत हूँ। पाप-वृत्ति तो छोड़ ही दूँगा। मेरा भवन पहले से ही संपन्न था। केवल वीरता के आवेश में इस जत्थे में मिल गया था। दो-चार वर्षों से काम करते-करते अब मेरा चित्त इससे ऊब भी गया है।"

बहू—"विश्वास तो मैं आपका पूरा करती हूँ, तो भी सत्य की शपथ खाकर कहिए कि आपका जीवन भविष्य में धर्म-पूर्ण होगा।"

नेता—"मैं सत्य ही की शपथ खाकर आपको आश्वस्त करता हूँ।"

बहू—"एक बात फिर भी रह जाती है कि अपने पति से उऋण कैसे होऊँगी ? इसकी क्या युक्ति सोचूँ ? आप भी विवाहित हैं, या नहीं ? यदि हाँ, तो मुझ से व्यवहार न बढ़ाइए।"

नेता—"यदि आपके कोई छोटी बहन हो, तो विवाह का व्यय उठाकर समय पर आपके पति से उसका परिणय करा दूँगा। यदि कोई बहन आपके न हो, तो कोई और योग्य तरुणी खोजूँगा। जब वह पढ़-लिखकर समर्थ होकर अपनी राक्षसी विमाता से स्वतंत्र सुख-पूर्वक रहने के योग्य होगा, तभी ऐसा करूँगा। मेरे विवाह के विषय में जो आपने पूछा, सो मैं अद्यावधि अविवाहित हूँ। इसमें कोई संदेह नहीं है।"

बहू—"धन्य-धन्य महात्माजी ! भला, आपका शुभ नाम क्या है, तथा मेरा-आपका संबंध शास्त्रीय्या क्या संभव है ? मैं बनर्जी घर की बेटी और चटर्जी-घराने की बहू हूँ।"

नेता—"देवीजी ! मेरा भी नाम नलिनीरंजन चटर्जी है। संभवतः अब तक आप एक विवाहित कन्या-मात्र हैं।"

बहू—"यही बात है, चाटर्जी महोदय ! मैंने अभी पति को नहीं जाना है।"

नेता—"तब फिर कल संध्या को मुझे प्रायः आठ बजे यहीं मिलने की कृपा कीजिए। शेष प्रबंध मैं कर लूँगा। आपका मान विवाहित प्रिया से कम न करूँगा।"

बहू—"जैसी आज्ञा। निर्बंध चूकने न पावे।"

नेता—"चूक का पाठ मैंने यावज्जीवन पढ़ा ही नहीं, देवीजी ! अच्छा, नमस्कार। निश्चय से टलिएगा नहीं।"

बहू—"प्रणाम चटर्जी महोदय !"

इस प्रकार बात करके ये दोनो गुप्तरीत्या अपने-अपने मार्ग पर लगे, घर में आकर बहूजी ने समय पाकर अपने पति से कहा—"प्राणनाथ ! मेरा जैसा निरादर इस भवन में होता आया है, उससे मैं तंग आ गई हूँ। मैं इतनी प्रार्थना आपसे करती हूँ कि जो अलंकार विवाह के समय अथवा उससे पीछे मुझे आपके यहाँ से मिले हैं, उन्हें मैं आप ही को सौंपे देती हूँ। अब मैं उतना आदर भी इस निर्दयी कुटुंब का नहीं स्वीकार कर सकती। इस क्रोध-भाव के कारण आपसे भी क्षमा माँगे लेती हूँ। आपने कभी मेरा निरादर नहीं किया, न प्रेमाभाव ही दिखाया; किंतु पति का मुख्य धर्म जो पत्नी की रक्षा करना है, उसे आप निभाने में कारण-वश असमर्थ हैं।"

पति—"क्या बातें करती हो, प्राणेश्वरी ! आज तुम्हें हो क्या गया है ?"

बहू—"मैं क्रोधाधिक्य की शत बार क्षमा आपसे माँगती हूँ, किंतु अब क्रोध सँभालने में असमर्थ हूँ। अपने आभूषण ले लेने की कृपा-भर कर दीजिए।"

पति—"मैं ऐसा नहीं कर सकता। अपने चित्त को सँभालो। दो-चार वर्षों की बात है, फिर जैसा चाहोगी, वैसा करूँगा।"

बहू—"जब आप अपने अलंकार लेने से इंकार ही करते हैं, तब उन्हें अपने पास न रखकर आपके बॉक्स में रख दूँगी। मैं अब इस कुटुंब का अन्न ग्रहण न करूँगी।"

पति—"फिर जीवन चलेगा कैसे ?"

बहू—"जैसे ईश्वर चलाएगा, वैसे चलेगा। अपने आभूषणादि बेचकर कुछ दिन काम चल ही जायगा। आगे जो होगा, देखा जायगा।"

बाल-वय के कारण पति महाशय इन कथनों का पूर्ण अर्थ न समझ पाए, और उन्होंने सोचा कि दो-चार दिनों में बहू का क्रोध शांत हो जायगा। इधर बहू अपने मायके के आभूषण तथा साधारण वस्त्र धारण करके उचित समय पर पोखर गईं, जहाँ नेता महोदय पहले ही से उपस्थित थे। एक मोटर पर दोनो चुपके से बैठ गए, तथा उनके गुप्त सदन में जा पहुँचे। सदन की सामग्री देखकर बहूजी प्रसन्न हुईं, किंतु पाप-मार्ग के भय से अब इनका चित्त डाँवाडोल होने लगा।

पहले क्रोधावेश में आकर इन्होंने ऐसा साहस-पूर्ण कार्य कर तो डाला, किंतु पीछे से विकल होकर नेता के पैरों पड़कर बोलीं—"नाथ! मैं क्रोधावेश-वश आपकी सेवा में भाग तो आई, किंतु यहाँ का यह अवैध संस्कार पुण्य-पथ की ओर कैसे समझा जा सकता है?"

नेता—"जिस प्रकार आपका चित्त संतुष्ट हो सके, वही पूर्णतया संपादित करने को मैं सहर्ष प्रस्तुत हूँ। किसी प्रकार से मनोमालिन्य दूर करने का प्रयत्न कीजिए, यदि बहुत विकलता हो, तो अभी कुछ नहीं हुआ है, मैं जहाँ कहिए, मायके या ससुराल में, वहीं आपको अभी पहुँचा दूँ।"

बहू—(नेता के चरणों पर सिर रखकर और उठकर) "आप मनुष्य नहीं, देवता हैं। मैं ये चरण आजन्म नहीं छोड़ सकती, किंतु पाप से निवृत्ति अवश्य चाहती हूँ। किसी बुद्धिमान् नेता अथवा महात्मा की सम्मति इस विषय में लेनी चाहिए, जिसमें मुझसे ये चरण न छूटें, और पाप भी न लगे।"

नेता—"तुम्हारा आचरण परम पुनीत है। मैं सौंदर्य से प्रसन्न होकर तुम्हें यहाँ लाया हूँ, किंतु देखता हूँ कि तुम्हारा मुख्य गुण सौंदर्य न होकर चरित्र-बल की महत्ता है। अच्छा, मैं भारतभूषण-नामक एक बढ़िया वकील तथा उच्च कोटि के सज्जन को जानता हूँ। अब उन्हीं की शरण में जाता हूँ। संभव है, उनके द्वारा आपका प्रश्न सुलझ सके।"

बहू—"यही कीजिए प्राणनाथ! मैं स्वार्थ और परमार्थ दोनो को नहीं छोड़ना चाहती। ये प्रतिकूल अभिलाषाएँ कैसे पूरी होंगी, यही शंका है।"

नेता—"चित्त को शांत रक्खो। जिस परमात्मा ने कृपा करके तुम्हें नरक-कुंड से निकलने की सुमति एवं अवसर दिया, वही धार्मिक संकट से भी छुटकारा कर देगा, ऐसी मुझे आशा है। जब धर्म-पालन पर आपका चित्त ऐसा दृढ़ है, तब परमात्मा कोई मार्ग भी निकालेगा। अब मैं अकेला उनकी सेवा में जाता हूँ। यदि आपसे भी वह बात करना चाहेंगे, तो यहीं उन्हें लेता आऊँगा।"

अनंतर चटर्जी महाशय भारतभूषणजी शुक्ल की सेवा में उपस्थित होकर एकांत में सलाह करने लगे। उन्होंने अपना तथा बहूजी का पूरा विवरण साद्यंत उन्हें सुनाकर पूछा कि अब कौन-सा मार्ग संभव है?"

भारतभूषण—"मेरी समझ में प्रश्न कोई कठिन नहीं है। हिंदुओं में विवाह-बंधन छूटने का नियम तो है नहीं, किंतु युक्तियाँ नियमानुसार निकल सकती हैं। पहले बहूजी के पति को बुलवाकर मैं उनसे बात करना चाहता हूँ। फिर यथासमय

इंस्पेक्टर विजयकुमारजी चटर्जी की सहायता से आपको स्वतंत्र बनाने का भी प्रयत्न करूँगा। क्या आप आतंकवादी तथा साहसी समाज छोड़ने में दृढ़ हैं? इसमें तो कोई संदेह नहीं है ?"

नेता—"कोई नहीं, दीनबंधो! मैं इस समाज का नेता अवश्य रहा हूँ, तथा सारे कामों में मेरा मंत्र भी रहता था, किंतु अपने हाथ से किसी भारी पाप से ईश्वर ने अब तक मुझे बचाया है।"

भारतभूषण—"बहुत अच्छी बात है, नेताजी! तब मैं कार्यारंभ करता हूँ। है न इच्छा ?"

नेता—"अवश्य महोदय! कोई संदेह न कीजिएगा।"

नेताजी की सहायता से शुक्लजी ने बहूजी के पति अनुपम चटर्जी को बुलवाया। बहू के निकल जाने से उस कुटुंब में हाहाकार मचा था, और सब लोग सिर धुनकर रो रहे थे। बालक ने बहुत अप्रसन्न होकर पिताजी से कहा—"पिताजी! मैंने कभी आपसे कोई बिनती नहीं की, किंतु आज आज्ञा लेकर दो-चार बातें निवेदन करना चाहता हूँ।"

पिताजी—"हाँ, कहो बेटा! क्या कहते हो ?"

बालक—"आपके घर में उस बेचारी को नरक से बढ़कर कष्ट था। आपने न कभी उससे उसके कष्ट की बात पूछी, न मुझसे ही। कहते ही हैं कि 'मा हुई दूसरी, तो बाप हुआ तीसरा', यही दुर्घटना इस कुटुंब के सारे कष्टों की मूल है। वह अब जा चुकी, और मिलेगी भी, तो पलटने की नहीं। जितने अलंकार आपके घर से उसे कभी मिले थे, वे सब मेरे बॉक्स में रख गई है। मुझे देती थी, किंतु जब मैंने नहीं लिए, तो बॉक्स में रख गई। कपड़े सब आप ही के यहाँ रक्खे हैं। मुझसे कहती रही कि पत्नी की रक्षा का भार पति पर है। जब मैं अपनी असमर्थता के कारण कुछ कर न सका, और आपने उसे मायके भी न जाने दिया, तब विवश होकर वह कहीं निकल गई।"

पिताजी—"बेटा, इतनी बातें जब हो गई थीं, तब तूने मुझसे कुछ क्यों न बतलाया ? अब तू ऐसा छोटा नहीं है कि इतना भी न समझता।"

बालक—"अभी कल की तो बात है। क्या मैं समझता था कि ऐसा कर ही बैठेगी ? वह प्रचंड क्रोधावेश में थी। नित्य का अनावश्यक अपमान कहाँ तक सहती ? अपना सारा सामान सँभाल लीजिए, पिताजी! अब मैं भी चाहे

भीख माँगकर जिऊँ, किंतु इस घर में अन्न ग्रहण न करूँगा। माताजी के निष्कारण नित्य के टंटे कौन सहेगा ?"

पिताजी—"इस घर का स्वामी आखिर है कौन ?"

बालक—"स्वामी तो मैं कोई देखता नहीं, स्वामिनी माताजी हैं। क्या कभी आपने पूछा कि बहू की क्या दशा है, अथवा मुझे ही क्या दुःख-सुख है ?"

पिताजी—"बेटा, मेरी भूलों को भूल जा। मैंने चाहे पूछा या नहीं, किंतु कभी तेरा निरादर तो नहीं किया ?"

बालक—"निरादर और होता कैसा है ? विमाता गृह-स्वामिनी है ही, मुझे तृण-तुल्य भी नहीं समझती। आप कर ही क्या सकते हैं ? मेरे यहाँ रहने से यदि न्याय करने के प्रयत्न कीजिएगा, तो स्त्री-पुरुष में नित्य बखेड़े उठेंगे। अब मुझे भी बिदा कीजिए। मैं उस निर्दय पिशाचिनी के अधिकार में नहीं रह सकता। जिस दिन से मेरी माता स्वर्गासीन हुई, उसी दिन से मेरे सुख भी उन्हीं के साथ चले गए। आपके एक छोटा बच्चा हो ही चुका है। अब मुझे भी आशीर्वाद के साथ बिदा दीजिए। मेरा विवाह आपको करना न था। वह कहती थीं—क्या एक कहारी-मात्र प्राप्त करने को आपने विवाह किया था ?"

पिताजी—"अच्छा बेटा! इस घर में न रहो, किसी छात्रालय में रहो। विमाता से आज से तुम्हारा कोई संबंध न रहेगा। स्वयं मैं तुम्हारा यथायोग्य प्रबंध किया करूँगा। क्रोध शांत करो। कैसी भी भूलें मैं बिना जाने कर गया, किंतु हूँ तो तेरा पिता ही।"

बालक—(पैरों पड़कर) "अपराध क्षमा हों। आप समर्थ और दयालु हैं। कर सभी कुछ सकते हैं, किंतु इतनी प्रार्थना है कि इस घर में मुझे स्मरण न कीजिएगा। उस पापिनी का मुख न देखूँगा। विमाता नहीं, राक्षसी है। अपने वैमात्रेय भाई-बहनों का प्यार करूँगा, किंतु उसका संबंध सदा को छोड़ता हूँ। यदि उसके प्रबंध में अन्य विवाह करूँगा, तो वह स्त्री भी इसी भाँति मुझसे विमुख हो जायगी।"

पिताजी—"अच्छा, जैसा जी चाहे, कर ; किंतु मुझे मत छोड़।"

बालक—"जो आज्ञा। अपराध क्षमा होते रहें।"

पिताजी—"अपराध तेरे नहीं, मेरे ही हैं।"

इस प्रकार बातें करके बालक चटर्जी एक छात्रावास में उसी दिन प्रविष्ट हो गया। पुलीस में पिताजी बहू के गुम हो जाने की रिपोर्ट करनेवाले थे, किंतु

लड़के ने न करने दी। बोला—"वह बालिका नहीं थी, न दासी। नरक में न रह सकी। उसका कोई दोष न था।"

छात्रावास में एक-ही-दो दिनों में इनके पास शुक्लजी का संदेश पहुँचा, और यह तुरत उनकी सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने पूछा—"कहो बेटे! प्रसन्न तो हो?"

बालक—"आपकी कृपा से जीवित हूँ। प्रसन्नता मैंने चिरकाल से नहीं जानी है।"

शुक्लजी—"बड़ा दुःख है कि इतने छोटे बालक होकर आपके अनुभव ऐसे कटु रहे हैं। मैंने आज आपकी धर्मपत्नी के संबंध में बात करने के लिये आपको कष्ट दिया है। उसके विषय में आपकी क्या धारणा है?"

बालक—"उस बेचारी का मेरे घर में मेरी विमाता द्वारा कभी मान न हुआ। मान की तो बात ही क्या, अपमानों की ही भारी मात्रा प्रतिदिन प्रस्तुत रहती थी।"

शुक्लजी—"यह सब जानकर भी आप उसे प्रसन्न क्यों न रख सके? आशा है, आपसे उसका व्यवहार यथायोग्य होगा।"

बालक—"उसने मुझसे प्रीति की मात्रा में कभी न्यूनता न की, किंतु बाल-वय के कारण अपनी असमर्थता से मैं उसकी रक्षा न कर सका, और दो-चार दिन हुए, मेरे स्वजनों से रुष्ट होकर वह कहीं चली गई। वह मेरे घर की कोई वस्तु नहीं ले गई। अपने सारे वस्त्र भी छोड़ गई। जो अलंकार मेरे घर से कभी उसे मिले थे, वे भी उसने त्याग दिए। केवल मायके के आभूषण तथा वहीं के एक जोड़ वस्त्र पहनकर कहीं चली गई। क्या आपको उसका कुछ पता है?"

शुक्लजी—"पता मुझे पूरा है। आप अभी बालक हैं, और वह तरुणी। यह अनमेल विवाह बहुत अनुचित हुआ ही था, ऊपर से आपकी विमाता की क्रूरता तथा पिता की उदासीनता से आपका घर उसके लिये नरक हो गया था। क्या आप उसे क्षमा कर सकते हैं?"

बालक—"आपकी सभी बातें उचित हैं। मैं उसे प्रसन्नता-पूर्वक क्षमा करता हूँ। इस काल वह है कहाँ?"

शुक्लजी—"एक चटर्जी महोदय की रक्षा में धर्म-पूर्वक है। जब विवाह ही उसका अनुचित था, तब क्या आप उसे छोड़ने को प्रस्तुत हैं?"

बालक—"जो कुछ नियम-पूर्वक संभव हो, मैं उसके लिये करने को प्रस्तुत हूँ। मेरे घर में उसे सुख न मिला, और मेरा साथ छोड़ने में उसका दोष न था। मैं न तो अपना पालन-पोषण स्वतंत्रता-पूर्वक कर सकता हूँ, न उसका। जो आपकी आज्ञा हो, वही करूँगा।"

शुक्लजी—"हिंदुओं में विवाह-बंधन तो छूट सकता नहीं। वह कलमा पढ़कर नियमानुसार मुसलमान हो जायगी, और तब न्यायालय द्वारा आपसे 'छोड़-छुट्टी' (खुला) माँगेगी। क्या आप सम्मति देते हैं ?"

बालक—"अवश्य देता हूँ, यदि पीछे से शुद्धि द्वारा ब्राह्मणी होकर उन्हीं चटर्जी महोदय से विवाह कर ले, तो।"

शुक्लजी—"ऐसा ही होगा। यदि आप चाहें तो वह एम्० ए० पास करने तक आपके पालनार्थ समुचित मात्रा में छात्रवृत्ति भी लगा सकते हैं।"

बालक—"यह उनकी कृपा है, किंतु मैं यह आभार स्वीकार नहीं कर सकता।"

अनंतर कलमा पढ़कर बहूजी केवल न्याय की दृष्टि में मुसलमान हो गईं, और अपने पूर्व पति से 'छोड़छुट्टी' पाकर फिर हिंदुवानी हुईं, तथा नियम-पूर्वक नलिनीरंजन चटर्जी से उनका गुप्तरूपेण विवाह हो गया। इसके पश्चात् इंस्पेक्टर विजयकुमार चटर्जी से मिलकर शुक्लजी ने नलिनीरंजन की शुद्धता पर बात की।

शुक्लजी—"इंस्पेक्टर साहब ! मैं नलिनीरंजन चटर्जी को किसी प्रकार पाप-मुक्त करना चाहता हूँ। वह आतंकवादियों का नेता अवश्य था, किंतु उसने अपने हाथ से कोई गुरु पाप नहीं किया। अब वह नवीन जीवन चलाना चाहता है।"

इंस्पेक्टर—"आपके इच्छानुसार मैंने पुलीस के काग़ज़ सब देख डाले। रिपोर्टों में नाम तो उसका आया है, किंतु किसी भारी अपराध में नाम नहीं है। यदि वह कलकत्ता छोड़कर पेशावर आदि की ओर चला जाय, तथा आतंकवादियों से कोई वास्तविक संबंध न रक्खे, तो मैं भी उसके पीछे न पड़ूँगा, तथा साल-दो साल में पुलीस उसका नाम भी भूल जायगी। नलिनीरंजन नाम छोड़कर अपने को अरिंदम चटर्जी कहने लगे, और अति शीघ्र पंजाब की ओर नौ-दो-ग्यारह हो जाय।"

शुक्लजी—"बड़ी ही कृपा हुई, इंस्पेक्टर साहब ! मेरे मित्र कपूरचंद कानपुर के भारी मिल-मालिक हैं। उनकी स्त्री माधवीजी भी बड़ी दयालु हैं। दोनो

मुझ पर विशेष कृपा करते हैं। उनकी एक दुकान स्यालकोट में है। वहीं अरिंदम को सपत्नीक प्रबंधार्थ भिजवा दूँगा।"

इंस्पेक्टर—"तब सारा कार-बार ठीक-ही-ठीक चल जायगा। आपने हमारे पुलीस-विभाग की सदैव आतंकवादी मित्रों तक के प्रतिकूल सहायता की है। एक इच्छा आपकी पूरी करने में हानि नहीं है।"

अनंतर नलिनीरंजनजी ने सपत्नीक यह सारा आयोजन स्वीकार किया, और उन्होंने गुप्तभावेन अपनी सभा में एक दिन बात आरंभ की।

नेता—"भाइयो! यथासाध्य मैंने चार-पाँच वर्ष आपकी सेवा तन-मन-धन से की। अब गुप्तरूपेण मेरा विवाह हो गया है, यह आप लोग जान ही गए होंगे।"

एक साहसी—"हाँ, यह हाल हम लोग जानते हैं, नेताजी!"

नेता—"एक बात नवीन यह बतलाता हूँ कि मेरी धर्मपत्नी बड़ी ही धर्म-भीरु हैं, और मेरा यह काम स्वभावशः नहीं पसंद करतीं।"

द्वितीय साहसी—"स्त्रियाँ स्वभावशः डरपोक होती हैं। आपने विवाह करने ही में भारी भूल कर दी। क्या अब हम लोगों का साथ भी छोड़ते हैं? कुछ दिनों से आप यों भी हम सभी से फटे-फटे रहते आए हैं।

नेता—यही बात है, भाइयो! अब मुझे कृपया अवकाश दीजिए, तथा किसी अन्य को नेता बना लीजिए। यदि रुचे, तो नीलरत्नजी बनर्जी को ही यह पद दीजिए। वह बहुत दिनों से काम भी अच्छा करते आए हैं। मुझसे योग्यतर नेता होंगे, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।"

तृतीय साहसी—"यह तो प्रकट ही है कि अब आप हमारे साथ रह नहीं सकते। आशा है, रहिएगा तो कलकत्ते में ही?"

नेता—"नहीं भाइयो! अब दो-ही-चार दिनों में मैं यहाँ से लोपांजन लगा रहा हूँ। पुराने अपराध क्षमा करके प्रसन्नता-पूर्वक बिदा दीजिए।"

चतुर्थ साहसी—"जाइएगा कहाँ?"

नेता—"इसका हाल बतलाने की आज्ञा वकील साहब ने नहीं दी है।"

तृतीय साहसी—"हम लोग प्रसन्नता-पूर्वक आपको बिदा देते हैं। साथ छूटने का शोक तो सारी मंडली को है, किंतु विवशता है। नीलरत्नजी तो आपके पीछे नेता होंगे ही। और है ही कौन, जिस पर दृष्टि पड़ सके?"

इस प्रकार साथियों से बिदा लेकर नलिनीरंजनजी वेष बदलकर सपत्नीक

शुक्लजी के साथ कानपुर चले गए। कलकत्ते में अपनी संपत्ति का प्रबंध अपने छोटे भाई को सौंप गए। कानपुर में माधवी बाई तथा कपूरचंदजी ने शुक्लजी की सम्मति प्रसन्नता-पूर्वक मान ली, और नलिनीरंजनजी अरिंदम चटर्जी होकर स्यालकोट की दुकान में काम करने लगे।

एक दिन अनुपम चटर्जी के पिता का अपनी पत्नी से यों वार्तालाप हुआ—

चटर्जी—"देवीजी! आपको मनुष्य की दुर्गंध असह्य-सी लगती है। घर में मेरी बहू और बड़ा बेटा था, जो आपके भाग्य-वश जा चुके हैं। आपका दो वर्ष का पुत्र था, जो कल ही मैंने अपने पुत्र-हीन भ्राता को दत्तक के रूप में दे दिया है। अब मैं अकेला आपके लिये कष्ट-प्रद घर में रह गया हूँ। मैंने भी निश्चय कर लिया है कि आज कचहरी से लौटने पर सीधा भाई के ही यहाँ चला जाऊँगा। आपको आज से मानुषीय दुर्गंध सूँघने का कष्ट न उठाना पड़ेगा। मेरा और बहू का जो सामान है, वह कल ही यहाँ से चला जायगा। अब आप प्रसन्नता-पूर्वक यहाँ विराजिए।"

स्त्री—"प्राणनाथ! यह क्या बातें हो रही हैं? मेरा क्या दोष है? यदि बहू कहीं निकल गई, तो मैं क्या करती? यदि भलमंसी के स्थान पर दुश्चरित्रता उसे रुची, तो मेरा क्या दोष है? स्वामिन्! गृह में एक दुःखदायी घटना-मात्र से आपको ऐसा विचलित न होना चाहिए, प्राणनाथ!"

चटर्जी—"स्वामी, प्राणनाथ आदि कहकर पुकारने से आप तथ्यता का अपमान क्यों कर रही हैं? दासजी कहकर क्यों नहीं पुकारतीं? मैं सारे जीवन स्वामी न होकर आपका दास रहा, तथा सारा मासिक वेतन आप ही के हाथ में प्रतिमास रख दिया करता था। इतने पर भी आपको प्रसन्न न कर सका, और आपने मेरे बेटे और बहू को घर से निकालकर ही दम लिया। अब इस दासत्व से मैं सदा के लिये त्यागपत्र देता हूँ। विना मोल का दास भी रखने की बुद्धि ईश्वर ने आपको न दी। अच्छा सदा को नमस्कार।"

स्त्री—(पैरों को पकड़कर) "स्वामिन्! सारे जीवन की छल-हीन सेवा को इतनी शीघ्रता से न भुलाइए। माना कि मेरा व्यवहार बहू से अच्छा न रहा, तथा पुत्र से भी न्यूनाधिक अनुचित ही था, तो भी यदि आप कभी भी चेतावनी देने की कृपा करते, तो मेरा आचरण कुछ-न-कुछ सुधर ही जाता। अपराध क्षमा हो। भविष्य में जो आज्ञा होगी, उसके पालन में निमेष-मात्र का विलंब न होगा। कृपालु स्वामिन्! मूर्खता तो स्त्रियाँ किया ही करती हैं, किंतु क्षमा करना भी

महात्माओं का धर्म है। कोई तो आज्ञा दे दीजिए। सारे जीवन के सुख-प्रद संबंध को एकाएकी वध-दंड न दीजिए। पाप मेरा अक्षम्य भी कहा जा सकता है, किंतु मूर्खता-वश हुआ, सोच-समझकर नहीं।"

चटर्जी—"अब ऐसी माया से काम न चलेगा, देवीजी ! मैं आपके दासत्व से अपने को मुक्त कर चुका हूँ। जहाँ चाहिए, प्रसन्नता से रहिए। मेरा पीछा छोड़ने की कृपा कीजिए।"

स्त्री—(फूट-फूटकर रोती हुई) "ये चरण मैं यावज्जीवन नहीं छोड़ सकती। यदि छोड़ाना ही है, तो खड्ग-प्रहार द्वारा तन से मेरा सिर पृथक् कर दीजिए।"

चटर्जी—"ऐसी प्रीति पहले कहाँ गई थी ? सारे संसार में नाक कटवाकर अब सौजन्य का पाठ स्मरण आने से क्या काम बनता है ? क्या मेरी बहू अब मिल सकती है ? और मिले भी, तो किस काम की ? जिस बेटे ने कभी शिर उठाकर मेरे सामने देखा तक नहीं, उसीने आपके कृत्यों से आरी आकर मेरा असह्य शब्दों में अपमान किया। आप रो-रोकर चाहे प्राण भी दे दें, किंतु मैं अब साथी नहीं हो सकता। समय पर चूककर अब बुद्धि आपको आई भी, तो निष्प्रयोजक है। जाइए, जैसे हो, अपना कालक्षेप कीजिए। मैं तो यह चला।"

स्त्री—(पैरों से लिपटकर) "स्वामिन् ! कोई तो उपाय बतलाइए। चाहे प्राण ले लीजिए, किंतु ये पवित्र चरण न छोड़ाइए।"

चटर्जी—"तुमने मेरा सारा यश नष्ट कर दिया, तथा मेरा पूरा गार्हस्थ्य सुख अशेष हो गया। अब किस दिन के लिये यह प्रेम का ढोंग हो रहा है ?"

स्त्री—"आपके चरणों से तो कभी विरक्ति हुई नहीं। मूर्खता-मात्र का दोष है। कोई प्रतिकार बतलाइए। प्राण चाहे ले लीजिए, किंतु प्रेम नहीं। मैं अकेली क्या कर सकती हूँ ? दया की भिक्षा माँगती हूँ।"

चटर्जी—"मैं तो अब जा ही रहा हूँ। एक वर्ष तक इस घर में पग न रक्खूँगा। इतनी अवधि के भीतर यदि पुत्र को प्रसन्न करके यहाँ ला सकी, तो मैं भी वर्षांत में पलट सकूँगा।"

इतना कहकर चटर्जी महोदय तडिद्वेग से घर से निकल गए। उनकी स्त्री ने पुत्र को प्रसन्न करने के अनेक प्रयत्न किए, किंतु उसने कुछ न सुना। वह बोला कि विना बहू से क्षमा प्राप्त किए मैं आपको प्रसन्न करनेवाला कौन हूँ ? अनंतर विमाता की प्रार्थना से विवश होकर वह उसी के साथ भारतभूषण की सेवा में

लखनऊ गया, और उनसे पता पाकर अरिंदम की सेवा में विमाता-सहित स्यालकोट पहुँचा। वहाँ विमाता बहू के पैरों पड़ी, और भारी अनुनय से उसने अरिंदम-सहित उसे प्रसन्न किया। अरिंदम ने सहर्ष एक सहस्र रुपए बालक चटर्जी के भेंट किए, और वह विमाता-समेत बहू को आशीर्वाद देकर कलकत्ते चले गए। अरिंदम से इन लोगों का पहले परिचय तो था नहीं, सो भेद खुलने का भय न था। फिर भी सारी घटनाएँ गुप्त रखने की इनसे प्रार्थना कर दी गई। अब बालक अपने घर में फिर से रहने लगा, और समझा-बुझाकर पितृ-चरण को भी दो ही मास में वहीं ले आया।

पंचम परिच्छेद

भारतीय भाग्योदय

१६३५ में भारतीय उन्नति का जो विधान लंदन में बना, उसमें पहले तो मोटी-मोटी बातें स्थिर हो गईं, किंतु धारा-सभा में जो ऐक्ट बनने लगा, उसमें लंदनस्थ सभा के कई मेंबरों ने भारत के प्रतिकूल नए परिवर्तन पेश कर दिए, जो भारतीय गौरांग महासचिव द्वारा सुगमता से स्वीकृत भी हो गए। वे परिवर्तन थे तो साधारण ही, उनमें कोई विशेष महत्ता न थी, किंतु मानी हुई बातों में भी घटाव होने से भारतीय राजनीतिज्ञ क्रोधित हो गए। उनका बिर्तानिया के वचनों से विश्वास बहुत घट गया, और उसके बढ़ावावाले कथन खोखले दिखने लगे; तो उसी विधान के अनुसार भारतीय राज्य-प्रबंध चलने लगा। भारतीयों को उससे कोई प्रसन्नता न हुई। प्रथम संसारव्यापी महायुद्ध में जर्मनी पराजित हो गया था, किंतु उसके संबंध में जो सारे संसार की राजसभा बनी, उसमें भाग लेने से अमरीका ने इनकार कर दिया तथा फ्रांस और बिर्तानिया में उसके परिचालन में खींचतान होने लगी, जिससे बिर्तानिया आदि की गुप्त सहायता से पराजित जर्मनी फिर से प्रबल पड़ गया। संसार-शक्तियों ने पोलैंड का टूटा हुआ प्राचीन राज्य फिर से स्थापित कर दिया, तथा जर्मन उपनिवेश अन्य महाशक्तियों में बट गए, जिनमें से केनिया का प्रधान उपनिवेश बिर्तानिया को मिला था। जब जर्मनी का बल फिर से बढ़ा, तो उसने बिर्तानिया से मित्र-भाव इस नियम पर स्थापित रखना चाहा कि केनिया उसे वापस मिल जाय, तथा जेकोस्लोवाकिया और पोलैंड आदि से वह मनमाना व्यवहार कर सके। बिर्तानिया ने केनिया देना पसंद न किया, और यह भी सोचा कि अंतिम दोनो देशों पर रूस की कृपा होने से वे जर्मनी से मिल नहीं सकते; किंतु जब युद्ध-संबंधी तनातनी बहुत बढ़ी, तब फ्रांस और बिर्तानिया तो मिले रहे, किंतु एकाएकी रूस ने विना लड़े ही जर्मनी की चाही हुई तटस्थता की नीति पकड़ ली। सितंबर, १६३६ में द्वितीय महायुद्ध प्रारंभ हो गया, जिसमें न चाहते हुए भी बिर्तानिया की स्वीकृति से भारत जर्मनी, इटली और जापान के प्रतिकूल युद्धकर्ता

बन गया। भारतीय इसके प्रतिकूल चिल्लाते ही रहे, किंतु किसी ने कुछ न सुना। युद्धारंभ ही में जर्मनी ने फ्रांस पर अधिकार कर लिया, और अकेला बितानिया जर्मनी के प्रतिकूल युद्ध में रह गया। उधर जर्मनी की जीत निश्चित समझकर इटली और जापान भी उसकी ओर से लड़ने लगे। यह विकट दशा देखकर अमरीका भी बितानिया की ओर से युद्ध में कूद पड़ा। संधि के अनुसार जर्मनी को रूस से युद्ध-सामग्री मिलनी थी, जो रूस की अनिच्छा अथवा अयोग्यता से उचित मात्रा में न मिली। उधर युद्ध बहुत करके समुद्री रह गया, जिससे जर्मनी और इटली की भारी सेनाएँ कुछ कर न पाती थीं, यद्यपि व्यय उन पर भला-चंगा होता था। ऐसी दशा में जर्मनी ने रूस से सामान पाने की सख़्ती की, और उसके न मानने से उसी पर धावा बोल दिया।

जर्मनी की यह कार्यवाही ऐसी भद्दी हुई, जिससे मानो उसने अपने ही पैर में कुल्हाड़ा मारा। सारे विज्ञ पुरुष समझ गए कि अब जर्मनी की हार निश्चित है। युद्ध चलता रहा, और रूस को दबाती हुई जर्मन-सेना स्टैलिनग्राड तक पहुँच गई। किंतु वहीं से युद्ध के भाग्य ने पलटा खाया, और रणचंडी का प्रचंड तांडव जर्मनी के प्रतिकूल चलने लगा। हिटलर ने अपने ही प्रवीण सैनिक नेताओं की सम्मति के प्रतिकूल स्टैलिनग्राड का युद्ध चलाया, जिससे उसकी हार होने लगी। इटली थोड़े ही दिनों में पराजित होकर युद्ध छोड़ बैठा, और मुसलीनी बंदी हो गया। एक बार जर्मनों ने उसे छुड़ाया भी, किंतु वह कुछ कर न पाया, और पुनर्बार बंदी होकर प्राण ही खो बैठा। इधर जापान पूर्वी एशिया को दबाता हुआ बर्मा पर अधिकृत हो गया, और उसका धावा भारतीय प्रांत आसाम पर हुआ, तथा कलकत्ते पर भी थोड़ी-सी गोलाबारी हुई। इधर नेताजी सुभाषचंद्र बोस का मत महात्मा गांधी से नहीं मिलता था, और वह अफ़ग़ानिस्तान, जर्मनी आदि होते हुए समय पर जापान पहुँचे। वहाँ इनके प्रयत्नों से एक भारतीय दल जातीय सेना के नाम से स्थापित हुआ। भय ऐसा उपस्थित हुआ कि जापानी सेना इस भारतीय दल की सहायता से कहीं बंगाल भी न जीत ले, क्योंकि कहने को भारतोद्धार का भी नाम था, किंतु था वह नितांत थोथा ही। जापान अपने देश से इतनी दूर सेना को भोज्य-सामग्री न पहुँचा सका, और उसकी सेना क्षुधार्त होकर पराङ्मुख हो गई। भारत भाग्य-वश शत्रु के आक्रमण से बच गया। यदि कहीं जापान जीत जाता, तो कहने को भारत स्वतंत्र होता, और बंगालियों की लोकतंत्र में थोड़ी-सी महत्ता भी हो जाती, किंतु वास्तव में बितानिया के स्थान पर हम जापान के दास बनते। अस्तु। जर्मनी और इटली के आक्रमण जब व्यर्थ हो

गए, तब दो आटम बमों द्वारा अमरीका ने डेढ़-दो लक्ष जापानियों का विनाश कर डाला, और विना हारे ही और भी अधिक जन-विनाश के भय से जापान अमरीका के अधिकार में आ गया। इधर भारत में कांग्रेस बिर्तानिया के प्रतिकूल थी ही, सो अगस्त, १९४२ की वार्षिक सभा में घोर मंतव्य स्वीकृत हुए, जिससे महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, पटेल आदि सारे प्रमुख नेता जेल में ठूँस दिए गए, तथा देश में घोर उपद्रव आरंभ हुआ। बहुतेरे विद्यार्थियों तक ने मेमों आदि के कपड़े मार्ग चलने में काले कर दिए। रेल की गाड़ियों, अंजनों आदि को भी हानि पहुँचाई गई, और ब्रिटिशों को समझ-सा पड़ने लगा कि कोई भी भारतीय सेना बिर्तानिया की सहायता में विश्वसनीय नहीं रह गई। यह सब होते हुए भी युद्ध मित्र शक्तियों के अनुकूल चलता रहा, तथा पहले फ्रांस का खोया हुआ अधिकार पुनः प्राप्त हुआ और फिर जर्मन पर भी बिर्तानिया, फ्रांस, रूस और अमरीका का अधिकार हो गया।

पहले तो भारतीय साम्यवादी सरकार के प्रतिकूल थे, किंतु जब रूस भी जर्मनी के प्रतिकूल युद्ध में कूदा, तब भारतीय साम्यवादी भारत में बिर्तानिया के प्रति राज-भक्ति के उपदेश देने लगे थे। जैसा पहले कहा जा चुका है, सारे साम्यवादी अपने-अपने देशों से कोई भक्ति नहीं रखते, न देश को अपना देश समझते हैं, वरन् रूस को ही सब के सब पितृभूमि मानकर उसके प्रति भक्तिमान् रहते हैं। फ्रांस एक बड़ा ही सशक्त देश था, किंतु दुर्भाग्यवश वहाँ युद्धारंभ के पूर्व ही प्रायः आधा अधिकार साम्यवादियों का हो चुका था, जिससे उसका कुछ किया-धरा न हुआ और वह न चाहते हुए भी जर्मनी के अधिकार में आ गया था। जहाँ कहीं भी प्रजा में एका नहीं होता, वहीं देश का बल उनके न चाहते हुए भी ध्वस्त हो जाता है। यही दशा फ्रांस की हुई और है भी। वहाँ के साम्यवादी खुले-खुले कहते हैं कि यदि रूस आक्रमण करे, तो वे लोग फ्रांस की सहायता न करके रूस की ही करेंगे। यही दशा भारतीय साम्यवादियों की थी। जब से रूस युद्ध में कूदा, तब से वे युद्ध-भर के लिये बिर्तानिया के पूर्ण राजभक्त हो गए। उन्होंने इस सिद्धांत का प्रचार किया कि भारतीयों को पूर्ण राजभक्त होना चाहिए, सारे संपत्तिवानों को मिटाकर सब देशियों में धनाधिकार बराबर कर देना चाहिए, तथा हिंदुओं के लिये योग्य था कि मुसलमानों से उन्हीं के मुहँमाँगे नियमों पर मेल कर लेते। महायुद्ध के समय, और बहुत कुछ अब भी, ये तीनों नियम हिंदुओं के लिये विष हैं। धनी हिंदू ही विशेषतया थे और हैं।

उन्हीं का धन बटना था, अधिकार जितने कुछ मुसलमान दे देते वे ही मिलते थे और बिर्तानिया से पूर्ण राजभक्ति होने से भारतीय स्वराज्य का प्रश्न ही नहीं उठना था। फिर भी बहुतेरे अंधे हिंदू साम्यवादी थे और हैं। उस समुदाय में संख्या के अनुसार विशेषता मुसलमानों की ही है, फिर भी हिंदू हैं उसमें सहस्रों। मुस्लिम उसमें नब्बे प्रतिशत कहे जाते हैं।

जब मित्र-शक्तियों की विजय हो गई, तब यह प्रश्न उठा कि भविष्य में संसार-परिचालन किस प्रकार हो? यद्यपि मित्र-शक्तियाँ विजयिनी अवश्य हुईं, तथापि जन और विशेषतया धनविनाश ऐसा हुआ कि दिवाला निकलने का समय आ गया। युद्ध में अमरीका सबसे बढ़-चढ़कर सधन देश हो गया। उसके पीछे रूस है। जनबल तथा क्षेत्रफल में वह सबसे बड़ा है और लड़ाकू वायुयान भी उसके पास सबसे अधिक हैं। तो भी १६४५ में युद्ध-समाप्ति के पीछे प्रायः दश वर्षों तक का समय विना पाए उसका आंतरिक विभव पूर्णतया दृढ़ नहीं हो सकता, न शस्त्रास्त्रों की समुचित महत्ता उसे मिल सकती है। निर्यात का माल बाहर भेजने में भी वह अभी सशक्त नहीं है। केवल जनबल और भारी क्षेत्रफल अभी तक उसके प्रधान महत्ता-साधक हैं। पूर्वी योरप में उसका प्रभाव बहुत कुछ बैठ चुका है। इस क्षेत्रफल में पूर्वी जर्मनी भी सम्मिलित है। पोलैंड लिथुवेनिया, यस्टोनिया, फिनलैंड, जेकोस्लोवाकिया, हुँगरी, रूमानिया और बुलगारिया पर उसका बहुत कुछ अधिकार है। था यूगोस्लाविया पर भी, किंतु आजकल उससे रूस का खुला-खुला बिगाड़ हो रहा है। जनसंख्या खास रूस की २० करोड़ के लगभग है। महायुद्ध में उसका नदीवाला एक भारी बंधा उसी के द्वारा तोड़ा गया था, और भी संपत्ति-विनाश स्वयं उसने जर्मनों से उसे बचाने के विचार से किया था। युद्धांत से रूस उन्नति शीघ्रतापूर्वक कर अवश्य रहा है, किंतु उसकी यथावत् पूर्णता के लिये अभी समय वांछित है। अमरीका ने आटम बमों की बहुत भारी उन्नति कर ली है; किंतु या तो रूस उस अस्त्र का भेद नहीं जानता, या समुचित संख्या में अभी उसे बना नहीं सका है। उसके बनने में व्यय भी बहुत होता है। अतएव अमरीका की अभी तक चढ़ती कला देख पड़ती है और रूस को युद्ध की दशा में वह बमों द्वारा भारी हानि पहुँचा सकता है। उसकी जनसंख्या १३ करोड़ के ही निकट है, किंतु रूस के देखते हुए शिल्प-वाणिज्य में वह बहुत आगे बढ़ा हुआ है। पूर्वी और उत्तरी-पूर्वी योरप में रूस की महत्ता बढ़ने से यह भय था कि कहीं वह पश्चिमी योरप पर

युद्ध की दशा में परम शीघ्रतापवक अधिकार न कर ले। बिर्तानिया से अप्रसन्न होने के कारण भारत यदि रूस से मिल जाता, तो सारे एशिया में रूसी अधिकार तथा साम्यवाद फैल जाने का भय था। उधर अमरीका और बिर्तानिया संपत्ति-वादी देश हैं। इसीलिये इन दोनो ने पूर्वी-दक्षिणी एशिया तथा भारत को प्रसन्न करने का निश्चय किया। इस ओर 'इंडोनेशिया, फ़िलिपाइंस, इंडोचाइना, कंबोडिया, वीतनाम, बर्मा, लंका और भारत की स्वतंत्रता के प्रश्न थे। १९२० से महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश की जैसी स्थिति हो रही थी, उससे बिर्तानिया को निश्चय हो गया था कि बिना पूर्ण स्वतंत्रता पाए भारत अब प्रसन्न नहीं रह सकता। उधर आदि से ही युद्ध में संलग्न रहने से बिर्तानिया जीतकर भी जन-धन की हानि से पूरे संकट में पड़ गया था, और बिना अमरीका की सहायता के उसका काम कुछ वर्ष चल नहीं सकता था। गुप्त सलाहें बिर्तानिया और अमरीका की चाहे जो हुई हों, किंत प्रकट देखा यह गया कि अमरीका ने फ़िलिपाइंस को पहले स्वतंत्र कर दिया, तथा डचों के सामने इंडोनेशिया की स्वतंत्रता का प्रश्न तीव्रता से पेश हुआ। बिर्तानिया ने बर्मा और लंका को स्वतंत्र कर दिया और भारतीय स्वतंत्रता के संबंध में हिंदू-मुसलमानों से मंत्रणा प्रारंभ की। बहुत सी प्रतिज्ञाएँ बिर्तानिया पहले भंग कर चुका था, जिससे पहले तो भारतीयों को इन बातों पर पूरा विश्वास न पड़ा। बिर्तानिया में लेबर (श्रमी) सरकार अधिकार पा चुकी थी, किंतु भारत में टोरी चर्चिल महोदय द्वारा नियत किए हुए लार्ड वेवेल वाइसराय थे, जिन्होंने मुसलमानों का विशेष पक्ष लिया। जब बिर्तानिया की सरकार ने यहाँ काम ठीक चलता न देखा, तब उन्हें हटाकर बड़े लाट का उच्च पद लार्ड माउंटबेटन को दिया, जिन्होंने औचित्य के साथ भारत में राज्य-परिवर्तन का काम चलाया।

यहाँ प्रायः मार्च, १९४७ से भारतीय सरकार अधिकार युक्त कर दी गई थी, तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू महामंत्री हुए थे। इन पर तथा पटेल महोदय पर भारतीयों को सबसे अधिक विश्वास था। कुछ दिनों में कुछ मुसलमान मंत्री भी केंद्रीय लोकतंत्र में ले लिए गए और उस मंत्रिमंडल में खुली-खुली खींच-तान हिंदू और मुसलमान मंत्रियों में चलने लगी। मुसलमानों ने सारे मुस्लिम बहुमतवाले प्रांतों को अलग करके पाकिस्तान नाम के पृथक् राज्य बनाने पर हठ किया। हिंदू इसके प्रतिकूल वाग्युद्ध करते रहे। ऐसा दिखने लगा कि सारा बंगाल और आसाम हिंदू-राज्य से निकल जायगा। आसामियों ने इस

का घोर प्रतिवाद किया, और विफलता की दशा में युद्ध तक की घोषणा की। जब हिंदुओं ने देखा कि बिना पाकिस्तान के माने सारी स्वतंत्रता का प्रश्न संदिग्ध हुआ जाता है, तब हिंदू-बहुमतवाले बंगाली और पंजाबी ज़िलों तथा आसाम को अलग करके केवल मुस्लिम-बहुमतवाले पूर्वी बंगाल तथा पश्चिमी पंजाब के ज़िले पाकिस्तान के लिये छोड़ना स्वीकार कर लिया। सिंध तथा वायव्य-सीमा-प्रांत उन्हें बहुमत के कारण मिलने थे ही। इस प्रकार इन दोनो प्रांतों के अतिरिक्त उन्होंने पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल भी पाए। शेष भारत हिंदुओं के पास आया। इधरवाली सारी देशी रियासतें हिंदुओं को निर्विघ्न मिल गईं, केवल जूनागढ़, हैदराबाद तथा कश्मीर के विषय में झगड़ा शेष रहा। १५ अगस्त, १९४७ को भारतीय और पाकिस्तानी स्वतंत्रता की घोषणा, बिर्तानिया की स्वीकृति के साथ, हो गई।

उपर्युक्त स्वतंत्रता के पहले ही कलकत्ते में मुसलमानों ने हिंदुओं को मारना प्रारंभ कर दिया। प्रायः दो दिनों तक हिंदू बहुतायत से मारे गए। इस काल भारतभूषण शुक्ल तथा अयोध्याप्रसाद द्विवेदी भी कलकत्ते में ही प्रस्तुत थे। वहाँ के कुछ सधन हिंदुओं ने इनकी सम्मति ली, और इन्होंने प्रचंडता ग्रहण का मंत्र दिया। तब मुसलमान गुंडों को ही धन-लोभ देकर धनिकों ने इस अनुचित कार्य में लगाया। बहुतों का कथन है कि चार-छ दिनों के झगड़ों में प्रति हिंदू मृत के बदले तीन-तीन मुसलमान मारे गए। यह कहना ही कहना है, निश्चय नहीं। उस काल वहाँ के महामंत्री सोहरावर्दी महोदय थे। कई हिंदुओं का विचार था कि मुस्लिम मंत्रियों की ही उत्तेजना से हिंदू-वध प्रारंभ हुआ था। यह भी संदेह-मात्र था। जब मुसलमानों ने कलकत्ते की अपनी पराजय का हाल जाना, तब नोवाखाली में मुस्लिम उपद्रव प्रारंभ हुआ। कहते हैं, बहुतेरे हिंदू मारे गए, और बल-पूर्वक मुसलमान बनाए गए तथा सैकड़ों हिंदू बालिकाएँ छीनी गईं। इन सब अत्याचारों की संख्या बतलाना कठिन है। हवा दो-तीन सहस्र की संख्या तक पहुँचती है। समय पर महात्मा गांधी ने स्वयं वहाँ पधारकर प्रायः एक मास निवास किया, तथा धैर्य प्रदान करके मुसलमान बनाए हुए हिंदुओं को फिर से हिंदू बनवाकर बिरादरी में सम्मिलित करा दिया। कलकत्ते आदि के उपद्रवों के संबंध में कुछ बिहारियों पर भी अत्याचार हुए। अतएव क्रोध वहाँ भी उबल पड़ा, और वहाँ के निरपराध मुसलमानों पर कलकत्ते और नोवाखाली के बदले प्रहार होने लगे, यद्यपि उस प्रांत में हिंदू-मुसलमानों में दंगे हुआ

भी नहीं करते थे। यह उपद्रव सुनकर महामंत्री नेहरू महोदय स्वयं वहाँ गए, और अन्य प्रकार से न माननेवाले हिंदुओं पर सरकार के द्वारा बमों तक के प्रयोग की धमकी दी गई, जिससे वहाँ का बखेड़ा शांत हुआ। हिंदुओं का कहना है कि प्रायः छ सहस्र मुसलमान बिहार में मारे गए होंगे। उधर कुछ मुसलमानों का कथन है कि तीस सहस्र तक मुस्लिम मरे होंगे। अनंतर इलाहाबाद और गढ़मुक्तेश्वर में भी ऐसे ही झगड़े हुए, तथा दोनो धर्मों के अनुयायियों की अनुचित हत्याएँ हुईं। ये सब झगड़े '१५ अगस्त,' ४७ के पहले ही हो चुके थे।

अनंतर स्वतंत्रता प्राप्त हो गई, और दोनो भागों के हिंदू-मुसलमान अपने-अपने सौभाग्य से अत्यंत प्रसन्न हुए। भारत से ब्रिटिश राजसेवक प्रायः सब चले गए, और बहुत ही कम शेष रह गए। युद्ध-विभाग में कुछ ब्रिटिश बने रहे। वे भी समय के साथ जा रहे हैं। अब हमारे महासेनापति करिअप्पा महोदय हुए हैं, तथा उनसे नीचे चार बड़े सेनापति भारत में हैं। वे सब हिंदू हैं। सारे राजसेवकों को अधिकार दिया गया कि वे चाहे भारत में रहें या पाकिस्तान में। बहुतेरे मुसलमान राजसेवक पाकिस्तान चले गए। तो भी भारी संख्या में मुस्लिम राजसेवक भारत में अब भी प्रस्तुत हैं। अब नियम हो गया है कि प्रति प्रांत साधारण नौकरियों में मुस्लिम प्रांतीय संख्याओं के अनुसार स्थान पाएँगे, तथा प्रतियोगिता-वालियों में योग्यतानुसार। सारी रियासतें, जो भारत में थीं वे, प्रसन्नता-पूर्वक भारतीय सरकार से संबद्ध हो गईं। समझ पड़ा कि जब मुसलमान सुख से हमारे साथ नहीं रहना चाहते थे, तब उनके अलग हो जाने से 'आँख फूटी, पीर गई' वाली मसल चरितार्थ होने में क्या दोष है? पहले ऐसा समझ पड़ता था कि जब बटवारा खुशी-खुशी हो गया है, तब झगड़ा शेष न रहेगा। '१५ अगस्त,' ४७ को सारे भारत में हर्ष मनाया गया, तथा पाकिस्तान में भी। सबको समझ पड़ा कि प्रायः साढ़े सात सौ वर्षों की दासता के पीछे यह स्वतंत्रता प्रसन्नता-पूर्वक क्या ही पके फल के समान, बिना विशेष प्रयत्न के, मुख में टपक पड़ी। उधर लंका और बर्मा को भी बिर्तानिया ने स्वतंत्र कर दिया। इंडोचाइना, अनाम (वीतनाम) और टांकिन को भी फ्रांस ने स्वतंत्रप्राय कर दिया है, यद्यपि अभी थोड़ा-सा संबंध वहाँ शेष है, जिस पर झगड़े हो रहे हैं। इंडोनेशिया भी २७ दिसंबर' को स्वतंत्र जनतंत्र हो गया है। केवल मलाया में अभी झगड़ा मचा हुआ है। वहाँ चीनी और भारतीय भी भारी-भारी संख्याओं में हैं, तथा साम्यवाद का भी बल है।

षष्ठ परिच्छेद

पंजाबी दंगे

समझ तो सबको पड़ता था कि बटवारे के पीछे मेल से काम चलने को था, किंतु "मेरे मन कुछ और है, करता के मन और" की बात सामने आई। पच्छिमी पंजाब और वायव्य-सीमा-प्रांत तथा सिंध में हिंदू थे तो लघु संख्या में; किंतु सधन प्रायः वे ही थे। वायव्य-सीमा-प्रांत में क़बीले सधन हिंदुओं पर डाके अँगरेज़ी काल में भी डाला करते तथा धन और कन्याएँ छीन ले जाया करते थे। उस देश में धान्य विशेष उत्पन्न नहीं होता, वहाँ के लोग परम प्रवीन लक्ष्य-भेदक तथा बहादुर युद्ध-कर्ता-मात्र होते हैं। लूट ही उनका व्यापार चला आया है। अँगरेज़ी राज्य के समय उन्हें कई करोड़ वार्षिक किन्हीं व्याजों से दिए जाते थे, जिससे लूट न बढ़े, तो भी वह न्यूनाधिक चलती ही थी। जब अपना ही राज्य हो गया, तो उन लोगों ने सोचा होगा, अब तो हिंदुओं को खुले-खुले लूटा जा सकता है। बिहार, गढ़मुक्तेश्वर आदि के दंगों से भी उन्हें अवश्य ही उत्तेजना मिली होगी। फल यह हुआ कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के महीने-दो महीनों के भीतर वहाँ झगड़ा प्रारंभ हो गया। इधर हमारे चरित्रनायकों में से भारतभूषण और शैलेंद्रकुमार कारण-वश कुछ दिनों से सकुटुंब लाहौर में रहने लगे थे, तथा अरिंदम चटर्जी स्यालकोट में थे ही। वहीं उन दिनों कपूरचंदजी भी सपत्नीक चले आए थे। अरिंदम की स्त्री के पूर्व पति सुनील चटर्जी महोदय एम्० ए० पास करके अपनी पत्नी की छोटी बहन से विवाहित होकर कपूरचंदजी के यहाँ मिल में काम करने लगे थे। अरिंदमजी ने देश की दशा देखकर समझा, कल्याण कठिन है, अतएव इन्होंने अपने स्वामी से विचार-विनिमय करके अपने यहाँ, संपत्ति तथा शरीर के रक्षणार्थ, प्रायः पचास अच्छे हिंदू युद्धकर्ता रख लिए थे। जब इनको पता चला कि भारतभूषणजी भी लाहौर में विराजने लगे हैं, तो आप वहाँ जाकर उनसे भी मिले तथा समझा-बुझाकर चैतन्य कर आए थे। उन्होंने भी शैलेंद्रकुमारजी से मंत्रणा करके उनके और अपने व्यय से प्रायः ३५ बहादुर हिंदू आत्मरक्षा के लिये रख लिए। शैलेंद्रकुमारजी पितृवियोग के

पीछे स्वयं राजा हो चुके थे, और अपनी ससुराल में पत्नी द्वारा उत्तराधिकार पाने से यदाकदा वहीं रहने लगे थे। भारतभूषण का लड़का अब प्रायः १२ वर्ष का था। यही अवस्था राजा साहब के राजकुमार की थी, तथा इनकी परम सुंदरी कन्या प्रायः १७ वर्ष की थी। भारतभूषण के पुत्र का नाम विजयभूषण था, और राजकन्या का चंद्रकुमारी। इन दोनो में कुछ शुद्ध एवं संयत प्रेम-भाव भी था। पति-पत्नी-संबंधी कोई विचार न था; किंतु चाहते दोनो एक दूसरे को थे। भारत-भूषण भी वकालत की भारी आय तथा संयत व्यय के कारण एक सधन व्यक्ति हो चुके थे, तथा उच्च आचरण एवं क़ानूनी प्रवीणता के कारण समाज में इनका अच्छा मान था। राजा साहब की ससुराल में भी अच्छी संपदा थी, जिसकी स्वामिनी इनकी स्त्री थी। उसी के संबंध में न्यायालयों में कुछ झगड़ा लगा हुआ था, जिसके कारण ये दोनो मित्र कुछ काल के लिये लाहौर आ गए थे। राजकुमार भी अपने पिता के साथ यहीं था और विजयभूषण भी।

'अगस्त,' ४७ में स्वतंत्रता भारत और पाकिस्तान दोनो को मिली किंतु इसके पूर्व से ही सारे उत्तरी और मध्य भारत में मुसलमानों ने अस्त्र-शस्त्र छिपा-छिपाकर अपने-अपने पास एकत्र कर रक्खे थे। कुछ लोगों को संदेह था कि भारत में स्थित थोड़े-से ब्रिटिशों का यह विचार था कि कहने भर को हिंदुओं को स्वतंत्रता तो दे दी जाय, किंतु पाकिस्तान तथा भारतीय मुसलमानों को सबल कराकर भारत पर आक्रमण करा दिया जाय, तथा भारतीय मुसलमानों द्वारा देश में आंतरिक हलचल मचवाकर एक बार फिर से भारत पर मुस्लिम सहायता से ब्रिटिश राज्य, स्वयं हिंदुओं की भी प्रार्थना से, स्थापित हो जाय। यह विचार इसलिये समझा जाता था कि १९१३ क्या १९०३ से ही हिंदुओं ने स्वतंत्रता प्राप्त्यर्थ भारी उपद्रव मचा रक्खा था; किंतु मुसलमान बहुत करके हिंदू-भय से राजभक्त थे। उपर्युक्त विचार कोई दृढ़ बात न होकर केवल कुछ हिंदुओं के संदेह पर आधारित था। इतनी बात अवश्य थी कि बहुतेरे मुसलमानों ने गुप्त-रीत्या शस्त्रास्त्र संग्रह किया था, और ऐसे बहुतेरे बंडल रेल आदि के द्वारा जहाँ-तहाँ पकड़े भी गए थे। जो भी कारण हों, 'अगस्त,' ४७ में स्वतंत्रता मिलने से कई मास पूर्व पश्चिमी पंजाब में दंगों के सामान जुटे हुए थे, और स्वतंत्रता प्राप्त होते ही एक ही दो मासों में मुसलमानों द्वारा झगड़ा ही नहीं मार-काट आरंभ हो गई। पश्चिमी पंजाब में सिक्खों और हिंदुओं पर निष्कारण प्राण-घातक प्रहार होने लगे। इनका रोकना तो दूर रहा, मुसलमानी पुलीस और

सेना हिंदुओं को हराने में योग देने लगी। सहस्रों हिंदुओं के घरबार, खेत-खलिहान, जानवर, अलंकार, धन-दौलत सब खुले-खुले लुटने लगे। थे हिंदू और सिक्ख भी सबल ; किंतु निरस्त्र होने से तथा पुलीस और सेना से भी आक्रांत होकर वे कुछ कर न सके, और बिलला-बिललाकर भागे। उनकी दौलत लुट गई, घर छीन लिए गए, विवाहित तथा अविवाहित स्त्रियाँ छीनी गईं, और उनका किया कुछ हो न सका। लाज बचाने को सैकड़ों हिंदुओं ने अपने-अपने घरों की स्त्रियों का स्वयं वध कर डाला, सो भी उन्हीं स्त्रियों की इच्छा से। शहरों के हिंदू मोहल्लों में हाहाकार मच गया। सौ-सौ, पचास-पचास के झुंडों में मुसलमान मार-काट मचाते हुए हिंदू-घरों में घुस-घुसकर माल-मत्ता तथा तरुणियों को एकत्र करने लगे।

राजा शैलेंद्रकुमार के महलों में भी खलभली मच गई। शुक्लजी से सलाह करके उन्होंने श्वशुर-घर की संपत्ति तथा अपने दोनो कुटुंबों की रक्षा का प्रबंध दृढ़ किया। बंदूकें और तलवारें ले-लेकर सारे सिपाही फाटक बंद कर-करके युद्धार्थ सन्नद्ध हो गए। दुर्भाग्य-वश राजकुमार हाट की ओर, केवल एक साथी के साथ, गया था। पलटने में जब तक घर पहुँचे-पहुँचे कि मार्ग में एक विनाशकारी मुस्लिम दल मिल गया, जिससे लड़कर बेचारे ये दोनो काम आ गए। यह समाचार सुनकर राजा साहब अत्यंत दुःखित हुए, किंतु समय देखकर शेष कुटुंब और संपत्ति के बचाने के प्रयत्नों में शुक्लजी के साथ तत्पर रहे। पचास-पचास सौ-सौ के झुंडों में मुसलमानों ने कई बार फाटक पर आक्रमण किए, किंतु रंदानों के मार्ग से बंदूकों की गोलियों की वर्षा से प्रति बार बीस-बीस पचीस-पचीस व्यक्ति गँवाकर उन्हें भागना पड़ा। स्वयं राजा साहब, भारतभूषण तथा विजयभूषण ने भी अपने-अपने हाथ से गोलियाँ चलाईं। राजा साहब को राजकुमार के वध से बड़ा ही क्रोध था, और वह निकलकर खड्ग-प्रयोग द्वारा भी युद्ध करना चाहते थे, किंतु शुक्लजी ने ऐसे आततायी काम से हर बार उन्हें रोक दिया। एक-दो बार आक्रमणकारी पीछे के मार्ग से दस-दस, बीस-बीस की संख्या में महल में घुस भी पड़े; किंतु हर बार आधे से अधिक साथी खो-खोकर उन्हें भागना पड़ा। इस प्रकार के आक्रमणों से इन लोगों को भी चिंता हुई कि कहीं हजार-दो हजार की संख्या में लोग न आ पड़ें, और प्रचंड संकट का सामना हो जाय। इतने ही में एक विश्वासपात्र मुसलमान के हाथ अरिंदम चटर्जी का एक गुप्त पत्र शुक्लजी को मिला, जिसका प्रयोजन यह था कि बहुमूल्य वस्तुएँ और धनादि बैंकों में रख दिए जायँ, तथा साधारण सामग्री

वहीं छोड़कर पाकिस्तान के बाहर जाने का प्रयत्न हो। उनका कहना था कि सेठजी के कुटुंब के साथ दो-ही-चार दिनों में वह लाहौर पहुँचनेवाले थे, वरन् वहाँ के लिये चल ही चुके थे, अथच सारा बहुमूल्य सामान बैंकों में रख चुके थे। शुक्लजी तथा राजा साहब को इस समाचार से बहुत कुछ आश्वासन मिला। अनंतर दो-ही-चार दिनों में प्रायः ५०० शरणार्थियों के साथ सेठजी सकुटुंब तथा संरक्षक समुदाय लाहौर पहुँचकर राजा साहब और शुक्लजी को मिले। यहाँ से भी बहुतेरे शरणार्थी पहले ही से जत्था बनाकर चलने को प्रस्तुत थे, सो कुल मिलाकर प्रायः १५०० लोगों का झुंड लाहौर से अमृतसर की ओर चला। मार्ग में पाँच-पाँच सै. हज़ार-हज़ार मुसलमानों के झुंड छीन-झपट के लोभ से यदा-कदा इन पर आक्रमण भी करते जाते थे। युद्ध होते चलते थे, जिनमें हताहतों की संख्या तो थोड़ी रहती थी, किंतु ढोर-डंगर तथा इतर सामान इन लोगों का लुटता जाता था। जन-विनाश प्रायः दोनो ही ओर होता था। भोज्य पदार्थों की इन शरणार्थियों के पास बहुत कमी थी, अतः कई लोग क्षुधार्त हो-होकर भी मर तक जाते थे। दिल्ली से सरकार द्वारा, वायुयानों से, सवा-सवा सै, डेढ़-डेढ़ सै मनों की केवल चपातियाँ इन लोगों के पास प्रतिदिन आती थीं। लवण भी जिसके पास न था, उसे अलभ्य रहता था। दाल, तरकारी, सालन आदि का तो नाम न था। केवल पाव-पाव, सवा-सवा पाव की एक-एक चपाती मिलती थी। शरणार्थी लोग श्रेणीबद्ध खड़े हो जाते थे, और बाँटनेवाले उन्हें बिना मूल्य एक-एक चपाती देते जाते थे। महती क्षुधा की दशा में लवण-हीन केवल चपाती भी अमृत का स्वाद देती थी। कभी-कभी चपाती खाते-खाते आक्रमण हो जाते और युद्ध होने लगते थे। लोग यही विचारा करते कि अब भारतीय भूमि की सीमा इतने मील रह गई है। एक दिन शुक्लजी स्नान करके पलट रहे थे कि तीन मुसलमानों ने मार्ग में इन पर आक्रमण कर दिया। खड्ग इनके हाथ में भी था, और पैतरे बदल-बदलकर युद्ध होने लगा। फिर भी एक व्यक्ति तीन खड्गधारियों का सामना कहाँ तक करता? इनके ऊपर प्राण-संकट उपस्थित हो गया कि इतने ही में मथुरादत्तजी पांडेय किसी ओर से वहीं आ पड़े। अब इन दोनो ने मिल-कर तलवारों से उन तीनों दुष्टों का वध कर डाला तथा शुक्लजी और मथुरादत्तजी से प्रेम-पूर्वक गले मिले। दोनो मित्रों में प्रेम-पूर्ण वार्तालाप होने लगा। मथुरादत्तजी ने अपना सारा समाचार इनसे बतलाया। दश वर्षों के जेल से छूटने तथा आतंकवादियों से पृथक् होकर साम्यवादियों

में फिर से मिलने की सारी कथा उन्होंने बतलाई। वार्तालाप यों होने लगा—

भारतभूषण—"मित्रवर! मैं आपसे क्षमा का भी प्रार्थी हूँ। आतंकवादी होने की दशा में जब लौकियों में दो पिस्तौल आप लिए जाते थे, तब इंस्पेक्टर चटर्जी को मैंने ही तार द्वारा सूचना दे दी थी। आपके या भवदीय मित्रों के द्वारा पिस्तौल के प्रयोग से जो नर-वध की आशंका थी, उसके प्रतिकूल लोक-रक्षावाले अपने उत्तर-दायित्व से मित्रभाव के होते हुए भी मैं विमुख न हो सका।"

मथुरादत्त—"आपका कोई विशेष अनौचित्य न था। मेरे उस अपराध का दंड भी थोड़ा ही था। दश वर्ष का दंड तो इतर अपराधों के कारण मुझे मिला। उसके लिये आपका कोई उत्तरदायित्व न था।"

भारतभूषण—"इस मानसिक महत्ता के लिये मैं आपको शतशः धन्यवाद देता हूँ। उसी के साथ यह पूछूँगा कि अब भी आप साम्यवादी क्यों बने हुए हैं?"

मथुरादत्त—"मैं संपत्ति पर सभी का समान स्वत्व माननेवालों में हूँ।"

भारतभूषण—"आतंकवाद तो आप छोड़ ही चुके हैं। मैं समझता हूँ कि इस मानसिक परिवर्तन के साथ आप लूट-पाट को भी किसी भी रूप में योग्य न समझते होंगे?"

मथुरादत्तजी—"ऐसा तो है ही, मित्रवर! अब मैं लूट को पर्णतया त्याज्य मानता हूँ।"

भारतभूषण—"ऐसी दशा में आपको साम्यवाद को भी तिलांजलि देनी पड़ेगी, क्योंकि उसमें भी तो लूट अनिवार्य है।"

मथुरादत्त—"कैसे?"

भारतभूषण—"संसार में सभी लोगों में योग्यता, शक्ति आदि में समानता तो हो नहीं सकती। ऐसी दशा में अपने प्रकांड पौरुष द्वारा उपार्जित धन यदि कोई स्वेच्छा-पूर्वक छोड़ना न चाहे, तो बिना लूटे आप उससे उसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं? राजनियमों द्वारा ऐसा करना भी तो राज्य द्वारा लूट ही हुई।"

मथुरादत्त—"व्यक्तिगत लूट तो असमर्थनीया है, किंतु राजनियमों की किसी भी अयोग्यता को कोई लूट कैसे कह सकता है। राजनियम तो अवश्य मानने पड़ते हैं। ऐसी दशा में लूट का प्रश्न ही नहीं आता, क्योंकि प्रत्येक राजनियम के प्रतिकूल कोई-न-कोई व्यक्ति होता ही है, और वही उसे लूट कह सकता है। बहुतेरे नियमों द्वारा वास्तव में इतरों को अनुचित हानि पहुँचती है, किंतु उन्हें लूट नहीं कहते।"

भारतभूषण—"मेरी समझ में साम्यवादियों के प्रयत्न लूटपाट-गर्भित अवश्य हैं और उनके स्थापन का प्रयत्न महागर्हित है। फिर भी इतना तो मानना पड़ेगा ही कि केवल रूस के कारण बितानिया से भी राजभक्ति की शिक्षा अनुचित है। यदि सिद्धांत के रूप में राजभक्ति मानी जाय, तो बात और है, किंतु अपने देश को छोड़कर रूस को पितृभूमि मानना नितांत भ्रष्टवाद है।"

मथुरादत्त—"इतना तो मैं भी अब मानता हूँ।"

भारतभूषण—"फिर मुसलमानों की सारी माँगें मानकर समझौता करने का उपदेश कैसा है? आजकल वे पश्चिमी पंजाब में हमें मारकर धन लूट रहे हैं, आपके साम्यवादानुसार क्या यह माँग भी स्वीकार्य है?"

मथुरादत्त—"ऐसा कौन मूर्ख से भी मूर्ख हिंदू कह सकता है? ये त्रिधारात्मक सिद्धांत युद्ध के समय रूस से प्रेम तथा इतर निर्मूल कारणों से स्वीकार्य हो गए थे। अब इन्हें कौन मानता है?"

भारतभूषण—"तो अब आप लोगों का मुख्य सिद्धांत क्या है?"

मथुरादत्त—"हम लोग अब तो ऐसा समझते हैं कि जनता के प्रत्येक झूठे-से-झूठे भी राज्य के प्रतिकूल आरोप का समर्थन करके संपत्तिवादी लोकतंत्र के प्रतिकूल समाज की राजभक्ति शिथिल की जाय, अथच उपदेशों तथा बल-प्रयोग द्वारा भी विश्रृंखलता बढ़ाई जाय। जब लोकतंत्र हमारे सिद्धांतों के प्रतिकूल न चल सकेगा, तब इन सिद्धांतों का मान बढ़ेगा ही।"

भारतभूषण—"बल-प्रयोग द्वारा जब आप काम करना चाहते हैं, तब महात्माजी का शांति-मूलक अहिंसात्मक सिद्धांत तो टूटता ही है।"

मथुरादत्त—"उसके माननेवाले हम लोग हैं ही कब? कहीं माँगने-मात्र से राज्य मिलते हैं?"

भारतभूषण—"साढ़े सात सै वर्षों के पीछे जो स्वराज्य दैव-वश प्राप्त हो गया है, उसे शिथिल या बल-हीन करना क्या देश-भक्ति मानी जायगी?"

मथुरादत्त—"यदि उचित सिद्धांतों पर हठ न किया जाय, तो हम लोग भी तो शोषक वर्ग के सहायक माने जायँगे।"

भारतभूषण—"शोषित और शोषक वर्गों का कथन ही देश में अतथ्य सिद्धांतों का प्रचार करना है। जो लोग अपनी योग्यता से देश की उत्पादिका शक्ति बढ़ाकर अधिक सामान बनाते हैं, उनसे सबका कल्याण या सुख-साधन क्या नहीं होता? फिर उन्हें शोषक मानना कहाँ का न्याय है?"

मथुरादत्त—"इस विषय पर मैं कभी फिर से तर्क-पूर्ण कथन करूँगा। आज हमलोगों को अपने साथी शरणार्थियों की रक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए।"

भारतभूषण—"है तो यह कथन समय को देखते हुए नितांत यथार्थ।"

अनंतर ये दोनो मित्र अपने गोल में जाकर राजा साहब तथा सेठजी से भी मिले। जब मथुरादत्तजी को अपने प्राचीन मित्र अरिंदम चटर्जी के दर्शन हुए, तब ये दोनो बहुत ही प्रसन्न हुए, और गले लगकर मिले। अरिंदमने अपने रूप-परिवर्तन का पूरा हाल इन्हें बतला दिया, और गुप्त भाव से पता छिपाए रखने का भी अनुरोध कर दिया। मथुरादत्तजी ने अरिंदम द्वारा एक संपत्तिवादी की सहायता का हाल जानकर बड़ा आश्चर्य किया, किंतु उन्होंने अपने मत-परिवर्तन का पूरा हाल बतलाकर वर्तमान विचारों को ही श्रेष्ठ कहा। मार्ग में युद्ध होते ही रहते थे, जिनमें अरिंदम की योग्यता से सारे गोल को बड़ी सहायता मिलती थी। इनकी व्यक्तिगत वीरता से भी लोग इन्हें धन्यवाद देते नहीं थकते थे। अपने ही हाथ से इन्होंने पचास से कम शत्रुओं को न मारा होगा। राजा साहब, शुक्लजी तथा विजयभूषण ने अच्छी बहादुरी दिखलाई तथा मथुरादत्ताजी ने भी। इतना सब होते हुए भी पुलीस और सेना की प्रच्छन्न सहायता से मार्ग में जो धावे इन शरणार्थियों पर होते थे, उनसे संपदा बहुत कुछ लुटती रही। जिस समय जिला अमृतसर की सीमा देखकर यह गोल बहुत प्रसन्न हो रहा था, तभी पाकिस्तानी राजप्रबंधकों ने इनका सारा धन, पहने हुए वस्त्राभूषणों से इतर वस्त्र-भूषण, ढोर-डंगर तथा सारा और सामान इनसे ले लिया। बेचारे रो-रोकर सारे हतशेष शरणार्थी भारतीय सीमा में घुसकर मृत्यु-संशय तथा आक्रमणों के भय से मुक्त हुए। इसी प्रकार सैकड़ों-हजारों इतर शरणार्थी भी मरते-खपते, लुटते-पिटते बड़ी ही दैन्य-पूर्ण दशा में भारतीय सीमा के अंदर पहुँचे। कुल मिलाकर प्रायः पचास लाख शरणार्थी वायव्य सीमा प्रांत, पश्चिमी पंजाब, सिंध और रियासत बहावलपुर से भारत आए। इन सबकी दशा बड़ी ही दीन थी। भारतीय सरकार की संख्या के अनुसार ६६ सहस्र से अधिक हिंदू और सिक्ख पश्चिमी पंजाब और वायव्य सीमा प्रांत में मारे गए, तथा सहस्रों तरुणियाँ लूट ली गईं। कहा जाता है कि प्रायः पचास हजार हिंदू और सिक्ख रियासत बहावलपुर में इसी प्रकार मारे गए?

मुसलमानों का यह भी विचार था कि दिल्ली में राजविद्रोहात्मक उपद्रव उठाकर, १०-११ सितंबर ४६ को, भयंकर मार-काट प्रारंभ हो, तथा केंद्रीय सरकार के

सारे ऊँचे हिंदू राजसेवी बंदी करके दिल्ली में पाकिस्तानी राज्य स्थापित कर लिया जाय। इसी उद्देश्य से भारतीय मुसलमानों के पास गुप्त भावेन जो शस्त्रास्त्र एकत्र किए गए थे, उनके द्वारा पाकिस्तान की भी सहायता से भारतीय हिंदू-राज्य नष्ट कर दिया जाय। इस भयंकर षड्यंत्र के बहुतेरे प्रमाण मिले, किंतु मामला इस प्रबंधानुसार न चला, और भारतीय लोकतंत्र को इस गुप्त षड्यंत्र का पता लग गया। दिल्ली में कोई एक बड़ा मकान था, जिसमें बहुतेरे शस्त्रास्त्र एकत्र थे। उसके भीतर बैठे हुए मुसलमानों ने कई दिन युद्ध किया; किंतु अंत में भारतीय सेना ने उस पर अधिकार कर लिया, तथा राजविद्रोहियों को सुगमता से पराजित कर दिया। यह सारा खेल भारतीय सेना ने ही, बिना ब्रिटिश अफ़सरों की सहायता के, किया। कुछ मुसलमानों का कहना है कि इसमें चौदह-पंद्रह सहस्र मुसलमान मारे गए, किंतु हिंदुओं का विचार है कि एक दो सहस्र से अधिक न मरे होंगे। जब पश्चिमी पंजाब में मार-काट प्रारंभ हुई, और दिल्ली में भी रण-तांडव मचा, तब पूर्वी पंजाब, पंजाबी रियासतों, जयपुर, अलवर, भरतपुर, ग्वालियर तथा पश्चिमी युक्त प्रांत के हिंदुओं को क्रोध आ गया, और इन प्रदेशों में मुसलमानों की भी हत्याएँ आधिक्य से हुईं। पाकिस्तान का कहना है कि यहाँ जितने मुसलमान मारे गए, उनकी संख्या तीन-चार लाख से कम न होगी। भारतीय सरकार ऐसी भीषण हत्याएँ अनहोनी मानती है।

समय पर कलकत्ते में मुसलमानों ने एक बार फिर मार-काट प्रारंभ की, और कुछ हत्याएँ भी हुईं। हिंदुओं ने इस बार इसका प्रचंड बदला लेना आरंभ किया, किंतु इस अवसर पर महात्माजी वहीं उपस्थित थे, और उन्होंने इसे रोकने को उपवास आरंभ कर दिया। हत्याकांड तो उनके प्रभाव तथा पुलीस के प्रयत्नों से रुक गया, किंतु कुछ आततायी हिंदुओं को महात्माजी की इस कृति पर इतना प्रचंड क्रोध आया कि उनके मकान पर बम ही चला दिया गया। अनंतर कुछ दिनों में दिल्ली में फिर से मार-काट आरंभ हुई, किंतु महात्माजी वहीं थे, सो उन्होंने फिर उपवास आरंभ किया। उनके प्रभाव से मार-काट फिर बंद हो गई, किंतु कई हिंदू उनके इस मुस्लिम-रक्षण से ऐसे अप्रसन्न हुए कि उनके मकान के सामने जा-जाकर उपवास के समय उन्होंने यह शोर मचाया कि व्रत तोड़वाने के प्रयत्न अनुचित थे, तथा उन्हें उपवास द्वारा मरने दिया जाय। फिर भी ऐसे आततायियों की बात किसी ने न सुनी, और उचित नियमों की स्वीकृति के पीछे उपवास भंग हुआ। महात्माजी ने यह भी कहा—"ऐसी

बातें फिर भी होने से उन्हें पुनः उपवास करना पड़ेगा।" महात्माजी एक तो शांतिवादी थे ही, दूसरे दंगों से शरणार्थियों के प्रबंध में वह गड़बड़ का भय समझते थे, तथा भारतीय मुस्लिम-प्रजा पर उन्हें अत्याचार का भय था।

पश्चिमी पंजाब में जब हमारे महामंत्री नेहरू महोदय भागनेवालों की दशा देखने को गए, तब कहते हैं वह बहुत ही दुखी हुए। लोगों ने यहाँ तक कहा—"जब आपने बँटवारे का समझौता इन हत्यारों से किया था, तब हम लोगों की भावी दशा पर क्यों न विचार कर लिया था ?" कहते हैं, यह दशा देख तथा ऐसी बातें सुनकर नेहरूजी के नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गए। पंजाबी शरणार्थियों की दशा सुनकर सिंध के भी हिंदू भागे, किंतु वहाँ विशेष मार-काट नहीं हुई। प्रायः चौदह लाख हिंदुओं में से अब वहाँ केवल ढाई लाख के निकट रह गए हैं, और वे भी अब निकाले जा रहे हैं। इधर पूर्वी पंजाब, पंजाबी रियासतों, भरतपुर, अलवर आदि से जो मुसलमान जनता पश्चिमी पंजाब, सिंध आदि को भाग गई, उसकी संख्या प्रायः ६५ लाख कही जाती है। कहते हैं, पाकिस्तान में हिंदुओं की प्रायः १४ अरब की संपत्ति रह गई, तथा भागे हुए मुसलमानों की भारत में प्रायः दो अरब। उसके विषय में अब तक झगड़ा हो रहा है, जिसका निर्णय नहीं हुआ है, क्योंकि पाकिस्तान उसे टालना चाहता है। पूर्वी पाकिस्तान से भी प्रायः १६॥ लाख हिंदू पश्चिमी बंगाल में भाग आए हैं। इन शरणार्थियों की सहायता करने में भी भारतीय सरकार का करोड़ों का व्यय हो रहा है। कुछ मुसलमानों का कहना है कि प्रायः पाँच लाख मुसलमान बिहार और पश्चिमी बंगाल से पूर्वी बंगाल गए हैं। ये सारी संख्याएँ बहुत करके अंदाजी तथा अनिश्चित हैं। सरकारी गणना से पाया गया है कि भारत में पश्चिमी पाकिस्तानवाले शरणार्थी ५० लाख से कम नहीं हैं, तथा पूर्वी पाकिस्तान के १६॥ लाख।

कहते हैं कि टोरी पार्टी के दबाव से ब्रिटिश सरकार ने भारत और पाकिस्तान को स्वतंत्रता देने के समय सारी देशी रियासतों को भी स्वतंत्र कर दिया था, किंतु भारतीय सरकार तथा बड़े लाट माउंटबेटन महोदय के प्रयत्नों से बहावलपुर, सिंध तथा बलूचिस्तान की रियासतें तो पाकिस्तान से संबद्ध हो गईं, और शेष सारी भारतीय रियासतें भारत से मिल गईं, केवल जूनागढ़, कश्मीर और हैदराबाद का प्रश्न रह गया। जूनागढ़ के विषय में पाकिस्तान ने झगड़ा तो उठाया, और वहाँ के नवाब साहब पाकिस्तानी राजधानी कराची को चले भी गए, किंतु मुसलमान शासक के होते हुए भी थी वह प्रायः डेढ़ करोड़

बार्षिक की रियासत हिंदू-प्रांत काठियावाड़ (सौराष्ट्र) के ही मध्य में, और भारतीय प्रजा ने उस पर अधिकार करके उसे सौराष्ट्र प्रांत के अंतर्गत सरकार द्वारा करा दिया, तथा राजविद्रोह के कारण नवाब साहब को कुछ गुजारा भी न मिला। उधर कश्मीर पर, ऐसा समझा जाता है, पाकिस्तान ने क़बीलों को लूट का लालच देकर लगा दिया। उन्हें किसी को लूटना था ही, और पाकिस्तान उन्हें धन देना न चाहता था, सो उनके द्वारा उसने कश्मीर पर आक्रमण करा दिया। पहले तो पाकिस्तान अपने को इस युद्ध से तटस्थ कहता रहा; किंतु अब खुला-खुला एक प्रतिपक्षी हो ही गया है। इस आक्रमण से बचने की शक्ति के अभाव में कश्मीर भारत से मिल गया, और ऑक्टोबर १९४७ से भारत वहाँ युद्ध में प्रवृत्त हो गया। प्रायः सवा साल युद्ध होता रहा, तथा पहली जनवरी, १९४९ को युद्ध शांत होकर संयुक्त राष्ट्रसंघ की सहायता से संधि के प्रयत्न हो रहे हैं। उधर हैदराबाद भी अन्य रियासतों के समान भारत से न मिला, यद्यपि है वह सब ओर से भारत से ही घिरा हुआ। उसने करोड़ों रुपए पाकिस्तान को गुप्तरीत्या देने चाहे, और कई करोड़ दिए भी। अंत में विवश होकर पाँच ही दिनों के संग्राम में पुलीसी कार्यवाही द्वारा भारत ने उसे जीत लिया, तथा वहाँ के शासक निजाम ने आत्मसमर्पण कर दिया। अब वहाँ की प्रजा के इच्छानुसार सरकार वहाँ का प्रबंध करना चाहती है।

स्वतंत्र होकर भारत प्रजातंत्र राज्य बन रहा है, तथापि उसने अपने को ब्रिटिश कामन वेल्थ का मेंबर भी बना लिया है। अपना राजकीय मित्रभाव तो बिर्तानिया और अमरीका से अच्छा चल रहा है, तथा कनाडा, आस्ट्रेलिया, आयर्लैंड और फ्रांस आदि से भी है। एशियाई सारे राज्यों से भी अपना अच्छा मेल है, विशेषतया इंडोनेशिया से। उधर पाकिस्तान ईरान, ईजिप्ट तथा अरबी शक्ति से मुसलमानियत के आधार पर विशेष मेल बढ़ाना चाहता है। भारत चाहता तो रूस से भी अच्छा संबंध है, किंतु भारतीय साम्यवादियों से अपना मेल नहीं चल रहा है, जिससे रूसी व्यवहार भी अच्छा नहीं माना जा सकता। अमरीका और बिर्तानिया से अपना बहुत अच्छा मेल दिखता है, यद्यपि अपने यहाँ के समाजवादी तथा साम्यवादी इसके प्रतिकूल हैं। पहले तो कांग्रेस ही समाजवादी समझी जाती थी, किंतु जब इसे राज्य सँभालना पड़ा, तब ज्ञात हुआ कि खेतिहरों, मिलवाले मजदूरों आदि का उचित से अधिक मान करने से देश की उपज घटकर सारा साम्राज्य ही चौपट हो सकता

है, इसीलिये सब ओर देख-भालकर अब इन्हें काम करना पड़ता है। अतएव समाजवादी कांग्रेस से पृथक् हो गए हैं। उधर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा हिंदू महासभा की इच्छा है कि भारतीय राज्य में हिंदुओं के अनुसार खुली-खुली शासन-प्रणाली चले, जैसी कि पाकिस्तान में आज भी मुसलमानों के अनुसार चल रही है। कांग्रेस का ऐसा विचार है कि राज्य शुद्ध प्रजातंत्रात्मक हो, धार्मिक नहीं। सारे भारत की जन-संख्या सन् १९४१ के अनुसार ४० करोड़ थी, जिनमें प्रायः दस करोड़ मुस्लिम थे। अब पाकिस्तान की जन-संख्या प्रायः ७॥ करोड़ है, तथा शेष भारत की ३२॥ करोड़। समझा जाता है कि १९५१ तक यह संख्या बढ़कर ४० से ४४ या ४५ करोड़ हो जायगी। अभी पाकिस्तान में प्रायः ६ करोड़ मुसलमान समझे जाते हैं तथा डेढ़ करोड़ हिंदू। इधर भारत में प्रायः ४ करोड़ मुसलमान रह गए हैं तथा शेष हिंदू। इन संख्याओं के अंदर कुछ पारसी, ईसाई आदि भी हैं, पर वे नगण्य हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ में पाकिस्तान भारत के प्रतिकूल कई बार मुस्लिम-हत्या तथा हैदराबादी और जूनागढ़ीय भारतीय अधिकारों के संबंध में कहा-सुनी कर चुका है, किंतु अब तक उसका कोई फलाफल नहीं हुआ है। हमारे महामंत्री महोदय कई बार बिर्तानिया तथा अन्य देशों में प्रेम-पूर्ण व्यवहार स्थापनार्थ पधार चुके हैं, तथा अमरीका भी हो आए हैं। अपने राजप्रतिनिधि सभी बड़े-बड़े देशों में नियत हो चुके हैं और कारबार ठीक चल रहा है। गत महायुद्ध के कारण सारे संसार में बहुतेरे कष्ट उपस्थित हैं। अपने यहाँ धान्य की कमी आजकल बड़ी दुःखदा है। उसी के कारण अपना व्यापार भी संसार से अच्छा नहीं चल रहा है। आशा है, दो-चार वर्षों में यह कष्ट भी दूर हो जायगा। थीं अपने यहाँ देशी रियासत सैकड़ों, किंतु उनमें से बहुतेरी भारतीय प्रांतों में सुख से मिल गई हैं तथा शेष के सात-आठ जत्थे बन गए हैं। आशा है, उनके लोकतंत्र भी अपने ही प्रांतों के समान चलेंगे। थोड़े ही वर्षों में सारी असमताएँ दूर हो जायँगी, ऐसी आशा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघवाले पहले उद्दंडता के कारण दबा दिए गए, किंतु पीछे से मेल होकर उनके नेता जेल-मुक्त कर दिए गए हैं। आशा है, यह हिंदू-भक्त शुभ संस्था अब उचित नियमों के अनुसार चलाई जायगी, जैसा कि उसने सरकार से शायद स्वीकार भी कर लिया है। हिंदू-सभा कभी सभा के रूप में अनियमित कार्य तो नहीं करती थी, किंतु है वह आजकल कांग्रेस के प्रतिकूल, और उसने अखंड भारत, का प्रश्न उठा दिया है। लिबरल फ़ेडरेशन बहुत दिनों से सबल नहीं है। समाजवादियों का कांग्रेस से विशेष भेद नहीं है। केवल वे संपत्तिवादियों या संपत्तिवानों के अधिकारों का मान कम करना चाहते हैं।

कांग्रेस से पृथक् हो जाने से बातें उसके प्रतिकूल बहुतायत से करते हैं। साम्यवादी कलकत्ते में उपद्रव मचाए हुए हैं। कलकत्ते तथा बंबई के दो-तीन चुनावों में कांग्रेस की हार भी हो गई है, जिससे इस संस्था में सुधार के प्रयत्न बहुतायत से चल रहे हैं।

सप्तम परिच्छेद

देश में विविध विचार

जब भारत और पाकिस्तान में मार-काट के झमेले मचे हुए थे, तब बेचारे शांतिप्रिय महात्माजी को बड़ा ही कष्ट हो रहा था। कुछ दिनों से वे नित्यप्रति प्रायः पाँच बजे तीसरे पहर से पहले तो सभा जोड़कर रामधुन करते-कराते थे, तथा पीछे उपदेश भी दिया करते थे। उनके शांति-संबंधी विचार प्रायः मानुषीय न होकर दैवी सीमा तक पहुँचते थे। नोवाखाली में जो गड़बड़ हुआ था, उसके संबंध में बहुत दिन वहीं रहकर अर्दित लोगों को प्रोत्साहित करते तथा सांत्वना देते रहते थे। इसी प्रकार वह अन्य स्थानों में किया करते थे। जनवरी, १९४८ में वे बिरला-भवन, दिल्ली में विराज रहे थे। आपने कई बार हिंदुओं को समझाया कि मुसलमानों के सद्गुणों का अनुसरण करना चाहिए, न कि उनके दुर्गुणों का। प्रयोजन उनका यह था कि यदि मुसलमान तुम्हें मारें, तो भी बदले में उनका वध न करके तुम्हें क्षमाशीलता न छोड़नी चाहिए। ऐसे उच्च उपदेश साधारण हिंदुओं को विष-से बुरे लगते थे। वे समझते थे कि मुसलमान उन्हें यही समझकर मार रहे थे कि क्षमाशीलता के जातीय सद्गुण के कारण हिंदुओं को तो बदले में मार-काट करनी नहीं है, सो पाकिस्तान में जितने मारे जा सकें, उन्हें समाप्त क्यों न कर दिया जाय। इलाहाबाद में भी बहुतेरे हिंदू इसी आशा में मारे गए थे, यद्यपि वहाँ मुस्लिम संख्या बहुत थोड़ी थी। अतएव साधारण हिंदू महात्माजी के उपयुक्त उच्च दैवी उपदेश से लाभ उठाने में असमर्थ रहे। राजकीय विषयों में पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपए भारत से मिलने थे। उचित यह था कि भारत को उनसे जो कई करोड़ मिलने थे, उन्हें मुजरा लेकर शेष धन दिया जाता। फिर भी महात्मा गांधी ने मेल बढ़ाने की आशा में इतना महाधन भारत से पाकिस्तान को तुरंत दिलवा दिया, जिससे उन्हें कश्मीर में अपने प्रतिकूल शस्त्रास्त्र मोल लेने में भी सुगमता हुई। महात्माजी ने भारत का जैसा भला कर रक्खा था, उसके देखते हुए उनकी दस-पाँच भूलें भी क्षम्य थीं। इधर जो कार्यवाहियाँ उन्होंने की थीं, वे उच्चाशय-पूर्ण होने के अतिरिक्त हिंदू-मुसलमानों में मेल बढ़ाने

के कारण यदि बहुत योग्य न थीं, तो विशेषतया अयोग्य भी न थीं। फिर भी वे कई हिंदुओं को असह्य लगीं, और उन्होंने पत्रादि द्वारा महात्माजी को समझाया कि वे राजनीतिक व्यक्ति न होकर ऋषि हो रहे हैं, अतएव राजनीति में न पड़कर उन्हें हिमाचल में तपस्या करने लगना चाहिए। उन्होंने उत्तर दिया कि भगवान् को उनसे जब तक काम लेना अभीष्ट है, तब तक वे उससे विमुख नहीं हो सकते। इन बातों से कुछ धैर्य-हीन व्यक्ति अत्यंत रुष्ट हुए, और २० जनवरी, १६४८ को उनकी सभा में बाहर से एक बम फेंका गया, किंतु कोई विशेष क्षति न हो सकी। तब ३० जनवरी, १६४८ को उनके सामने आकर एक मनुष्य ने पिस्तौल से उन पर तीन-चार गोलियाँ दाग दीं, और बेचारे शांतिप्रिय अहिंसा-वादी महात्मा का प्राण-पखेरू उड़ गया। सारे भारत में हाहाकार मच गया, और जैसा शोक देश में छाया, वैसा मनुष्यों की स्मृति में कभी न हुआ था। हिंदू तो दुखित हुए ही, अपितु मुसलमानों ने भी वैसा ही दुःख मनाया।

इधर भारतभूषण, राजा साहब, सेठजी आदि लखनऊ आ चुके थे, तथा सेठजी सवर्ग कानपुर भी चले गए थे। शुक्लजी इन दिनों जब अपने मित्र नवाब साहब से मिलते थे, तब वह हिंदुओं तथा मुसलमानों के मरने पर इतना शोक मनाते थे कि कभी-कभी इनका जी ऊब जाता था। महात्माजी के स्वर्गवास पर नवाब साहब को और भी कठिन क्लेश हुआ। कहते थे, बेचारे पैग़बरों के समान थे। सदैव दलितों का साथ देते रहे। क्लेश-पीड़ितों का दुःख उन से कभी देखा न जाता था।

शुक्लजी ने जब एक बार कहा—"इन दिनों बहुत आवेश-पूर्ण परमोच्च उपदेश देने में महात्माजी अति भी कर गए, क्योंकि उन्हें सोचना चाहिए था कि जिसके भाई, बेटे आदि मारे जा चुके हैं, वह ऐसे उपदेश सुन नहीं सकता।"

इस पर नवाब साहब ने कहा—"ऐसा कहना अयोग्य है, क्योंकि महात्माजी कभी कोई भूल नहीं कर सकते थे।"

महात्माजी की अर्थी बड़ी धूमधाम से निकली, तथा मरणोत्तर-संस्कार सम्राटों के समान हुए। बाहर के सारे योरपीय, अमेरिका आदि देशों से भी शोक प्रकट होने के उचित पत्रादि आए। भारतीय राजनीतिज्ञों ने उनके पीछे अपने को बहुत कुछ उपदेष्टा-हीन समझा। तो भी सब काम-काज साधारणतया चलते ही रहे।

इधर राजा साहब जब तक शरणार्थी के रूप में सवर्ग भारत पहुँचने के प्रयत्न में थे और सबके कुशल पर पहला ध्यान था, तब तक वह पुत्र-शोक न्यूना-

धिक भूले-से रहे। लखनऊ पहुँचते ही शून्य सदन देख-देखकर पुत्र के कारण उन्हें महाशोक ने घेरा। लोग यथासाध्य समझाते भी थे, किंतु उनको समझ में कुछ न आता था। एक दिन शुक्लजी ने भी उनसे वार्तालाप किया।

शुक्लजी—"प्रियवर राजा साहब! यह आप क्या कर रहे हैं? अपने को कुछ तो सँभालिए। लाखों आदमी पंजाब में गत हो गए। अपनी तो जन-संबंधी विशेष क्षति नहीं हुई, हाँ सबसे प्यारा रत्न अवश्य खो गया, किंतु क्या कुँवर अभिमन्यु के पीछे पांडवों ने सारा राज-पाट छोड़ दिया था? एक दिन भी तो युद्ध न रुका था।"

राजा साहब—"प्रियवर शुक्लजी! क्या मैं यह सब समझता नहीं हूँ? किंतु क्या करूँ? सूना घर देखा नहीं जाता। दीवारें और कक्ष तक मानो काटे खाते हैं। हाय! बेचारे ने कभी मेरी बात न टाली। कभी किसी अनुचित मार्ग पर न गया। उसके पीछे मैं ही अकेला जीकर क्या करूँगा?"

शुक्लजी—"यही तो आप बुद्धिमान् होकर भी अंधेर मचाते हैं। क्या कन्या और पुत्र में कोई अंतर होता है? जैसी कन्या, वैसा ही पुत्र। फिर विजय क्या आपका बेटा नहीं है? आपके धैर्य छोड़ने से बेचारी रानी भी विकल हो रही हैं।"

राजा साहब—"क्या करूँ, शुक्लजी महाराज! चित्त नहीं मानता। कोई युक्ति बतलाइए, तो वही करूँ।"

शुक्लजी—"जो आर्थिक हानि लाहौर में हुई, सो तो हो ही चुकी। यथासाध्य उसका प्रबंध मैं यहाँ से किए ही रहूँगा। तब तक आप रानी साहबा तथा चंद्र-कुमारी को लेकर श्रीजगन्नाथजी के दर्शन कर न आइए?"

राजा साहब—"आप भी क्या मंत्र दे रहे हैं मित्रवर! उधर पाकिस्तान का भाग स्थापित हुआ है। आजकल उधर जाने का तो साहस नहीं होता कहिए तो चिरंजीव विजयभूषण को भी साथ ले उज्जैन जाकर महाकालेश्वर के दर्शन कर आऊँ? उधर तो कोई गड़बड़ नहीं है?"

शुक्लजी—"गड़बड़ तो पुरी में भी नहीं है, किंतु जैसी इच्छा हो, वही कीजिए। विजय अपना पठन समाप्त कर ही चुका है। आजकल निश्चिंत भी है। जहाँ चाहिए, लेते जाइए।"

राजा साहब—"जैसी आज्ञा।"

इस प्रकार सम्मति स्थिर करके राजा साहब सवर्ग तीर्थ-यात्रा को चल

दिए। भारतभूषणजी की आज्ञा से विजयभूषण भी उन्हीं के साथ पधारे। इधर अकेले रह जाने से शुक्लजी की बैठक नवाब साहब से कुछ बढ़ गई। एक दिन उनमें भारतीय राजनीतिक प्रश्नों पर वार्तालाप होने लगा—

नवाब साहब—"शुक्लजी! भला, मैं पूछता हूँ कि आप साहबान ने दो ही सालों के अंदर देशी रियासतों को क्यों खत्म कर दिया? उन बेचारों ने क्या बिगाड़ा था?"

भारतभूषण—"जनाब नवाब साहब! आजकल भारत में स्वतंत्रता होने से रियासतों में बसने वाले लोग अपने को दास-वर्ग में समझने लगे थे, जिससे छुटकारा पाने को वे स्वयं ही भारत में मिलने को उत्सुक हो गए थे।"

नवाब साहब—"क्या हम लोगों के साथ में उनको कोई तकलीफ़ थी?"

भारतभूषण—"सो बात न थी, नवाब साहब! मैंने स्वयं बुंदेलखंड में मुक़दमों के संबंध में देखा है कि भारतीय तथा रियासती दो-चार ग्रामों की सीमाएँ मिली हुई हैं, तथा आबादी में सौ गज़ों का भी अंतर नहीं है, किंतु बीस-पचीस वर्षों के भीतर न कोई यहाँ से वहाँ गया, न वहाँ से यहाँ आया। दशा तथा नियमों में इतना भारी परिवर्तन केवल सौ गज़ चलने से हो सकता था, तथापि किसी को दशा-परिवर्तन की परवा न थी।"

नवाब साहब—"इसी से तो पूछता हूँ कि अब लोगों को क्यों नाराज़ी हो गई?"

भारतभूषण—"बात यह है कि छोटी रियासतों में रईस लोग जितना राज्य-प्रबंध में व्यय करते थे, उससे अधिक अपने ऊपर। फिर कृपापात्रों पर इतरों के जो मामले होते थे, उनके निर्णयों में भी न्यूनाधिक गड़बड़ हो जाता था। सबसे अधिक मुख्यता यह थी कि छोटी रियासतों में प्रजा की दशा कूप-मंडूकवत् होती थी, अपनी रियासत में भी बड़े राजपद उन्हें न मिलकर बाहरवालों को मिलते थे, तथा बाहर उनको कोई पूछता न था। ऐसी दशा में वे अपनी दशा बाहरवालों से निकृष्ट पाते थे, और स्वभावशः उनके समान हो जाने के उत्सुक थे। जितना व्यय रईसों पर निजू होता था, वह भी अपव्यय समझा जाता था।"

नवाब साहब—"छोटी रियासतों का हाल तो आपने अच्छा बतलाया, अब बड़ियों का भी बयान कीजिए।"

भारतभूषण—"बड़ी रियासतों में प्रबंध तो भारतीय प्रांतों से ही मिलता-जुलता था, तथापि उच्च कक्षा के राजसेवियों में राजकुटुंब से संबद्ध लोगों की प्रधानता

रहती थी। इस असमानता और भेदभाव के व्यवहार से वहाँ की प्रजा भी अप्रसन्न थी। नरेशों को स्थापित रखने में रियासतों की जनता उत्सुक न थी। जहाँ हिंदू जनता का प्राधान्य होकर शासक मुसलमान थे, वहाँ राजसेवकों में मुसलमानों का ही प्राधान्य रहता था। यही दशा उन स्थानों में होती थी, जहाँ मुसलमानी जनता के आधिक्य में हिंदू शासकों का प्राधान्य होता। ब्रिटिश पोलिटिकल एजेंटों आदि का बहुत प्रभाव होने तथा उनके विशेषतया मुस्लिम समर्थक होने से भी हिंदुओं की हानि थी। एजेंटों के दबाव से भी जनता अप्रसन्न थी, और रईस तो बहुत ही खेदित रहते थे। इन्हीं सब कारणों से रईसी मामलों के स्थिरीकरण का भी कोई उत्सुक न था।"

नवाब साहब—"पहले ज़माने में तो महाराणा प्रतापसिंह के लिये रिआया जान देती थी।"

भारतभूषण—"उस काल हिंदू-राज्य के छूटने और मुस्लिम राज्य आने की बात थी, जो जनता को पसंद न थी। अकबर के समय में जहाँ-जहाँ हिंदू जनता के आधिक्य में मुसलमान शासक थे, वहाँ-वहाँ महाराजा मानसिंह ने चुटकी बजाते अकबरी राज्य स्थापित कर दिया, और किसी ने उसके खिलाफ़ परवा न की। मुग़ल साम्राज्य के प्रतिकूल धार्मिक भाव के कारण ही राजस्थान और बुंदेलखंड ने सफल सामना किया। हिंदू प्रजाधिक्यवाला कोई मुस्लिम शासक कुछ कर न सका। बीजापुर और गोलकुंडा को औरंगज़ेब ने हँसते हुए स्ववश कर लिया, किंतु महाराष्ट्रों को जीतकर भी वह अधिकार में न ला सका। नव राज्य स्थापन में प्रजा की उदासीनता तथा प्रतिकूलता से विपरीत फल होना स्वाभाविक है। आज भी हैदराबाद तथा जूनागढ़ बड़ी सुगमता से सरकार ने स्ववश कर लिए; किंतु कश्मीर का झमेला अब भी चल रहा है। वहाँ की बहुतेरी मुस्लिम जनता जो देश-प्रेम दिखला रही है, उसका बहुत कुछ कारण पाकिस्तान के अनुचित आक्रमण से कबीलों आदि के द्वारा उनकी लूटपाट और अपहरण आदि से उत्पन्न पाकिस्तान के प्रति घृणा का भाव है।"

नवाब साहब—"मैं तो समझता हूँ कि कश्मीर में आप लोग जो धींग-धौकड़ी कर रहे हैं, वह बिल-आख़िर चलेगी नहीं।"

भारतभूषण—"उसे धींग-धौकड़ी आप क्यों समझते हैं? जनमत की बात तो स्वीकृति है ही।"

नवाब साहब—"जब प्लेबिसाइट ली जायगी, तब पता चलेगा। मुझे क्या,

मैं तो हिंदोस्तान का ही हूँ, और अपनी ही फ़तेह चाहता हूँ; लेकिन उसकी उम्मीद कम है।"

भारतभूषण—"जितनी भूमि वहाँ अब तक पाकिस्तान या आज़ाद कश्मीर के अधिकार में है, वह शायद आप लोगों को मिल जाय, किंतु जो भाग भारत जीत चुका है, वह तो अब छूटता नहीं दिखता।"

नवाब साहब—"देख तो यही पड़ता है। पहले यू० यन० ओ० में आपका प्रभाव कम था। तब भी हारे आप नहीं। अब तो अमरीका और बिर्तानिया के मेल से शायद वहाँ भी पाकिस्तान आपका सामना न कर पाए। मुस्लिम कत्ल, जूनागढ़ और हैदराबाद के निस्बत जफ़रुल्ला साहब रोए-गाए तो बहुतेरा, लेकिन कोई नतीजा न निकला।"

भारतभूषण—"फल क्या निकलता ? वहाँ भी बहुत करके अधिकार के अनुसार निर्णय चलते हैं।"

नवाब साहब—"सो तो हई है। अकेला अमरीका इसराईल के हक़ में खड़ा हो गया, तो बिर्तानिया की कुछ-कुछ अंदरूनी मदद पाकर भी अरबों का कुछ किया-धरा न हुआ।"

भारतभूषण—"यह तो बड़ा ही आश्चर्य हुआ। इसराईल की जन-संख्या केवल छ लाख है। फिर भी उसने सारी अरबी रियासतों का प्रभाव नत कर दिया।"

नवाब साहब—"उसे तो अमरीका और रूस दोनो की मेहरबानी हासिल थी।"

भारतभूषण—"जब से भारत ने इंडोनेशिया के समर्थन में एशियाई शक्तियों की सभा एकत्र की, तभी से अंतरराष्ट्रीय राजमंडल में भी इसका प्रभाव बढ़ा है।"

नवाब साहब—"पहले तो वह काररवाई शुबहा-आमेज़ समझ पड़ती थी, लेकिन चल ख़ूब गई।"

भारतभूषण—"चली तो ऐसी जैसी स्वप्न में भी आशा न थी। आस्ट्रेलिया और फ़िलिपाइंस ने भी पूरी सहायता की। केवल टर्की ने भाग नहीं लिया; किंतु पीछे से वह भी पछताता-सा था। समझ ऐसा पड़ता है कि यदि भविष्य में कोई ऐसी सभा बुलाई जाय, तो टर्की भी उससे पीछे न हटेगा।"

नवाब साहब—"भला आस्ट्रेलिया आपकी तरफ़ इतना क्यों झुकने लगा है ?"

भारतषण—"देश तो वह बड़ा भारी है, किंतु जन-संख्या अभी कुछ भी

नहीं है। वहाँ वाले केवल गोरों को वहाँ बसने देना चाहते हैं, किंतु उनकी संख्या संसार में इतनी नहीं है कि वहाँ पर्याप्त रूप से बस सकें। करोड़ों की संख्या में जनता की वहाँ आवश्यकता है, जो सौ-दोसै वर्षों तक अप्राप्य रहेगी, ऐसा प्रकट ही है। उधर स्वतंत्रता तथा पालिसी (राजेच्छा) चलाने में उसे केवल अमरीका और बितानिया की सहायता की आशा सदा से थी और है। अमरीका स्वयं नवीन देश है, जिसमें जन-वृद्धि आवश्यक है। बितानिया में जन-बाहुल्य न्यूनाधिक है अवश्य, किंतु उसकी पूरी जनसंख्या पाँच करोड़ से भी कम है। रूस भारी देश है, पर एक तो वह आस्ट्रेलिया को जनता दे नहीं सकता, दूसरे उसी से बचने को तो आस्ट्रेलिया को शक्ति-संगठन की आवश्यकता है। रूस कट्टर साम्यवादी है तथा आस्ट्रेलिया संपत्तिवादी।"

नवाब साहब—"अमरीका खुद भारी मुल्क होने से पहले तो वह बाहरवालों के जंगो-जदल में पड़ना नहीं चाहता था, अब मजबूरन् उसे योरप के झगड़ों में हिस्सा लेना व नीज़ ऐटलांटिक पैक्ट में शामिल होना पड़ा है। उसके ऐसा न करने से ग़रबी योरप पर कभी भी रूस क़ब्ज़ा कर सकता था या कम-अज़-कम इस बात का खौफ़ था। जबसे ग़रबी योरप की ताक़तों ने मिलकर अमरीका के साथ ऐटलांटिक पैक्ट किया है, तब से रूस का उधरवाला खटका कुछ कम हो गया है।"

भारतभूषण—"इन्हीं बातों से तो अमरीका अब ठेठ पूरब में भी अपना धन-जन आधिक्य से व्यय करना नहीं चाहता। इधर रूसी प्रभाव से दक्षिणी-पूर्वी एशिया, आस्ट्रेलिया, फ़िलिपाईंस और जापान की रक्षा अब बिना अमरीकन सहायता के कठिन दिखती है।"

नवाब साहब—"इस वक़्त तो अमरीका जापान पर क़ाबिज़ है, मगर यह क़ब्ज़ा वह बहुत दिनों तक क़ायम रखना नहीं चाहता। ऐसा करने से उसका ख़र्चा और फ़ौजी ज़िम्मेदारी बहुत बढ़ती हैं। लेकिन जापान को बग़ैर काफ़ी तौर से मज़बूत किए हुए उसके छोड़ने से उस पर रूस के क़ाबिज़ हो जाने का भी खौफ़ है।"

भारतभूषण—"यही तो प्रशांत महासागर (पैसफ़िक ओशन) संबंधी महान् प्रश्न है। यदि जापान फिर से पूर्णतया सबल किया जाय, तो वह जर्मनी की भाँति अमरीका आदि से ही बदला लेने की न सोचेगा, इसी का क्या निश्चय है?"

फिर जापान में जन-संख्या आज भी बहुत अधिक है और उसकी भविष्य-वाली वृद्धि भारत के समान बहुत अधिक तथा चिंताजनक है। आज भी अपनी जनता बाहर भेजे बिना उसका काम चलना कठिन है। एशियाई देशों में स्वयं जनता का आधिक्य है। अतएव केवल आस्ट्रेलिया रह जाता है, जहाँ वह अपनी बढ़ी हुई जनता भेज सकता है। किंतु आस्ट्रेलिया यह चाहता नहीं।"

नवाब साहब—"तब इस सख्त सवाल का निबटारा क्या होगा, पंडितजी ?"

भारतभूषण—"इसी की तो कोई युक्ति अब तक समझ में नहीं आ रही है। अभी तो आस्ट्रेलिया अपने पड़ोसी भारत, पाकिस्तान, बर्मा, लंका आदि से मेल बढ़ाकर इसका निबटारा चाहता है। है फ़िलिपाइंस द्वीप समूह भी इसी प्रश्न में संबद्ध, किंतु आस्ट्रेलियावाली गोरी जनता की पालिसी से उसका विरोध है।"

नवाब साहब—"फिर उधर ग़रबी योरप में रूस के फैलाव को ठेस ज़रूर लगी, लेकिन चीन में जो कम्यूनिस्टों की क़ूवत बढ़ी है, उससे ख़ास एशिया में ही उन लोगों की ताक़त क़वी पड़ रही है।"

भारतभूषण—"इन्हीं बातों के लिये तो अमरीका और बितानिया एशियाई देशों को प्रसन्न रखकर साम्यवाद की शक्ति इस महाद्वीप में सीमित रखना चाहते हैं। दक्षिणी-पूर्वी एशिया की शक्तियाँ यदि भारतीय नेतृत्व में आ जायँ और भारत साम्यवाद के प्रतिकूल पूर्ण प्रयत्न करे, तो दशा आशाप्रद हो सकती है, किंतु स्वयं भारत की शक्ति अभी समुचित प्रकारेण बढ़ी नहीं है।"

नवाब साहब—"इसीलिये तो उम्मीद की जाती है कि ये दोनो मुमालिक हिंदुस्तान की ताक़त के बढ़ाने में मदद करेंगे। फिर भी ख़ौफ़ इतना है कि आपका पाकिस्तान से जो इख़्तिलाफ़ है, उसकी वजह से ये मुमालिक दोनो को ख़ुश रखने के ख़याल से शायद कुछ पीछे भी हटें।"

भारतभूषण—"ऐसा भी संभव है, यद्यपि पाकिस्तान का प्रेम जो रूस से भी बढ़ रहा है, उससे उसका व्यवहार इन देशों से घट भी सकता है, विशेषतया इसलिये कि वहाँ की मुस्लिम लीग आजकल बितानिया के प्रतिकूल-सी दिख रही है। हमारे भारत के लिये आजकल सब से बड़ा राजनीतिक प्रश्न कश्मीर का है, उसके पीछे आंतरिक प्रश्न अनाज की उपज-वृद्धि तथा कांग्रेसी लोक-स्वीकृति की वृद्धि के हैं।"

नवाब साहब—"आज सियासी मसलों पर इतनी बातें हुईं कि हम लोग अपने मामले भूल ही-से गए हैं।"

भारतभूषण—"भूल क्यों गए, नवाब साहब ! कहिए क्या जानने की इच्छा है ?"

नवाब साहब—"लाहौर से आप लोग अपने ख़ानदान तो कमोबेश बचा लाए, लेकिन जायदाद की क्या हालत है ? उसके बचने की उम्मीद है या नहीं ?"

भारतभूषण—"जितनी बहुमूल्य सामग्री वस्त्राभूषण आदि की थी, वह तो बैंक में बकसों में जमा कर ही दी गई है। नक़दी पहले ही से जमा थी। जो बहुमूल्य वस्त्राभूषण थोड़े-से साथ थे, वे सीमा के निकट पाकिस्तान ने ले ही लिए हैं, किंतु उनके फिर से प्राप्त हो जाने की आशा है। राजा साहब की ससुराल का प्रासाद तो मैं अब गया-बीता समझता हूँ। हाँ, ज़मींदारी जो कुछ है, वह मिलेगी तो नहीं, किंतु दोनो सरकारों में दोनो ओर की भूमिका जो निर्णय होगा, वही इसका भी हो रहेगा। वहाँ से चलने के पूर्व उसके विषय में जो अदालती झगड़े थे, वे सब रानी साहबा के अनुकूल निर्णीत हो ही चुके थे। उन निर्णयों की प्रतिलिपियाँ भी पास प्रस्तुत हैं। उस भूमि से प्रायः एक लक्ष वार्षिक आय आती थी, जो अब झमेले में है।"

नवाब साहब—"बेचारे राजा साहब का बेटा तो अब रहा नहीं, सिर्फ़ एक लड़की है। उसकी शादी अपने कुँवर के साथ क्यों नहीं कर लेते ?"

भारतभूषण—"नवाब साहब ! वे ठाकुर हैं और मैं ब्राह्मण; भला ऐसी शादी कैसे संभव है ? यहाँ भी उनके राज्य की वार्षिक आय प्रायः डेढ़ लाख है।"

नवाब साहब—"आप भी, पंडितजी ! क्या उलटी बातें करते हैं ? आप ही उस दिन फ़र्मा रहे थे कि हाल ही में ऐसा क़ानून बन गया है कि हिंदुओं में अब किन्हीं दो जातों के दर्मियान शादी जायज़ है, और क़ौमियत बाप के मुताबिक़ चलेगी, न कि मा के। फिर अब कौन-सा क़ानूनी झगड़ा इस मामले में हायल हो गया ?"

भारतभूषण—"नियमानुसार तो कोई टंटा शेष नहीं है, किंतु बिरादरी अभी इसके अनुकूल नहीं है। यद्यपि मेरे बहुत निकट के कोई सपिंड नहीं हैं तो भी मामा-फूफा आदि द्वारा संबद्ध स्वजन हैं ही। उनका आना-जाना भी रहता है। दूर के भाईचारेवाले भी आने-जाने लगे हैं। उन सबका साथ छोड़ना पड़ेगा।"

नवाब साहब—"यह मामला झगड़ों का थोड़े ही दिन चलेगा। जब आप हम लोगों के साथ खाना खाने लगे थे, तब भी तो कुछ झमेला उठा था।"

भारतभूषण—"वह तो थोड़ी ही बात थी। जब से लड़के पढ़-लिखकर विलायत से पलटने लगे, तभी से यह मामला धीरे-धीरे चलने लगा। मैंने भी अपने बेटे को विलायत भेजकर बैरिस्टरी पास कराई थी। इसी सिलसिले में आप लोगों से भी खाने-पीने का बर्ताव खुल गया। किंतु ब्राह्मणेतर वर्णों के साथ विवाह का प्रश्न कुछ कठिन है।"

नवाब साहब—"यह भी चल जायगा, पंडितजी! सिर्फ़ चंद रोज़ तकलीफ़ होगी। कहा भी गया है—

रहिमन बिपदा हू भली, जो थोरे दिन होय;
हित-अनहित या जगत में, जानि परै सब कोय।

इतना बड़ा तअ़ल्लुक़ा पाइएगा। थोड़ी-सी तकलीफ़ गवारा कर लेना। क्या मुज़ायक़ा है?"

भारतभूषण—"अभी तो यह प्रश्न उठा ही नहीं है। अभी से क्या विचार किया जाय? यदि कभी उठेगा, तो बिना आपकी सम्मति लिए प्रतिकूल निर्णय न दूँगा। राजा साहब प्रचुर भूमि रखने के अतिरिक्त अपने प्रबंध-कौशल से कई लाख रुपए बचा भी चुके हैं। मेरे अभिन्न मित्र हैं ही। ऐसे की संपत्ति पर ऐसा स्वार्थ-पूर्ण विचार करना भद्रता के भी विरुद्ध है।"

नवाब साहब—"मैं, दोस्तमन! क्या कुछ कहता हूँ? मैंने तो क़ानूने-हाल के निस्बत एक चलतू रायज़नी कर दी है। दोस्त की दौलत के बाबत आपको तमा का सबक़ थोड़े ही सिखलाता हूँ।"

भारतभूषण—"आपकी स्वाभाविक महत्ता से ऐसा भय भी नहीं था। यदि आज्ञा हो, तो अब चलूँ। देर से बात हो रही है। ऑफ़िस में कुछ काम भी है।"

नवाब साहब—"काम तो आपको हमेशा रहता ही है। यह तो आपकी मेहरबानी है कि हफ़्तेवार आमद से मुझे सरफ़राज़ी बख़्शी जाती है।"

भारतभूषण—"बड़ी ही कृपा हुई। अच्छा नमस्कार।"

नवाब साहब—"एक बात तो सुनते जाइए।"

भारतभूषण—"कहिए, क्या आज्ञा है?"

नवाब साहब—"मैंने कल एक अजीबो गरीब ख्वाब देखा।"

भारतभूषण—"क्या देखा, नवाब साहब ?"

नवाब साहब—"मैंने देखा कि आप एक मुसलमान लड़के को तलवार से काट डालने को तैयार थे, लेकिन मैं बीच में खड़ा होकर कहने लगा कि चाहे मुझे मारो, लेकिन इसे बख्श दो। आप कई बार मुझे बचा-बचाकर उस पर तलवार चलाने को हुए मगर कामयाबी न हुई। तब मुझ पर झल्लाए तो बहुत, मगर तलवार म्यान में रख ली। इसी दर्मियान मैंने उसे भगा दिया।"

भारतभूषण—"आपने भी क्या ही अजीब सपना देखा! भला मैं कभी न लड़नेवाले एक लड़के पर तलवार चला सकता था।"

नवाब साहब—"यह तो था ही, मगर खूबी यह कि झल्लाकर भी आपने ख्वाब तक में मुझ पर तलवार न चलाई।"

भारतभूषण—"ऐसा हो कैसे सकता था? अच्छा नमस्कार।"

इस प्रकार वार्तालाप करके शुक्लजी मोटरारोही होकर अपने घर पहुँचे। एक दिन साम्यवाद के संबंध में उनकी पांडेय मथुरादत्तजी से इस प्रकार बातचीत होने लगी:—

भारतभूषण—"कहिए पांडेयजी! यदि समय हो, तो आज उस दिन के स्थगित साम्यवाद पर विचार-विनिमय किया जाय। क्या इच्छा है?"

मथुरादत्त—"इस विषय पर मेरा-आप का मतैक्य सुगम नहीं। फिर भी यदि इच्छा हो, तो तर्क-गर्भित वार्तालाप में मैं कोई दोष नहीं देखता।"

भारतभूषण—"आजकल भारत एक स्वतंत्र देश है, और उस पर जो शासक वर्ग आरूढ़ है, वह हमारे ही प्रतिनिधियों के बहुमत से। तब उसी के प्रतिकूल द्रोहात्मिका कार्यवाही क्या अपने ही पैरों कुल्हाड़ा मारने के समान नहीं है?"

मथुरादत्त—"तब स्वयं महात्माजी ब्रिटिश लोकतंत्र से द्रोह क्यों करते थे?"

भारतभूषण—"वह कौन अपना राज्य था। वह लोकतंत्र तो बिर्तानिया द्वारा स्थापित था। उसका विरोध करना सारे सच्चे भारतीयों का धर्म था। वह समय तो अब है नहीं। अब तो स्वतंत्रता मिल चुकी है। ऐसी दशा में अब अपने ही राज्य से द्रोह का क्या विषय रह गया है?"

मथुरादत्त—"स्वतंत्रता पूर्ण कहाँ मिली है? अभी तो भारत में संपत्तिवाद का बल है और उसी का लोकतंत्र चल रहा है। स्वयं कांग्रेस पहले बहुत कुछ समाजवादिनी होकर अब संपत्तिवाद की ओर झुक गई है।"

भारतभूषण—"विना धान्य-वस्त्रादि की उपज-बाहुल्य के देश चल ही कैसे सकता है? यदि समाज का उपजाऊ भाग अर्दित कर दिया जाय, तो उपज घटेगी कि नहीं? यह स्पष्ट है कि पाकिस्तान के सामने भारत की महत्ता मुख्यतया इसी में है कि यहाँ प्रायः १५० उपजाऊ मिलें हैं और पाकिस्तान में पचास भी नहीं। यदि इन्हें ध्वस्त कर दिया जाय, तो पाकिस्तान के सामने भारत नत होगा या नहीं? क्योंकि अनाज की उपज वहाँ नहरों आदि के कारण आवश्यकता से अधिक है, और यहाँ अनाज बाहर से मँगाना पड़ता है। दस-पाँच वर्षों में जब तक आवश्यकता से अधिक अनाज नहीं उपजता, जैसी कि दृढ़ आशा है, तब तक पाकिस्तान के सामने अपनी महत्ता मिलों आदि की उपज में ही तो है। क्या उस महत्ता को आवेश में आकर गिराना किसी विचारवान् देश-भक्त के लिये उचित है?"

मथुरादत्त—"पाकिस्तान में अभी महत्ता ही क्या है? अभी तो वहाँ नेता बननेवालों के ही जोड़-तोड़ लग रहे हैं। थोड़े ही दिनों में उनके भीतरी झगड़ों से देश यदि गिर न जाय, तो आश्चर्य होगा।"

भारतभूषण—"नेताओं के जोड़-तोड़ जिस प्रकार वहाँ को संशययुक्त बनाते हैं, वैसे ही आपके यहाँ भी संपत्ति, समाज तथा साम्यवादों के टंटे कुछ कम उपद्रव उपस्थित किए हुए नहीं हैं। फ्रांस-सा सबल देश क्या केवल साम्यवाद के झगड़ों के कारण ही जर्मनी के एक ही झपेटे में नहीं आया? मुख्य बात यह है कि यहाँ जब अपना ही राज्य स्थापित है, तब टंटा किस बात का? यदि लोकतंत्र-परिचालन में कोई त्रुटि हो, तो विना आतंकवाद अथवा हिंसा का प्रयोग किए हुए जनता का मत-परिवर्तन करने के लिये शांति-पूर्ण प्रयत्न क्यों न किए जायँ?"

मथुरादत्त—"जनता तो संपत्तिवानों के वश में है।"

भारतभूषण—"हैं तो धनवानों से निर्धन लाखों गुने संख्या में; जब प्रत्येक पुरुष का वोट (मत) बराबर माना जाता है, तब हिंसाकांड से तो यही सिद्ध होगा कि साम्यवादी जनता को समझाने के स्थान पर उसके लोकतंत्र को बल-पूर्वक पराजित करना चाहते हैं, सो भी सम्मुख समर न करके केवल लुक-छिप-कर धोखे-धंधारी से। क्या यह कार्यवाही हिंसा-पूर्ण तथा पूर्णतया निंद्य नहीं है?

भारतीय गरम साम्यवादी आतंकवादियों से बहुत कुछ संबद्ध-से समझ पड़ते हैं। यह न्यायपूर्ण अहिंसात्मिका कार्यवाही न होकर खुला-खुला विद्रोह है। पुलीस की गोली चलने से त्राहि-त्राहि का रोर मचाया करते हैं, किंतु स्वयं नित्य पुलीस आदि पर बम चलाया करते हैं। यदि लोकतंत्र भी इन्हें विद्रोही अभियुक्त समझे, तो क्या अनुचित है ?"

मथुरादत्त—"मैंने तो पहले ही कहा था कि मेरा-आपका मत नहीं मिल सकता। आप बड़े वकील हैं, और तर्क में मैं आपका सामना नहीं कर सकता। आप जानते ही हैं कि विद्यार्थी जीवन में मुझसे एक भारी अपराध बेचारी मनोरमा के संबंध में हो गया। पहले मैं समाचार-पत्रों में काम करना चाहता था, किंतु पीछे कांग्रेसी असहयोग में पड़कर मेरा उद्धत स्वभाव बढ़ गया। साम्यवाद और आतंकवाद में रहने से मैं अब नितांत साधारण प्रकृतिवाला नहीं हो सकता। तर्क में साम्यवाद का समर्थन नहीं हो सकता, किंतु मेरे लिये आतंकवाद के कार्यों से पृथक रहना ही भारी बात है। यह मैं भी जानता हूँ कि हिंसात्मक कार्य साम्यवाद के अंग नहीं हैं। जहाँ-जहाँ साम्यवादी लोकतंत्र स्थापित हैं, वहाँ हम लोग नियमानुकूल कार्य करते ही हैं। फिर भी विना औद्धत्य के असाम्यवादी देशों में इसका प्रचार कठिन है। कम-से-कम अब तक साम्यवाद जहाँ-जहाँ स्थापित हुआ है, वहीं न्यूनाधिक बल-पूर्वक ऐसा हुआ है। रूस हमारा भारी देश है। अब चीन भी आ ही गया है। वहाँ साम्यवादी सरकार भी स्थापित हो ही गई है। बर्मा, कोचिन-चीन, मलय तथा इंडोनेशिया में भी इसका न्यूनाधिक प्रवेश है। भारत में भी कलकत्ते में गड़बड़ मचा हुआ है। प्रयत्न हम लोग छोड़नेवाले नहीं हैं। इसका वाम भाग आतंकवादियों के दक्षिण भाग से मिलता-जुलता है। आशा है, थोड़े ही समय में यह एशिया के बृहत्तर भाग में सबल हो जायगा। दस-पंद्रह वर्षों से अधिक भारत साम्यवादी प्रभाव से अलग नहीं रह सकता। हम लोगों का ऐसा विचार है।"

भारतभूषण—"यह तो तर्क न होकर भविष्य भाषण-मात्र है। तर्क आपने छोड़ भी दिया है। मेरा विचार तो ऐसा है कि अनाज की कमी पूरी होते ही भारत सीधा उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो जायगा, और तब साम्यवाद, समाजवाद आदि का कोई नाम भी न लेगा।"

मथुरादत्त—"यह भी एक भविष्य-वाणी है। देखना है, कौन कथन कहाँ तक सत्य निकलता है ?"

भारतभूषण—"आजकल द्वितीय महायुद्ध के पीछे सारे संसार में गड़बड़ मचा हुआ है। भारत स्वतंत्र अवश्य हो गया है, किंतु अभी यहाँ कष्ट की मात्रा विशेष है। यदि ऐसा होनहार न देखते, तो ब्रिटिश लोग इतनी सुगमता-पूर्वक इसे छोड़कर चल भी न देते। जितना कष्ट अब हो रहा है, उतना यदि ब्रिटिश-काल में होता, तो देश में विद्रोहात्मक गड़बड़ मचने लगता जो विना गोली चलाए शांत न होता। ऐसा करने से ब्रिटिशों की संसार में बड़ी अपकीर्ति होती तथा अमरीका से भी वह आर्थिक सहायता न मिलती, जिसके विना उनका इन दिनों काम नहीं चल सकता था।"

मथुरादत्त—"आजकल कष्ट तो भारी हो ही रहा है।"

भारतभूषण—"इतना मानना पड़ेगा कि ८० प्रतिशत ग्राम्य जनता (जानपद) की दशा सुधरी हुई है। जो २० प्रतिशत पौर (नागर) जनता है, उसे कष्ट अवश्य है, किंतु उसका अर्द्ध भाग संपन्न होकर वास्तविक कष्ट में नहीं है। शेष जो दश प्रतिशत मध्य श्रेणी के नागर लोग हैं, वे ही बहुत कष्ट में हैं। उन्हीं के कष्टों से सारे भारत में त्राहि मची हुई है, क्योंकि बकबक मचानेवाली तथा कांग्रेस की सहायिका वही जनता थी, जो अब महँगाई के कारण नीचे गिर रही है। शेष भारत में कोई गड़बड़ नहीं है। जिस दिन से इस दश प्रतिशत का कोई उचित प्रबंध हो जायगा, उसी दिन से भारत का सौभाग्य-सूर्य उदित हो जायगा। जिस दिन कांग्रेस का पूरा ध्यान इस ओर चला जायगा, तभी से कुछ-न-कुछ प्रबंध हो जायगा और भारी नगरों से साम्यवाद का बल भी ध्वस्त होगा। आज भी वह सिवा एकाध भारी नगर के कहीं सबल नहीं है। अब तो समझा जाता है कि मध्य श्रेणीवालों का भी नीचे दर्जे के काम किए विना गुजर न हो सकेगा। देखिए, कैसी गुजरती है?"

मथुरादत्त—"मुझे तो प्रतीत होता है कि साम्यवाद समय के साथ बढ़ेगा अवश्य।"

भारतभूषण—"यह आशा दुराशा-मात्र है। सबसे बड़ी बात यह है कि महात्मा गांधी तथा उनके अनुयायियों का अहिंसात्मक प्रयत्न खुला-खुला था, जो धोखेबाजी से नितांत असंबद्ध था; इधर साम्यवादी प्रकट में तो राजभक्त प्रजा बनते हैं, किंतु छिप-छिपकर शस्त्रास्त्र संग्रह करते तथा लोकतंत्र के प्रबंधों को छिपे-छिपे बिगाड़ते हैं। यह प्रयत्न सत्य से बहुत दूर होकर संसार में बेईमानी की भी वृद्धि करता है। इन युक्तियों से भद्रता लुप्त हो जाने से देश का भी कल्याण नहीं हो सकता।"

मथुरादत्त—"इस तक में भी है बहुत कुछ सार, किंतु ऊँचे तथा युक्तियुक्त प्रयत्न भी मुँह में तुलसी-सोना डालने से नहीं चल सकते।"

भारतभूषण—"आपने तो, पांडेजी ! पहले ही कह दिया था कि इस विषय पर हम लोगों का मत मिल नहीं सकता। जब भद्रत्व के भी प्रतिकूल प्रयत्न आपको उचित ही दिखते हैं तब आगे कहा ही क्या जाय ?"

मथुरादत्त—"भद्रत्व के प्रतिकूल मैं कुछ नहीं कहता, केवल तुलसी-सोना की एक बात कह गया।"

भारतभूषण—"अच्छा, मैं पूछूँगा कि मुस्लिम लीगर अब साम्यवादी क्यों हो गए हैं ? पहले तो खुले-खुले लीगर थे, किंतु पाकिस्तान बनने के पीछे सम्पत्ति पर मत-परिवर्तन की क्या आवश्यकता थी ?"

मथुरादत्त—"मुस्लिम लीग तो भारत में बहुत करके बंद-सी हो गई है। अब असेंबली में जनता पार्टी बनी है, और बाहरवालों को साम्यवादियों में आना पड़ा।"

भारतभूषण—"हमारा अनुभव तो ऐसा है नहीं। लीगरों को जब भारत से केवल द्रोह करना था, तब उन्होंने साम्यवाद का जामा पहना।"

मथुरादत्त—"बात यह है कि मुसलमान चित्त से स्वभावतः साम्यवादी होता है। इसी से ऐसा परिवर्तन सामने आता है।"

भारतभूषण—"यदि मुसलमान चित्त से स्वभावतः साम्यवादी होते, तो इसका बल पाकिस्तान में भी होता। मुझे तो ऐसा दिखता है कि उन्हें भारत से द्रोह अभीष्ट है, और कुछ हिंदुओं को वे मूर्ख बनाए हुए हैं।"

मथुरादत्त—"ऐसे तर्क से आप सारे हिंदू साम्यवादियों के पांडित्य की अवहेलना करते हैं।"

भारतभूषण—"यदि अवहेलना नहीं चाहते, तो उपर्युक्त संशयों का समुचित उत्तर दीजिए न ? अच्छा यह बतलाइए कि साम्यवादी झंडे के साथ आप लोग लीग का झंडा क्यों लगाते थे, हिंदू-सभा का क्यों नहीं लगा था ?"

मथुरादत्त—"वह तो एक धार्मिक चिह्न था। साम्यवाद तो संपत्ति-संबंधी संस्था है।"

भारतभूषण—"धार्मिक चिह्न क्या लीगी झंडा न था ?"

मथुरादत्त—"हमारे यहाँ मुस्लिम आधिक्य से उनकी एक धींगाधींगी भी चल जाती थी।"

भारतभूषण—"इसी से तो कहता हूँ कि इस विद्रोही मुस्लिम संस्था में हिंदुओं का काम नहीं है। स्वयं हैदराबाद में निज़ाम के समय साम्यवाद का बल न था, किंतु जब से वहाँ भारतीय अधिकार हुआ है, तब से साम्यवाद के नाम से मुसलमान हिंदुओं के समेटने को साम्यवादी-रूप में मुस्लिम शक्ति का प्रभाव बढ़ा रहे हैं।"

मथुरादत्त—"कुछ साम्यवाद तो वहाँ पहले भी था।"

भारतभूषण—"किंतु उसकी मात्रा अब कितनी बढ़ी है?"

मथुरादत्त—"ऐसी बातें तो होती ही रहती हैं। अब देर हो रही है। नमस्कार करता हूँ।"

इस प्रकार तर्क-युक्त वाद-विवाद करके दोनो मित्र एक-दूसरे से पृथक होकर अपने-अपने कामों में लगे।

अष्टम परिच्छेद

वैवाहिक संबंध

जब राजा शैलेंद्रकुमारजी सकुटुंब तीर्थ-यात्रा को निकले, तब पहले चित्रकूट में उपस्थित होकर मंदाकिनी नदी के निकट ठहरे। वहाँ कई दिन घूम-घूमकर आपने हनुमान् धारा, अनुसूया देवी के स्थान तथा अन्य दर्शनीय वस्तुओं का अवलोकन किया। वहाँ एक महात्मा रहते थे, जिनके धार्मिक उपदेशों का आपके ऊपर कुछ विशेष प्रभाव पड़ा। कुछ लोग उन महात्मा की अवस्था ढाई सै वर्षों की बतलाते थे; किंतु विजयभूषणजी ने योरोपीय शिक्षा के प्रभाव से इस बात को नितांत अनर्गल माना। स्वयं महात्माजी भी कभी ऐसा कोई कथन न करते थे। लोगों से बात होने पर धार्मिक उपदेश भी असंभवनीय-गर्भित नहीं देते थे। उनके कथन ऐसे होतेथे, जो आचार-शास्त्र के उपदेशों से मिल जाते थे।

वहाँ पहले ईश्वरवाद पर तर्क उठा। महात्माजी ने बतलाया—"पहले महर्षि याज्ञवल्क्य ने बृहदारण्यकोपनिषत् में (प्रायः आठवीं शती ईसा-पूर्व में) 'कार्यवाद' चलाया। प्रयोजन यह था कि जब कोई कार्य विना कारणके घटित हो नहीं सकता, तथा जगत् भी एक महत्कार्य है, तब उसका कर्ता भी कोई-न-कोई होना ही चाहिए, जिसे ईश्वर कह सकते हैं। इसके उत्तर में उसी समय ईश्वर को भी कार्य मानने की शंका उठी और कार्यवाद कट गया तथा महर्षि को मानना पड़ा कि अज्ञेय परमात्मा तर्क से नहीं केवल शास्त्रों से जाना जा सकता है। अनंतर प्रायः चार सै वर्षों के पीछे कठोपनिषत् में फिर यह प्रश्न उठाया गया। प्रसिद्ध ऋषि यमाचार्य (प्रायः ४०० ईसा-पूर्व में) ने इस विषय में तर्क की तो गति न मानी, किंतु यह निगूढ़ विषय सज्जनों के विचारगम्य बतलाकर 'धृत्यायोजनवाद' चलाया। जिसका प्रयोजन यह था कि सांसारिक शक्तियाँ प्राणहीन वस्तुओं में क्यों स्थापित रहती हैं तथा विना किसी धारण करनेवाले के उनका कभी अंत क्यों नहीं हो जाता ? इसी को 'धृतिवाद' कहते हैं जिसका प्रयोजन सांसारिक शक्तियों की स्थिरताके आधार पर चलता है। इसी धारण करनेवाले को परमात्मा मान सकते हैं। श्रीभगवद्गीता में भी कहा गया है कि 'गामाविश्य च भूतानां धारयाम्यहमोजसा।' अर्थात् सारे सांसारिक पदार्थों में घुसकर मैं उनको अपने प्रभाव से धारण करता हूँ। तीसरा

'आयोजनवाद' है, जिसका प्रयोजन यह है कि जब हम संसार में सभी वस्तुओं में कारीगरी तथा नियम-पालन देखते हैं, तब कैसे कह सकते हैं कि इतना बड़ा कारबार बिना किसी कारीगर या नियामक के चल सकता है ? यदि दश सहस्र पुरुष यों ही अंधाधुंध खड़े हों, तो कोई बात नहीं है; किंतु यदि वे नियमपूर्वक सेना बनाकर क़वायद-परेड आदि करते हों, तो उस स्थान पर किसी सेनापति की उपस्थिति के बिना भी हम उसका अस्तित्व मान सकते हैं, नहीं तो वह नियम उन लोगों को सिखलाया किसने ? जब हम जगत् को सेना के रूप में पाते हैं, अनियमित रूप में उच्छृंखल नहीं, तब किसी नियामक का होना हमें मानना ही पड़ेगा।"

महात्माजी ने कहा—"ऐसे अकाट्य तर्कों पर भी बहुतेरों का ईश्वर-संबंधी विचार दृढ़ नहीं होता, किंतु होना चाहिए।"

महात्माजी ने फिर कहना आरंभ किया—"दूसरा कठिन विषय जीवात्मा के अस्तित्व का है जो परमात्मावाले से भी बढ़कर संशयाकीर्ण है। जीवात्मा को कई ऋचाओं में सूर्य के प्रतिबिंब के समान माना गया है, जिसका प्रयोजन यह है कि परमात्मा के समान सूर्य एक ही है, किंतु जैसे सौर प्रतिबिंब बहुतेरे पूर्ण बर्तनों में सूर्य के एक ही होने से भी पृथक्-पृथक् दिखता है, वैसे ही प्रत्येक शरीर में पृथक् होकर भी जीवात्मा, सौर प्रतिबिंब के समान, एक ही परमात्मा से संबद्ध है। इस उत्प्रेक्षा से प्रतिबिंब के समान जीवात्मा का भी वास्तविक अनस्तित्व समझ पड़ने लगता है, यद्यपि ऋचाकार का शायद ऐसा अभिप्राय न था। स्वामी शंकराचार्य अद्वैतवादी होकर जीवात्मा की व्यावहारिक सत्ता-मात्र मानते हैं, पारमार्थिक नहीं। इससे भी उसका वास्तविक अस्तित्व संदिग्ध रहता है। हाँ, द्वैतवादी स्वामी रामानुजाचार्य जीवात्मा-परमात्मा का स्पष्ट सेवक-सेव्य भाव मानकर उसकी वास्तविक सत्ता के पक्ष में हैं। इसी भाँति प्राचीन आचार्य महर्षि याज्ञवल्क्य उसकी वास्तविक सत्ता के दो अकाट्य कारण भी देते हैं, अर्थात् कृतनाश और अकृताभ्यागम। प्रयोजन यह है कि जब संसार में हम यह देखते हैं कि बिना किसी आत्मीय प्रयत्न के बहुतेरे जीवधारी इतरों से बहुत श्रेष्ठ दशा में उत्पन्न होते हैं, जैसे राजा-रंक, बलवान्-निर्बल, रोगहीन-क्षयीरोगपीड़ित, आदि। तब यदि उत्पत्ति के पूर्व उनके कार्य-समुदाय न मानें, तो समर्थ परमात्मा के राज्य में न्याय का अभाव दिखने लगेगा। उधर कोई पूर्णतया समर्थ व्यक्ति न्यायहीन हो नहीं सकता, क्योंकि ऐसे अन्याय से जब उसकी हानि-लाभ नहीं, तब निःकारण वह कोई अनुचित कार्य क्यों करेगा ? इसी से उत्पत्ति के पूर्व कोई सत्ता न मानने से ईश्वरीय राज्य में

अकृताभ्यागम का दोष लगता है। इसी भाँति जब हम संसार में व्यक्तियों को इसी जन्म में अपने घोर-से-घोर भी दुष्कर्मों या सुकर्मों के फल भोगते सदैव नहीं देखते, तब यदि मृत्यु के पीछे भी उन्हें इन कर्मों के फलाफल न मिलें, तो कृतनाश का दोष आरोपित हो जाता है; क्योंकि ऐसी दशा में उनके भले-बुरे कर्मों का नष्ट हो जाना मानना पड़ेगा, जो ईश्वरीय न्याय के प्रतिकूल बैठेगा। इन कारणों के अतिरिक्त बहुतेरे अन्य अनुभव भी बतलाए जाते हैं, जिन्हें विश्वासी लोग तो मान लेते हैं, किंतु अविश्वासी असत्य अथवा आकस्मिक घटनाएँ समझते हैं। स्वप्नों के आधार पर भी हंस के समान इतस्ततः उड़नेवाले जीवात्मा का अस्तित्व कहा गया है। अंतःकरण चतुष्टय भी इसका प्रमाण है।"

राजा साहब—"महात्माजी! आपने परमात्मा तथा जीवात्मा-संबंधी जो प्रमाण दिए हैं, वे बहुत करके अकाट्य समझ पड़ते हैं। मैं एक प्रार्थना आपसे करना चाहता हूँ।"

महात्माजी—"जो इच्छा हो, बराबर पूछिए, राजाजी!"

राजा साहब—"मेरा एक-मात्र पुत्र थोड़े ही दिन हुए, पंजाबी विद्रोह में काम आ गया। आपके तर्कों से इतना तो सिद्ध है कि उसकी आत्मा का अस्तित्व मान्य है। मैं यह जानना चाहता हूँ, क्या किसी प्रकार मुझे अब उसके दर्शन हो सकते हैं?"

महात्माजी—"राजाजी! जो लोग ऐसी इच्छाओं की पूर्ति के वचन देते हैं, वे ढोंग-धतूरे का सहारा लेनेवालों में हैं। आपके सुपुत्र का पुनर्जन्म समय पर संभव है, किंतु कब ऐसा होगा, सो पता नहीं। जब पंच-तत्त्वों में से सबसे सूक्ष्म आकाश तत्त्व का अस्तित्व जानते हुए भी हम पंचेंद्रियों द्वारा उसे अवगत नहीं कर सकते, तथा केवल बुद्धि और अनुमान-शक्ति से जानते हैं, तब उससे भी सूक्ष्मतर जीवात्मा तथा परमात्मा को कैसे पा सकते हैं? शास्त्रों में परमात्मा के संबंध में कथित है कि 'न सन्मुखे तिष्ठति रूपमस्यन चक्षुषा पश्यतिकश्चनेनम्" अर्थात् इसका रूप सामने नहीं ठहरता, न आँख से कोई इसे देख सकता है, तब जीवात्मा को कोई कैसे अवगत करा सकता है? हम लोगों को उसके अस्तित्व-मात्र का ज्ञान है। शेष बातों में न्यूनाधिक अज्ञेयवाद का विचार चलता है।"

राजा साहब—"महात्माजी! आपका कथन तो बहुत ही उचित है, किंतु पुराणादि में ऐसे विवरण आए हैं। इसका क्या आशय है?"

महात्माजी—"राजाजी! ये निम्न श्रेणी के अधीर विश्वासियों के समझाने भर

को कहे गए हैं, सो भी मूलतः सूतों द्वारा। संसार में सभी प्रकार के मानस बल-युक्त मनुष्य हैं, जिनका संतोष शुद्ध तर्क-पूर्ण कथनों से हो ही नहीं सकता, किंतु धर्म से विमुख उन्हें भी तो नहीं किया जा सकता। ऐसे ही लोगों के लिये समय-समय पर, ऐतिहासिक स्थितियों के अनुसार पुराणों में भाँति-भाँति के कथन आ गए हैं। यदि विश्वास के आगे बढ़कर क्रियात्मक रूप से भी उनका तथ्यांश जानना चाहिएगा, तो या तो धोखों का प्रयोग हो जायगा या निराशा मात्र प्राप्त होगी।"

राजा साहब—'धन्यवाद, महात्माजी! आपने साधारण धार्मिक उपदेशकों के समान कथन न करके लोक-स्वीकृति की संभावनाओं को भी नहीं छोड़ा। अब मैं धार्मिक सिद्धांतों के उपदेश आपसे कभी और सुनूँगा। आज मेरी पुत्री चंद्रकुमारी तथा मित्र-पुत्र विजयभूषण, जो यहीं प्रस्तुत हैं, आपसे कुछ पूछना चाहते हैं। विजयभूषणजी विलायत में भी अध्ययन कर चुके हैं, जिससे इनके धार्मिक विचार कुछ स्वतंत्र अनुभव-गर्भित हो गए हैं। मेरी पुत्री का अध्ययन हुआ तो यहीं है, तथापि उसके विचारों में प्राचीन धार्मिक अंध-विश्वासों से कुछ अंतर पड़ ही गया है। आशा है, इन दोनो को समझाने में आप कुछ क्षमा का भी अंग रक्खेंगे।"

महात्माजी—"क्षमा की कोई आवश्यकता नहीं, राजाजी! मैं नव विचारोत्पादन को चाहता भी हूँ। (दोनो नवयुवकों से) हाँ, मित्रो! अब आप अपने प्रश्नों या संशयों के कथन कीजिए।"

विजयभूषण—"बड़ी ही कृपा हुई, महात्माजी! मैंने इँगलैंड में भी अध्ययन किया अवश्य है, किंतु हिंदू-धर्म के निगूढ़ तत्त्वों के जानने की इच्छा सदैव जाग्रत रक्खी है।"

महात्माजी—"यह और भी अच्छा है। तब अपने विचारों का कथन कीजिए।"

विजयभूषण—"मैं यह जानना चाहता हूँ कि कई बातों में अपने धार्मिक विचार समय-समय पर प्रतिकूलता-पोषक-से दिख जाते हैं, इसका क्या कारण है?"

महात्माजी—"यह सब भारतीय परम प्राचीन इतिहास से उत्पन्न हुआ है। पहले यहाँ कोल बसते थे, जिनके धार्मिक विचार गिरि और तरु-पूजन के आगे न बढ़े। अनंतर द्राविड़ों का समय आया, जिन्होंने सिंहवाहिनी देवी, योग तथा शैव पूजन से मिलते हुए विशेषांग पूजनों के भाव निकाले। अनंतर ऋग्वेद ने केवल विशेषांग पूजन की निंदा की, इतर प्रकारों की नहीं। उसमें प्राकृतिक शक्तियों के व्यक्तीकरण के साथ तेंतीस वैदिक देवताओं की विनतियाँ की गईं।

उसी के साथ तृतीय मंडल में, वे केवल परमात्मा की शक्ति से शक्तिमान कहे गए और दशम् मंडल में, आलंकारिक वर्णन में, जगदुत्पत्ति ईश्वर से मानी गई।"

विजयभूषण—"यहाँ तक तो उन्नति ठीक दिखती है।"

महात्माजी—"अनंतर उपनिषदों में निर्गुण ब्रह्म का परमोच्च तर्कावलंबी कथन हुआ किंतु देश में विद्या का प्रचार कम होने से व्यष्टि से प्रायः असंबद्ध केवल समष्टि रूप से संसार का हितकारी दयावान् परमात्मा व्यष्टि की पुकारों से असंबद्ध-सा होने के कारण हृदय-हीन समझा जाकर त्यक्त हो गया। यहाँ तक यह अश्रद्धा बढ़ी कि ईश्वरीय भाव से उदासीनता-मात्र न रहकर लोक की पूर्ण प्रतिकूलता हो गई और जनता ईश्वर का नाम तक सुनने को तैयार न थी। इन कारणों से अपने सांख्य, पूर्व मीमांसा तथा वैशेषिक मूल रूपों में परमात्मा से असंबद्ध-से रहे। यही दशा जैन और बौद्ध-मतों की न्यूनाधिक हुई। उस काल चलता हुआ शैव ईश्वरत्व गिर गया।"

चंद्रकुमारी—"बड़े आश्चर्य का विषय है, महात्माजी! उस काल कोई अच्छे उपदेशक क्यों न खड़े हुए?"

महात्माजी—"बेटीजी! कहते ही हैं 'किं करिष्यति वक्तारो श्रोता यत्र न विद्यते; नंगः क्षपणके देशे रजकः किं करिष्यति। अर्थात् जब कोई सुनने वाला ही प्रस्तुत न हो, तो वक्ता क्या करे, क्योंकि नंगे साधुओं के देश में धोबी का काम कैसे चल सकता है? जब यह अवांछनीय दशा संसार में चली, तब उपदेशकों को विवश होकर लोक-स्वीकृति के योग्य पुकार सुननेवाले सगुण ब्रह्म का उपदेश देना पड़ा। शैव ईश्वरता की लोक द्वारा अस्वीकृति के कारण श्रीभगवद्गीता में सगुणवाद के साथ वैष्णव ईश्वरता तथा अवतारवाद का कथन करना पड़ा। इस अवतारवाद का पूर्व रूप वासुदेव-मत में गीता से सौ पचास वर्ष पहले से भी चलाया जा चुका था।"

विजयभूषण—"गीता में कथित सिद्धांत फिर भी अच्छे हैं, किंतु पुराणों में तो विश्वासवाद सीमा के भी आगे निकल गया है।"

महात्माजी—"बेटाजी! जब एक बार जनता के हठ का मान करके अपने शुद्ध धार्मिक उच्च विचार स्वयं गीता में गिराने पड़े, तब चार्वाक् अर्थात् लोकायत-मत की विजय हो ही गई। वह भी समय के साथ अपनी उद्दंडता बहुत कुछ छोड़कर ईश्वर और वेदों की अनुचित क्या कुछ भी निंदा अब नहीं

करता था। 'त्रयोवेदस्य कर्तारोभंड धूर्त निशाचराः' जैसे कथन करना वह भी छोड़ चुका था। इस काल महर्षि वादरायण व्यास गीताकार तथा महात्मा गौतम बुद्ध-से दो भारी उपदेशकों के परमोच्च उपदेश मूर्ख जनता के सामने आ गए। उधर लोकायत-मत का कोई भारी उपदेशक भी न था, तथापि वह विजयी हो चुका था, और गीता का मत तथा बौद्ध-मत यद्यपि बहुत कुछ माने जाते थे, तो भी जनता की विद्या-हीनता के कारण चलन वैसे ही विचारों का बढ़ता रहा, जैसे कि अपढ़ जनता चाहती थी। इसी से गीता और बौद्ध-मत के मौखिक मान न छोड़ते हुए भी संसार में पौराणिक तथा महायानीय मत चल पड़े, जो इन मूल सिद्धांतों से बहुत कुछ स्थूल थे। महायान और भी मोटिया होता हुआ समय पर मंत्रयान और फिर कामुक वज्रयान हो गया। अनंतर उसका तो लोप आगे चलकर हुआ, किंतु इधर स्वामी शंकराचार्य ने जब पौराणिक मत में भारी मोटियापन देखा तब प्रस्थानत्रय रचकर फिर उच्च मत का प्रचार करना चाहा। उनका भी गीता के समान मौखिक मान तो बहुत हुआ, तथापि यवनों, शकों, हूणों आदि के हिंदू बनने से जो अपना पौराणिक मत नीचे गिर गया था, वह कुछ तो उठा, किंतु सम्यक् प्रकारेण नहीं। तर्कवाद ने कुछ बल पकड़ा अवश्य, किंतु इतने ही में मुस्लिम आक्रमणों तथा राज्यस्थापन से यहाँ खड्ग द्वारा मत-प्रचार के प्रयत्न होने लगे, जिससे समाज-संगठन की विशेष आवश्यकता सामने आई। अतएव भक्तिवाद के सहारे हम लोगों ने एक तो कामुक मत का धर्म से निराकरण किया, दूसरे समाज-संगठन के द्वारा उसे मुसल्मान होने से बचाया।"

विजयभूषण—"तब तो, स्वामीजी ! ऐसा दिखता है कि अपने यहाँ शुद्ध धार्मिक शिक्षा न चली, वरन् राजनीतिक अवनति बचाने को हमने अपने प्राणप्रिय धर्म में भी सामाजिक उन्नतिकारी परिवर्तन समय-समय पर किए।"

महात्माजी—"ऐसा तो हुआ ही, बेटाजी ! हैं हमारे धर्म में उच्चाति उच्चविचार भी, जो इतर धर्मों में क्या, वरन् उनके दर्शनशास्त्र में भी न मिलेंगे, तथापि समाज-संगठनार्थ हमने साधारण विचार भी उसमें बहुतायत से रक्खे हैं, या यों कहें कि अवश होकर हमें रखने पड़े हैं। स्वयं भगवद्गीता की आज्ञा है कि ज्ञानी को यह उचित नहीं कि अज्ञानियों के भद्दे धार्मिक विचारों को बहुत हिला डाले। प्रयोजन यह है कि उन्हें ऊँचे विचार वहीं तक बतलाए जायँ, जहाँ तक समझने की उनमें पात्रता हो, नहीं तो भद्दे धार्मिक विचारों को उच्च शिक्षा के कारण छोड़कर तथा

परमोच्च को हृदयंगम करने की पात्रता ही न रखकर वे वस्तुतः धर्म से ही पूर्णतया विमुख हो जायँगे।"

चंद्रकुमारी—"तब तो, महात्माजी! ऐसा समझ पड़ता है कि सभी को उनकी शिक्षा के योग्य कुछ अच्छे धार्मिक विचार मानने में गड़बड़ न किया जाय, जिससे धर्म का कुछ रूप तो सब में विद्यमान रहे।"

महात्माजी—"यही बात है, बेटीजी! धर्म का कुछ मोटिया रूप भी नितांत धर्माभाव से श्रेष्ठतर होता है। आप-जैसे विद्वानों के लिये भी हमारा धर्म उच्चाति उच्च शिक्षा देता है।"

विजयभूषण—"अच्छा, मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि अपने समाज में नीच-ऊँच की जो प्रणाली चल रही है, वह कहाँ तक समर्थनीय है?"

महात्माजी—"यह भी अपने इतिहास ही से संबद्ध है। विजयी आर्यों ने विजित अनार्यों को विद्या, बल, बुद्धि आदि में अपने से बहुत कम पाया तथा शनैः-शनैः लोक में ऊँच-नीच की प्रणाली स्थापित हो गई, जिसके कारण हमारे पूरे समाज का संगठन बहुत शिथिल रहता आया है। यह भी हमारी पराजयों का एक भारी कारण समय पर उपस्थित किए रहा है।"

चंद्रकुमारी—"तब क्या जाति-भेद का छोड़ना आप योग्य समझते हैं?"

महात्माजी—"यह जाति-भेद हमारी उच्च दशा में न था। धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों हमारा अधःपतन होता गया, त्यों-त्यों यह भी प्रबल पड़ता गया। प्राचीन समय में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों में तो अनुलोम-विवाह बराबर होते ही थे और कभी-कभी शूद्रों तक की कन्याएँ ब्राह्मणों को ब्याही जाती थीं। विलोम-विवाह अवश्य अनुचित माने जाते थे, किंतु यह भी जातीय गर्व की बात मानी जा सकती है।"

विजयभूषण—"आज कल तो अनुलोम-विलोम का भी विचार छोड़कर सभी हिंदुओं में विवाह उचित मान लिए गए हैं, जिसका ऐक्ट (विधान) भी बन गया है।"

महात्माजी—"ऐसा तो हुआ ही है, और मेरी समझ में उचित भी है। फिर भी अभी कुछ दिन बिरादरियों के झगड़ों से यह बात चलन में कम आएगी, यद्यपि है हर प्रकार से उचित।"

चंद्रकुमारी—"यह तो बड़े ही आश्चर्य का विषय है। मैं तो समझती थी, आप-जैसे महात्मा ऐसी बात को निंद्य अवश्य समझेंगे।"

राजासाहब—"मुझे भी बड़ा आश्चर्य हो रहा है, महात्माजी! क्या आप ब्राह्मणों की भी कन्याएँ शूद्रों तथा अछूतों तक में जाना सह्य मानेंगे?"

महात्मा—"जब तक ऊँच-नीच तथा जाति-भेदों के झमेले हमारा समाज न भूलेगा, तब तक हिंदू-समाज का संगठन एवं बल-वर्द्धन असंभव होगा। आजकल आप देख रहे हैं, संसारमें विचार और आचार पहले जैसे शताब्दियों में सुपुष्ट होते थे, वैसे अब दशाब्दियों से भी कम समय में हो रहे हैं। दस-पाँच वर्ष पहले स्वप्न में भी क्या कोई समझता था कि भारत क्या कभी बिना लड़े-भिड़े भी स्वतंत्र हो जायगा, किंतु आज वही बात प्रत्यक्ष हो गई है। अब पृथ्वी का आकार नवीन विमानों आदि के कारण बहुत कुछ सिकुड़ रहा है। सभी बातों में तड़िद्वेग से परिवर्तन हो रहे हैं। यदि हमारा समाज भी पुरानी मूर्खताओं को न छोड़ेगा तथा समय से पग मिलाकर अति शीघ्र आगे न बढ़ेगा, तो जिस वेग से स्वतंत्रता प्राप्त हो गई है, उसी वेग से वह जा भी सकती है।"

राजा साहब—"आप तो, स्वामीजी! आज्ञा कर ही चुके हैं कि अपना धर्म राजनीतिक दशाओं के अनुसार बदलता रहा है। तब सामाजिक व्यवस्थाओंमें भी परिवर्तन अब होने ही चाहिए।"

रानीजी—"क्या कहते हैं, राजाजी! क्या चमारों, भंगियों आदि को भी, उच्च समाज कन्याएँ देने लगेगा?"

विजयभूषण—"जो टोकरा लिए हुए पुरीषालय साफ़ करते फिरते हैं, उन्हें कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय थोड़े कन्या सौंप देगा। जिनकी सामाजिक उन्नति समुचित प्रकारेण हो चुकेगी उन्हें उच्च वंशों की कन्याएँ स्वयं पति-रूप से ग्रहण करने लगेंगी, आप चाहिए या न चाहिए।"

राजा साहब—"यही तो हो ही रहा है। समय को देखना पड़ता है। जब स्वयं महात्माजी का मत विजयभूषणसे मिल गया, तब हम लोग अब कह ही क्या सकते हैं?"

रानीजी—"ब्राह्मण-क्षत्रियों आदि में ऐसे संबंध होने लगें, तो कोई अनौचित्य भी नहीं, किंतु बहुत आगे बढ़ जाना ठीक नहीं दिखता।"

राजा साहब—"इस विषय पर उन्नति एकाएकी सबको कैसे सह्य हो सकती है, विशेषतया वयोवृद्ध स्त्रियों को? फिर भी संसार की गति अब रुकती हुई नहीं दिखती।"

महात्माजी—"यही बात है, राजाजी!"

इस प्रकार दीर्घ काल पर्यंत वार्तालाप होने के पीछे यह धार्मिक समाज भंग हुआ और सब लोग महात्माजी को प्रणाम कर-करके उनके पहले उठ

जाने के पीछे अपने-अपने कामों में लगे। चित्रकूट को छोड़कर अब यह समाज उज्जयिनी में महाकालेश्वर के दर्शनार्थ और क्षिप्रा नदी में स्नानार्थ उपस्थित हुआ। वहाँ महात्मा भर्तृहरि की गुफा तथा अनेकानेक अन्य साधारण मंदिरों के भी दर्शन किए गए। राजा वीर विक्रमादित्य का पाषाण-निर्मित फाटक भी देखने में आया। अनंतर इस समाज ने अजंटा, यलोरा, कार्ली, यलिफैंटा आदि को भी देखा। दो-तीन मास के साथ से विजयभूषण तथा चंद्रकुमारी में संयत प्रकारेण मित्र-भाव बढ़ता गया। शुक्लजी में विद्वत्ता, क्रिकेट, हाकी, पोलो आदि खेलों की योग्यता तथा वीरता की मात्रा बहुत श्रेष्ठ थी। उधर राजकुमारी में सौंदर्य बहुत बढ़ा-चढ़ा था, विद्या-संबंधिनी योग्यता भी अच्छी तथा शील भी उच्च था।

एक स्थान पर ये दोनों मित्र केवल एक नौकर के साथ जंतुशाला देखने गए। वहाँ प्रबंधकों की असावधानी से एक चीता खुले मैदान में लोहे की शृंखला में बँधा था। जहाँ वह जंजीर पृथ्वी में गड़ी हुई थी, वहीं वह बैठा था। शृंखला थी प्रायः दस हाथ लंबी किंतु इन्होंने यह बात न देखी, तथा कुमारीजी उससे दो-तीन हाथ की दूरी पर होकर निकलीं। यह देखते ही उस चीते ने उछलकर इन्हें पकड़ लिया और इनकी चिल्लाहट से शुक्लजी का ध्यान उस ओर गया। कुमारीजी पृथ्वी पर गिर पड़ी थीं। इन्होंने दौड़कर ऊपर से चीते के दोनों हाथ पकड़ लिए तथा सेवक ने भी दौड़कर सहायता की। अब इन दोनो ने उसके एक-एक हाथ तथा एक-एक पैर पकड़कर उसे ऊपर टाँग लिया। इस घबराहट में वह कुमारीजी को विशेष क्षत-पूर्ण न कर सका और शुक्लजी के कथनानुसार युक्ति-पूर्वक उठकर वे चीते से दूर भाग गईं। अनंतर इन दोनो ने चीते को टाँगे हुए शृंखला के अंत पर्यंत ले जाकर उसे जोर से दूर फेंक दिया। इस प्रकार राजकुमारी बच तो गईं, किंतु उनके चीते के पंजे आदि लग ही गए थे, जिससे दो-तीन छोटे-छोटे घाव होकर उनसे कुछ रुधिर भी निकल गया। तुरंत डाक्टर की सहायता से उनका उपचार हुआ। घावों पर मरहम-पट्टी का प्रयोग हुआ तथा जंतु द्वारा सक्षत होने से उनके दवा की सुइयाँ भी लगाई गईं। शुक्लजी तथा सेवक के भी चीते के हल्के नखक्षत लग गए थे, जिससे इन्हें भी दवा की सुइयाँ लगवानी पड़ीं। राजा, रानी तथा राजकुमारी ने शुक्लजी को भूरि-भूरि धन्यवाद दिए और प्रायः दो मास पर्यंत राजकुमारी का औषधोपचार हुआ, जिसके पीछे वे पूर्णतया स्वस्थ हुईं। इस अंतर में शुक्लजी ने भी उनकी बहुत सेवा की। इन उपचारों से

इनमें परस्पर संयत प्रेम की और भी विशेष वृद्धि हुई। एक दिन इन दोनो में निम्नांकित वार्तालाप होने लगा।

चंद्रकुमारी—"शुक्लजी ! इन दिनों आपने एक तो मुझे चीते की पकड़ से बचाया और फिर दो-तीन मास औषधोपचार में सम्यक् परिश्रम उठाया। इसका प्रत्युपकार मैं कहाँ तक कर सकती हूँ ? प्राण-रक्षा का मूल्य हो ही क्या सकता है ?"

विजयभूषण—"राजकुमारीजी ! इसमें मेरा कोई विशेष उपकार हुआ ही क्या, जिसके लिये प्रत्युपकार का विचार किया जाय ? हम दोनो के माता पिता आपस में बड़े ही प्रगाढ़ मित्र हैं, यहाँ तक कि हम दोनो का कुटुंब दो न होकर एक हो रहा है। ऐसी दशा में उपकार का प्रश्न ही कब उठता है ?"

चंद्रकुमारी—"सो तो सत्य है, किंतु अपने प्राणों का जोखिम उठाकर दूसरे के बचाने में महत्ता की मात्रा अगाध-प्राय होती है।"

विजयभूषण—"ऐसे कथन आपको शोभा नहीं देते। अगाध मैत्री में जितना कुछ हो सके, वह थोड़ा ही होता है। ऐसी चर्चा से मुझे लज्जा लगती है। कृपया और कोई बात उठाइए।"

चंद्रकुमारी—"बड़ी ही कृपा हुई। अच्छा, आप कई वर्ष विलायत में रहे, फिर भी हिंदू-धर्म का ज्ञान तथा मान आपके चित्त में पर्याप्त मात्रा में है। इसका क्या कारण है ?"

विजयभूषण—"देवीजी ! मैं वहाँ जाने के पूर्व भी अपने धर्म पर भारी श्रद्धा होने से उसका न्यूनाधिक ज्ञान प्राप्त कर चुका था। यहाँ आकर भी साधु-संग कुछ-न-कुछ करता ही रहा हूँ।"

चंद्रकुमारी—"बहुत ही अच्छी बात है; कुछ मुझे भी बतलाइएगा।"

विजयभूषण—"हिंदू-महिलाओं में यों भी धार्मिक श्रद्धा अगाधप्राय होती है। जो कुछ मुझे ज्ञात होगा और आप जानना चाहेंगी, उसे अवश्य बतलाऊँगा।"

चंद्रकुमारी—"आप क्रिकेट, पोलो, हाकी आदि भी अच्छा खेलते हैं। मैं भी ऐसे खेल कुछ सीखना चाहती हूँ। ये तीनो तो उद्धत खेल हैं, क्या टेनिस भी आप जानते हैं ?"

विजयभूषण—"जानता क्यों नहीं हूँ, किंतु प्रायः खेलता नहीं, क्योंकि उसमें व्यायाम कम होता है ?"

चंद्रकुमारी—"होता क्यों नहीं ? अकेले यदि दो के प्रतिकूल खेलिए, तो ख़ासा परिश्रम हो जाता है।"

विजयभूषण—"हाँ, यह यथार्थ है।"

चंद्रकुमारी—"क्या मुझे भी सिखला दीजिएगा ?"

विजयभूषण—"आप स्वयं क्या कम जानती हैं ? तो भी दो-चार हाथ बतला दूँगा।"

चंद्रकुमारी—"अच्छा, आप पार्थिव-पूजन कैसा समझते हैं ?"

विजयभूषण—"मैं तो धार्मिक कृत्यों में यौगिक क्रियाओं को विशेष पसंद करता हूँ। और, कृत्यों में तो पुण्य की मात्रा है या नहीं, सो संदिग्ध है। मैं तो योग से इतर सारे धार्मिक कृत्यों को एक प्रकार के पाठक्रम समझता हूँ। कोई भी धार्मिक कृत्य करने से मनुष्य यदि अपने आचरण उन्नतर कर सके, तो पुण्य की प्राप्ति है।"

चंद्रकुमारी—"यदि आचरणों पर प्रभाव न पड़े, तो क्या धार्मिक कृतियाँ बेकार होती हैं ?"

विजयभूषण—"मुझे तो ऐसा ही समझ पड़ता है, देवीजी! जाप, देवदर्शन, पूजन, पाठ आदि से लोकोपकार तो कुछ होता नहीं, केवल आत्मोन्नति का प्रश्न है। ऐसी उन्नति आचरण से ही संबद्ध रहती है। यदि आचरण में अंतर न आया, तो आत्मोन्नति क्या हुई ?"

चंद्रकुमारी—"यह परमोन्नत धार्मिक भाव भले ही हो, साधारण लोगों का तो है नहीं।"

विजयभूषण—"तभी तो महात्माजी ने विविध लोगों की मानसिक उन्नति के अनुसार उनके लिये धर्मों की भी वैविद्धि का कथन किया था। जिसकी जैसी मानसिक एवं भावना-पूर्ण उन्नति होगी, तदनुसार ही उसकी धार्मिक पात्रता भी होगी।"

चंद्रकुमारी—"ऐसा तो समझ ही पड़ता है।"

विजयभूषण—"अच्छा, देवीजी! महात्माजी ने जो जाति-भेद की निंदा करके सारी जातियों में वैवाहिक संबंधों की योग्यता प्रतिपादित की थी, उस मत पर आपका क्या विचार है ?"

चंद्रकुमारी—"भले ही देश-हितैषिता तथा लोकोपकारादि की दृष्टि से ऐसा उचित हो, किंतु चित्त एकाएकी यह बात ग्रहण नहीं करता। ब्राह्मणों और क्षत्रियों में तो ऐसे संबंध प्राचीन काल में भी होते रहे हैं, और इसमें मुझे कोई दोष नहीं दिखता, वरन् सामाजिक संगठन के विचार से यह उचित भी है। वैश्यों में भी

उच्च श्रेणीवालों से शायद दोष न हों, तथा शूद्रों में भी सोनारों और अहीरों आदि तक से बहुत अनुचित नहीं हैं। इतरों से मुझे पसंद नहीं आता।"

विजयभूषण—"अहीरों की संज्ञा तो शूद्रों में न होकर वैश्यों में है। गोपालक वे हैं ही। प्राचीन ग्रंथों में वे वैश्य लिखे भी हुए हैं। अब अवनति कर जाने से शूद्र कहलाने लगे हैं। सोनार शूद्र हैं नहीं।"

चंद्रकुमारी—"यही होगा। मैंने पुराणादि ग्रंथ कम पढ़े हैं। इस जातीय विषय पर एक बार महात्माजी भाषण कर चुके हैं। इसे आज फिर से आपने क्यों उठाया ?"

विजयभूषण—"प्रश्न तो आपका बुद्धिमत्ता-सूचक है, किंतु उत्तर देने में कुछ संकोच भी लगता है।"

चंद्रकुमारी—"संकोच की बात क्या है ? क्या मेरे ही संबंध में अंतरजातीय विवाहेच्छा की बात तो चित्त में नहीं आ गई है ?"

विजयभूषण—"है तो कुछ ऐसा ही, यदि देवीजी को अप्रिय न लगे। जबसे मेरा-आपका संग विशेष वृद्धि को प्राप्त हुआ है, तब से चित्त में ऐसा भाव आ अवश्य गया है। यद्यपि मैं उसे दबाने का भी प्रयत्न करता आया हूँ।"

चंद्रकुमारी—"यही बात, मित्रवर, इधर भी है ; अतएव अप्रिय लगने का तो प्रश्न ही नहीं है, किंतु हमारे-आपके माता-पिता यह मानेंगे कैसे ? इस पर कभी विचार किया है ?"

विजयभूषण—"अनेकानेक धन्यवाद, देवीजी महोदया ! मैं आपकी उदारता से बहुत ही हर्षित हूँ। पहला प्रश्न तो आत्मीय स्वीकृति का है, जो सुख-पूर्वक सिद्ध हो गया है, सो भी बहुत ही आनंद के साथ आशातीत प्रकार से। अब माता-पिता की स्वीकृतियों की बात रह गई है, जिनसे एकाएकी न तो मैं कह सकता हूँ, न आप ही। इस विषय में मेरा विचार ऐसा है कि अरिंदमजी अथवा सेठजी और माधवी देवी के द्वारा प्रयत्न होने से साफल्य संभव है।"

चंद्रकुमारी—"संभव क्या, मुझे तो निश्चितप्राय समझ पड़ती है, किंतु इतना और सोचती हूँ कि महात्माजी के द्वारा प्रयत्न क्यों न कर लिया जाय ?"

विजयभूषण—"वे साधु-महात्मा हैं, ऐसे मामले में न तो पड़ेंगे, न हम लोगों के लिये भी योग्य है। फिर अरिंदमजी तथा माधवी देवी इन लोगों के प्राचीन मित्र भी हैं। पंजाब से भागने में वह मित्रता और भी वृद्धिमती हो गई है।"

चंद्रकुमारी—"यही उचित होगा। शीघ्रता करनी चाहिए।"

विजयभूषण—"बड़ी ही दया हुई, देवी ! ऐसी आशातीत अपूर्व अनुकंपा तो मेरे चित्त में भी न आती थी । तो भी एक बात ध्यान में रखना चाहिए ।"

चंद्रकुमारी—"वह क्या है, मित्रवर ?"

विजयभूषण—"आप एक राज्य की उत्तराधिकारिणी समय पर हो सकती हैं । देखने में समझा जा सकता है कि मेरा आपसे प्रेम संपत्ति-प्राप्ति की युक्ति है। इसका क्या उत्तर है, देवीजी ?"

चंद्रकुमारी—"ऐसा संदेह केवल दुष्टों द्वारा किया जा सकता है । वास्तविक बात यह है कि मैं कई मासों से आपको चाहती आई हूँ, केवल लज्जा-वश ऐसा कथन मैंने नहीं किया । आपने तो बहुत पीछे आकस्मिक रीत्या यह विषय छेड़ा । इस प्रश्न का उत्तर यही है कि प्रकट ऐसा किया जाय कि आपने यह मामला सोचा ही नहीं, वरन् मेरी ही ओर से यह प्रेम-प्रार्थना उठाई जा रही है। आप मौन रहिए । मैं स्वयं काका अरिंदम चटर्जी से यह विषय छेड़ूँगी ।"

विजयभूषण—"इस बात में आपके माता-पिता तो कुछ अनौचित्य न मानेंगे ?"

चंद्रकुमारी—"भारत में लड़कीवालों की ओर से तो ऐसी प्रार्थनाएँ उठती ही हैं । इसमें अनौचित्य क्या है ? चटर्जी महोदय से पिताजी परम प्रसन्न रहते हैं तथा शुक्लजी भी । वे सेठजी तथा माधवी देवी का भी आशय लेकर सब की ओर से बात करके मामला निर्णीत करा सकेंगे, ऐसी मुझे आशा है । आप तटस्थ ही बने रहिए ।"

विजयभूषण—"आपकी कृपाओं तथा प्रेम-गांभीर्य की मैं भूरि-भूरि सराहना करूँगा । फिर भी इतना जानना चाहूँगा कि क्या स्वयं आपके चित्त में तो ऐसा भाव कभी न आ जायगा ?"

चंद्रकुमारी—"क्या आप मुझे ऐसी गई-बीती समझते हैं कि आप-सरीखे महात्माओं पर ऐसा नीच संदेह कर सकती हूँ ? फिर आप ही कौन कंगाल हैं ? स्वयं शुक्लजी ने लाखों कमाकर रख दिए हैं । उधर राजाओं की जिमींदारी तो सरकार ले ही रही है । अंततोगत्वा हमारे-आपके धन-संबंधी ऐश्वर्य में भी शायद अंतर ही न रह जाय ।"

विजयभूषण—"यह बात तो मैं भूला ही जाता था । जिमींदारी जाने पर आपका ऐश्वर्य मेरेवाले से बहुत बढ़कर बना रहेगा । फिर भी प्रसन्नता यह है कि आप इस प्रश्न पर भी दृढ़ हैं ।"

चंद्रकुमारी—"इसमें क्या संदेह है ? क्या प्रेम-राज्य के संबंध में ऐसे नीच विचार उठने भी चाहिए ?"

विजयभूषण—"सहस्रशः धन्यवाद, प्यारी राजकुमारीजी ! आज मैंने जाना कि आप मानस-बल में भी भीम हैं। प्रेम-राज्य तो कुमारियों में स्वाभाविक है।"

चंद्रकुमारी—"प्यारे विजय ! मुझमें कौन-से महान् गुण हैं ? तुम्हें पाकर मैं स्वयं कृतार्थ हो जाऊँगी।"

विजयभूषण—"धन्य धन्य, प्राणेश्वरी ! ऐसी ही कृपा सदैव बनी रहे। यह विषय अभी गुप्त रहे।"

चंद्रकुमारी—"ऐसा तो होगा ही।"

इस प्रकार यह वार्तालाप समाप्त हुआ और समय पर सेतुबंध रामेश्वर तक के दर्शन करके राजा साहब सवर्ग लखनऊ पलट आए। इतनी यात्रा के पीछे इनका तथा रानीजी का पुत्र-शोक बहुत कुछ न्यून हो गया, विशेषतया कन्या की भारी अस्वस्थता की चिंता में इसे भी खोने के भय से आप बहुत उद्विग्न हो गए थे। औषधोपचार भी पूर्ण तत्परता से हुआ था। विजयभूषण की परिचर्या तथा उनके द्वारा पुत्री के चीते के आक्रमण से बचने से आप शुक्लजी से भी बहुत ही प्रसन्न हो गए थे। प्रगाढ़ मित्र के पुत्र होने से इन पर कृपालु तो वे सदा ही रहते थे, अब उपकारों के बोझ से दबकर और भी हर्ष-गद्गद हो गए थे। लखनऊ में आप भारतभूषणजी शुक्ल से बहुत प्रेम-पूर्वक मिले तथा विजयभूषण की प्रशंसा उनसे मुक्त कंठ से करते रहे, जिससे शुक्लजी अपने सुपुत्र से और प्रसन्न हुए। समय पर अरिंदम चटर्जी का युक्ति-पूर्वक स्मरण कराकर राजकुमारीजी ने एक बार एकांत में उनसे इस प्रकार वार्तालाप प्रारंभ किया ?

चंद्रकुमारी—"काकाजी ! आज आपसे गुप्तभावेन एक प्रार्थना करनेवाली हूँ। क्षमा कीजिएगा, कहना मुझे न चाहिए था, किंतु आपकी कृपा पर भरोसा कर कुछ लज्जा-हीनता से कहती हूँ।"

अरिंदम—"इतनी दीनता क्यों प्रकट करती हैं, बेटी ! जो कहना हो, निर्भय रूप से कहिए। क्या विवाह के संबंध में कुछ इच्छा हुई है ?"

चंद्रकुमारी—"यही बात है, काकाजी ! जैसा आपका, माधवीजी का तथा सेठजी की प्रिय पुत्री का विवाह हुआ है, वैसा ही मैं भी चाहती हूँ; साधारण रीत्या क्षत्रिय-वर्ण में ही नहीं।"

अरिंदम—"यदि वर अच्छा चुना हो, तो कुछ अनुचित नहीं। आज कल

भारतीय नियम, समुदाय भी इस विषय में स्वच्छंदता के पक्ष में है। किसके संबंध में ऐसा विचार है, बेटी मेरी ?"

चंद्रकुमारी—"आप तो, काकाजी ! दोनो पक्षों के पूर्ण मित्र और सहायक हैं। इसीसे आपको कष्ट देती हूँ।"

अरिंदम—"क्या विजयभूषणजी शुक्ल पर दृष्टि पड़ी है ? इन दिनों उनके साथ आपकी, बेटी ! लंबी तीर्थ-यात्रा भी हुई थी, तथा उन्होंने चीते के मुख से आपका संरक्षण भी किया था। लड़का है तो बहुत ही सुशील, गुणी तथा सबल एवं विद्वान्।"

चंद्रकुमारी—"उन्हीं के विषय में विनती करती हूँ, काकाजी ! क्या आपकी भी सम्मति मिलती है ?"

अरिंदम—"उनके ऊपर कौन-सी सुंदरी मुग्ध न हो जायगी ? मैं, बेटी ! तेरी इच्छा सुनकर अत्यंत हर्षित हुआ। हीरे के गुण पारखी ही जान सकता है। क्या वे भी सन्नद्ध हैं ? होंगे तो अवश्य।"

चंद्रकुमारी—"हैं तो सन्नद्ध, किंतु कई कारणों से अभी अपनी स्वीकृति गुप्त रखना चाहते हैं। अपने पिता के एक-मात्र पुत्र होने से किसी प्रकार की धृष्टता नहीं करना चाहते। इधर पिता के विषय में मेरा भी यही हाल है। आप दोनों पक्षों के पूर्ण मित्र तथा सभाचतुर व्यक्ति हैं। बिना हम दोनो की भारी अनुरक्ति प्रकट किए ही कार्य सिद्ध कर सकेंगे, ऐसी आशा है। क्या आज्ञा है, काकाजी ?"

अरिंदम—"तू बेटी ! निश्चिंत बनी रह। मैं सेठजी, सेठानीजी तथा अयोध्याप्रसादजी द्विवेदी से पत्र लाकर और उनके अनुज के ऐसे ही शुभ विवाह का उदाहरण देकर संभवतः सुगमतया तेरी इच्छा पूरी करा सकूँगा, ऐसी आशा है। चित्रकूट में महात्माजी ने भी ऐसा ही उपदेश दिया था, जो तेरे पिताजी ने भी प्रसन्नता से मान लिया था। उधर शुक्लजी पहले ही से उच्च विचाराश्रयी सज्जन हैं। तू, बेटी ! धैर्य धारण किए रह।'

चंद्रकुमारी—"बहुत-बहुत धन्यवाद है, काकाजी ! आपकी अलौकिक योग्यता से निराशा का भय कम है।"

अरिंदम—"बात शायद पूरी पड़ सके। प्रयत्न में कसर न लाऊँगा। अब मैं जाता हूँ।"

चंद्रकुमारी—"प्रणाम, काकाजी !"

अरिंदम—"सदा प्रसन्न रहो, बेटीजी !"

इस प्रकार राजकुमारी से विदा होकर चटर्जी महोदय कानपुर पधारे और वहाँ से सेठजी तथा सेठानी माधवीजी के पत्र राजाजी तथा शुक्लजी के नाम प्राप्त किए, अथच अयोध्याप्रसादजी को साथ लेकर फिर लखनऊ पहुँचे। यहाँ आपने राजाजी तथा रानीजी से वार्तालाप किया और अयोध्याप्रसादजी को साथ लेकर भारतभूषणजी से भी आप देर तक कथनोपकथन करते रहे। दोनो पक्षों ने जाति-संबंधी भेद को भुलाकर तथा शास्त्रानुसार ऐसा संबंध योग्य समझकर कार्य स्वीकार कर लिया और समुचित धूमधाम के साथ यह शुभ विवाह, दोनो पक्षों की मंगल-कामनाओं के साथ, प्रेम-पूर्वक संपादित हो गया, अथच वर-वधू प्रसन्नता के साथ रहने लगे। समय पर विजयभूषणजी भी बैरिस्टरी पास होने से लखनऊ में ही काम करने लगे और अपूर्व योग्यता के कारण इनका काम भी चलने लगा। राजा साहब तथा शुक्लजी में मित्र-भाव सदा से बहुत बढ़िया था। अब संबंध भी स्थापित हो जाने से दोनो घर मानो एक ही हो गए, क्योंकि वर-वधू दोनो अपने-अपने माता-पिता के एक ही एक संतान थे।

नवम परिच्छेद

बंगाल

प्रायः साढ़े सात सै वर्षों के पीछे विना लड़ाई-दंगों के स्वराज्य प्राप्त करके सारे भारतीय प्रसन्न तो बहुत हुए, किंतु प्रायः सबों को समझ ऐसा पड़ने लगा कि अपनी ही सरकार हो जाने से अब सभी को दूध-पूत प्राप्त हो जाना चाहिए। श्रमी (मजदूर) भारी-से-भारी पारिश्रमिक पाने को मुँह फैलाने लगे, किसान लोग विना लगान दिए ही भूमि जोतने के इच्छुक हुए, तथा इतरों ने भी ऐसे ही भाव सोचे। निम्न-श्रेणीवालों को समझ पड़ने लगा कि धन-संबंधी परिस्थिति में एकाएकी उन्नति हो जाय। उधर प्रायः छ वर्षों-पर्यंत जो घोर विनाशकारी संसारव्यापी महायुद्ध हुआ था, और उससे जो धन-जन का भारी विनाश हुआ था, वह आकांक्षी भारतीयों की आँख से ओट हो गया। सारी जनता न तो उसके विकराल संहार से अभिज्ञ थी, न उसमें यह सोचने की ही शक्ति थी कि यदि सभी की कामनाएँ पूर्ण हो जायँ, तो उन आशाओं के पूर्ण करनेवाले तंदुल कहाँ से आ सकते थे, क्योंकि "सर्वारम्भे तन्दुलं सार भूतम्" की बात है। प्रयोजन यह कि सभी उन्नतियों का मूल धन है, धन के बिना कुछ नहीं होसकता। कांग्रेसी नेता अब तक ब्रिटिश सरकार पर दोषारोपण मात्र में प्रवृत्त थे और जनता से संभव-असंभव सभी प्रकार के वादे कर रहे थे। यह कोई भी नहीं सोचता था कि इन वचनों की पूर्ति किस प्रकार संभव होगी? जब एकाएकी स्वराज्य प्राप्त हो गया, तो उसी कांग्रेस को जो सबको दूध-पूत बाँटने की बातें किया करती थी, राजगद्दी पर बैठते ही अपने वचन पूरे होने कठिन दिखने लगे। उतनी दूध की नदियाँ कहाँ से आतीं जो सबको बँटता? जिस कांग्रेस की सारी जनता तीस-बत्तीस वर्षों से पूजा-सी करती आती थी, वही अब उसे राजसिंहासन पर आयोग्य दिखने लगी। कांग्रेस की ओर से जैसे वादे चिरकालसे होते आते थे, उनमें से रूप रखने को कुछ तो पूरे करने ही पड़े। पहले तो मुसलमानों ने लड़-झगड़ कर भारत का प्रायः चतुर्थांश या पंचमांश पाकिस्तान के रूप में अलग कर लिया। बहुत वर्षों से सरकार कठिन रोगों के आक्रमण बचाती आती थी। इन प्रयत्नों में विशेष धनव्यय द्वारा और भी उन्नति हुई। महासंग्राम में योरपीय युद्धकर्ता तो बहुत-से मरे, किंतु

भारतीय थोड़े-से ही काम आए। भारत और पाकिस्तान में मिलाकर जन-संख्या प्रतिवर्ष चालीस-पचास लाख की मात्रा में बढ़ती आई है। इन सबके खाने को अनाज भी अधिक मात्रा में आवश्यक था। यह विदित ही है कि भारत में पश्चिमी पंजाब तथा सिंध में खेती के योग्य भूमि तथा सिंचाई के लिए नहरें अच्छी हैं। इन्हीं दोनो देशों से गेहूँ शेष भारत को आते थे, किंतु बटवारे से ये दोनो प्रदेश पाकिस्तान में पड़ गए। चावल बर्मा देश से भी आते थे, अतः यह सब धान्य की कमी पूरी कैसे हो? हमारे लिये आजकल यही सब से बड़ा प्रश्न है। सरकार प्रयत्न कर रही है कि जितने अनाज की आवश्यकता है, वह यहीं होने लगे। आगे की जनवृद्धि के लिये कई बड़ी-बड़ी नदियों पर बंधे बाँधकर दस बीस वर्षों के भीतर जोतने को भूमि तथा काम-काज के लिये बिजली प्रस्तुत करने के विचार हैं। इन बातों के लिये दो-ढाई अरब रुपयों की आवश्यकता है। लवण-कर के प्रतिकूल कांग्रेस सदैव यत्नशील थी। उस काल प्रजा के निर्धन होने से यह प्रतिकूलता चाहे योग्य भी हो, किंतु १६२६ से लगान प्रायः आधा रह गया है तथा अनाज के दाम प्रायः चौगुने-पचगुने हो जाने से पहले की अपेक्षा अष्टमांश या दशमांश ही रह गया है। फिर भी कांग्रेस ने उस पर लगान बढ़ाने नहीं दिया है, जिससे ग्रामीण जनता की दशा पहले से बहुत अच्छी हो गई है। उसकी संख्या प्रायः ८० प्रतिशत होने से कहा जा सकता है कि कांग्रेस ने ८० प्रतिशत भारतीयों की दशा सुधार दी है। फिर भी जब उन लोगों से नागर जनता के कल्याणार्थ कुछ सस्ते दाम पर अनाज लिया गया, तो सारी ग्रामीण जनता बहुत अप्रसन्न हुई, यह न सोचा कि लगान के भारी घटाव से उनको बहुत अधिक लाभ हो चुका है। जब तक हमारी जनता उचित बातों के समझने में इतनी भी शक्ति नहीं रखती तथा अंधे स्वार्थ की ओर ही जा रही है, तब तक उसकी दृष्टि में रामराज्य भी स्तुत्य न दिखेगा, क्योंकि उसमें भी तो सबके कल्याणार्थ कुछ-न कुछ प्रबंध करना ही पड़ेगा।

ग्रामीण जनता बहुत प्रसन्न होकर भी सरकार से पूर्णतया प्रसन्न नहीं दिखती। इधर श्रमियों की उन्नति के वादे कांग्रेस सदा से करती आई थी, सो उनकी प्रसन्नता के लिये मिलों-कलों आदि की हानि करके मजदूरी बढ़ा दी गई, जिससे देशकी उपज के दाम इतने बढ़ गए कि वह बाहरी उपज के सामने संसार में बिक ही नहीं पाती। अपने यहाँ शक्कर २८) मन के दामों पर पड़ती है। बाहर से वही १७) मन पर मिलती है। यही दशा कपड़ों आदि की हो गई है। पहले तो दाम बढ़ा दिए गए, पर

अब घटाए नहीं घटते। उधर पुराने वचनों के पालनार्थ लवण-कर छोड़ दिया गया, तथा मद्यबंदी की जा रही है। इन दोनो कारणों से करोड़ों की वार्षिक हानि है, जिसके कारण अन्य कर लगाने पड़े हैं, जिससे सरकार अप्रिय हुई जाती है। ग्रामीण प्रजा की दशा बहुत कुछ सुधर जाने से अब लवण-कर छोड़ने की आवश्यकता नहीं रह गई थी। फल सब बातों का यह है कि सरकारी व्यय स्वराज्य के कारण बहुत बढ़ गया है, और कर-वृद्धि से बेचारी मध्य श्रेणी की नागर जनता पिसी जाती है। कितना भी समझाया जाय, बात उसकी समझ में नहीं आती, क्योंकि भूखे पेटवालों को उचित तर्क भी विष-से बुरे लगते हैं। इतने पर भी समाजवादी पार्टी अधिकाधिक श्रमियों के लाभ तथा किसानों की वृद्धि के पक्ष में है। यह नहीं देखती कि सारी कलें-मिलें आदि जब नष्ट हो जायँगी, तब देश के कल्याणार्थ जो अरबों का वार्षिक व्यय होता है, वह कहाँ से आएगा ? उधर साम्यवादी रूस के सिद्धांतों पर चलकर संपत्ति वालों को फूटी आँख से भी नहीं देख सकते, यद्यपि तर्क में उनके सिद्धांत बहुत असंभव नहीं दिखते। केवल समाजवादियों के विचार तर्क-हीन हैं। सरकार को या तो मिलों-कलों आदि को मिटने से बचाना पड़ेगा या शुद्ध साम्यवाद पर आकर सारा धन छीनकर सबको समान रूप से चलाना पड़ेगा। यह अंतिम विचार भारत में चल सकेगा या नहीं, सो अज्ञात है। संभव है, इससे देश में विप्लव उपस्थित हो जाय। फिर भी हिम्मत बाँधकर सरकार को या तो संपत्तिवाद पर आना पड़ेगा या साम्यवाद पर। दोनो के बीच का मार्ग न चलेगा। अभी अमेरिका और बितानिया संपत्तिवादी हैं, और भारत उन्हीं से व्यवहार बढ़ा रहा है। जिससे रूस से, अच्छा प्रयत्न करने पर भी, मेल नहीं बढ़ रहा है। आजकल जमींदारी हटाने से ग्राम्य-समाज का कायाकल्प-सा होनेवाला है। उधर शिल्प-व्यापार की उन्नति के लिये यद्यपि सरकार ने दस वर्षों का वचन दे रक्खा है, फिर भी शिल्प ऐसा गिर चुका है कि सरकार को यहाँ माँगे से भी उधार नहीं मिल रहा है। यद्यपि भारत में सूद की दर ३ सैकड़े है, तो भी सरकार बाहर से अधिक दर से ऋण ले रही है। जब तक बाहर से सम्यक् प्रकारेण धन की सहायता न होगी, तब तक जल-विद्युत् के लिये देश में नदियों आदि के बंधे सरकार कठिनता से बाँध सकेगी।

उधर सारी रियासतों के सरकार में मिल जाने से नवीन प्रांतों के बनने का प्रश्न बल के साथ उठाया जा रहा है। सबसे पहले भाषाओं के आधार पर नवीन प्रांत बनाने पर बहुत हठ किया जाता है। इस विषय में सब से बड़ी आवश्यकता मदरास-प्रांत की है। वहाँ चार भाषाएँ चलती हैं—तामिल, तेलगू, कनारी

और मलयालम। इनमें से एक-एक के बोलनेवाले अपने प्रांत की इतर भाषाओं को नहीं समझते और साधारण आह्निक कार्यों में भी वहाँ बहुत कुछ अड़चन पड़ती है। आंध्र के वहाँ कई जिले (विषय) हैं तथा कई के भागों में तेलगू भाषा का प्रचार है। उधर हैदराबाद रियासत के कई पूर्वी-दक्षिणी जिलों की भी यही भाषा है। मदरास नगर के भी विविध भागों में तेलगू और तामिल बोलनेवाले बसे हैं, अतएव इन दोनो भाषाओंवाले उसे अपने-अपने लिये चाहते हैं। यही इस संबंध में सबसे बड़ी अड़चन है। आंध्र लोग सारे तेलगू-भाषियों को सब सीमाओं से एकत्र करके अपना नवीन प्रांत बनाना चाहते हैं। आंध्र के कुछ भागों का कांग्रेस भी दीर्घकाल से समर्थन करती आई है। आजकल विविध भाषा-भाषियों के संबंधवाले दर-कमीशन ने कई महत्ता-युक्त कारणों से ऐसे प्रांतों के प्रतिकूल रिपोर्ट दी है। उससे लोगों को संतोष न हुआ और कांग्रेस ने नेहरू, पटेल और पट्टाभि सीतारमैया महोदयों का एक नवीन कमीशन बनाया, जिन्होंने मदरास शहर (पत्तन) को सबसे अलग रखकर आंध्र के मुख्य जिलों के प्रांत बनाने की रिपोर्ट की, किंतु मदरास छूटने के कारण वह भी आंध्रों को पसंद न आई, यद्यपि उन्हीं के नेता कांग्रेसी राष्ट्रपति पट्टाभि ने भी उससे अनुकूलता प्रकट की थी। मलयालम भाषा का मदरास में एक ही भारी जिला मलाबार है। किंतु ट्रैवंकोर तथा कोचिन रियासतें भी यही बोलती हैं और आजकल दोनो मिलकर एक हो भी चुकी हैं। मलयालम वाले इन दोनो को मलाबार से मिलाकर एक प्रांत चाहते हैं। कनारीवाले मैसोर, कुर्ग तथा मदरास और बंबई प्रांतों के कर्नाटी जिले मिलाकर कर्नाटक-प्रांत चाहते हैं, जो बात महाराजा मैसोर को स्वीकार नहीं है। तामिलवाले शेष मदरास-प्रांत तथा पूरा मदरास शहर चाहते हैं। उधर बंबई में ऐसा ही झगड़ा गुजरातियों तथा महाराष्ट्रों में है। दोनो अपने-अपने लिये बंबई शहर चाहते हैं, जिसका बटना भी केंद्रीय सरकार को सह्य नहीं है, क्योंकि बंबई और मदरास भारत के परम प्रधान शहरों तथा क्षेत्रों (बंदरगाहों) में से हैं। गुजराती सौराष्ट्र और बड़ोदा को भी अपने ही में मिलाना चाहते हैं। उधर महाराष्ट्र लोग रियासत हैदराबाद के कुछ जिले तथा बरार को भी मिलाकर एक भारी प्रांत बनाने के उत्सुक हैं। उत्तर में पटियाला तथा इतर फुलकियन रियासतोंवाले अपने नवनिर्मित पेप्सू प्रांत से संतुष्ट न होकर उसे पूर्वी पंजाब में मिलाना चाहते हैं। ऐसा होने से इस नवीन प्रांत में सिक्खों की जन-संख्या बहुत बढ़ जायगी,

जिससे वहाँ की हिंदू जनता से पैंतड़ेबाजी होने लगेगी, जो बात वहाँ के हिंदुओं को पसंद नहीं है, न महाराजा पटियाला ही अपना पेप्सू प्रांत खोना चाहते हैं। दो जिलों के बाबत बिहार और पच्छिमी बंगाल में खासा झगड़ा चल रहा है। भाषा के आधार पर दोनो प्रांत उन्हें अपना मानते हैं, अभी वे हैं बिहार में ही। मणिपुर रियासत तो केंद्रस्थ प्रबंध में आना चाहती है; किंतु आसाम तथा पश्चिमी बंगाल दोनो उसे अपने-अपने लिये चाहते हैं। आसाम भारत का पूर्वी सीमा-प्रांत हो गया है। भारतीय इतिहास में अब तक उधर से कोई टंटा नहीं उठा, किंतु अब आसाम की सीमायें सैकड़ों मील तक पूर्वी बंगाल (पाकिस्तान) और बर्मा से मिलती हैं, जहाँ एक ओर धार्मिक झमेला है तथा दूसरी ओर साम्यवादी। अब आसामका प्रश्न भारत के लिये बड़ा महत्त्व-पूर्ण हो गया है। उधर भूपाल आदि कई रियासतें केंद्र से संबद्ध हैं, तथा पहले से भी कुछ प्रांत इसी प्रकार थे। हिमाचल-प्रदेश की भी यही दशा है। विंध्य प्रदेश है तो पृथक् यूनियन, किंतु युक्त प्रांत तथा मध्य-प्रांत में इसके भाग बट जाने की संभावना है। आंतरिक बटवारों के आजकल इतने प्रश्न चल रहे हैं। सबसे मुख्य प्रश्न हैदराबाद तथा कश्मीर के हैं। हैदराबाद में भी चार भाषाएँ चलती हैं। भारत सरकार ने तो इसे जीत लिया है, किंतु आशा यह है कि यहाँ की प्रजा इसके भविष्य का निर्णय करे। कश्मीर के भाग पाकिस्तान और भारत के अधिकार में हैं। दोनो राज्य कहते तो यही हैं कि जनमत के अनुसार दो में से एक को यह प्रांत मिलना चाहिए, किंतु मतगणना के पूर्व इतने झगड़े दोनो ओर से उठ रहे हैं कि समझ यही पड़ने लगा है कि न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेंगी। भाषा-संबंधी प्रांतों के बनने से एक भय यह भी है कि एक भाषा-भाषी प्रांतवाले समय पर आपसी ऐक्य इतना बढ़ा लेंगे कि शेष भारत से पृथक् स्वतंत्र सत्ता रखने की उनकी इच्छा प्रबला हो उठेगी, जिससे भारतीय संगठन और शक्ति में भारी विच्छेद पड़ने का भय है।

उपर्युक्त झमेलों के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न प्रांतों के अपने-अपने मुख्य प्रश्न भी उठनेवाले हैं, जो अभी तक उठे तो नहीं हैं, किंतु संभावना इसकी पूरी है। पहले तो इस काल केंद्रीय प्रबंध में कई रियासतें हैं, जो समय पर संभवतः मध्यभारत या अन्य प्रांतों में मिलाई जायँ। रियासतों के कई जत्थे यूनियनों के नाम से बने हैं, जैसे राजस्थान, सौराष्ट्र, मध्यभारत,

पेप्सू आदि, जो विविध श्रेणियों की उन्नतियों में हैं, तथा जिनके आयात-निर्यात आदि के प्रबंध, टैक्सादि पृथक् थे, किंतु जो अब चल नहीं सकते, क्योंकि छोटी-छोटी रियासतों की सीमाएँ अब शेष नहीं हैं। फिर भी इन नियमों से आय-व्यय के भी प्रश्न लगे हुए हैं, और जब तक समय के साथ धन-संबंधी तथा कुछ इतर प्रश्नों के उचित सुलझाव न समझ पड़ें, तब तक एकाएकी नियम-परिवर्तन अयोग्य ही नहीं, असंभव है। समझा जाता है कि इन सबका उचित सुलझाव कदाचित् दस वर्षों में हो सकेगा, तब तक रियासतों के शेष नियम यथा साध्य भारतीय प्रांतों के अनुसार किए जा रहे हैं। अभी सबको प्रसन्न रखने के विचार से, अखिल भारतीय नेताओं के आधिपत्य में, लोकतंत्र चलाया जा रहा है। किंतु इनमें से कुछ व्यक्ति अयोग्य या उत्कोचादि के भी अभ्यस्त हैं। तो भी केन्द्रीय रियासती प्रबंधकों की योग्यता ऐसी बढ़ी-चढ़ी है कि अभी तक विना रक्तस्राव के सारा काम उत्तमता-पूर्वक चल रहा है। मध्य भारत तथा उड़ीसा के प्रांत कुछ छोटे थे, किंतु इन दिनों उनमें भी कई रियासतों के मिल जाने से उन प्रांतों के भी आकार बढ़ गए हैं। भूपाल रियासत को मध्यभारत और मध्य-प्रांत दोनो चाहते हैं। विंध्य प्रदेश के भागों को भी मध्यप्रांत तथा युक्त प्रांत पाना चाहते हैं। इन प्रांतों में और कोई झगड़े नहीं समझ पड़ते। उधर मद्रास और हैदराबाद के बटने के संबंध में भारी प्रश्न सामने हैं। कश्मीर के भाग भारत और पाकिस्तान के अधिकार में हैं। जन-मत प्राप्त करने का प्रश्न वहाँ सुलझता नहीं दिखता तथा वर्तमान अधिकारों के ही आधार पर भविष्य में शायद निबटारा हो। अभी तो दोनो की स्वीकृति से स्वल्पकालीन निर्णय हो रहा है।

पश्चिमी बंगाल का प्रश्न भी कठिन दिखता है। वहाँ की जन-संख्या केवल ढाई करोड़ है तथा पूर्वी बंगाल की प्रायः चार करोड़ या कुछ और अधिक। किंतु कलकत्ते की महत्ता के कारण वार्षिक आय पश्चिमी बंगाल की ही अधिक है। सब से पहले अँगरेज़ी प्रभाव बंगाल में ही हुआ, तथा वहाँ के लोग शेष भारतीयों के देखते हुए विद्वत्ता में भी आगे बढ़ गए। पीछे से शेष भारत में भी जब शनैः-शनैः अँगरेज़ी अधिकार स्थापित हुआ, तो बढ़ी हुई विद्वत्ता के कारण सब कहीं बंगाली विविध विभागों में काम पा गए। धीरे-धीरे अन्य प्रांतों में भी विद्या, कला आदि का प्रचार हो गया, और अब वहाँ बंगाल से अध्यापकों आदि के बुलाने की आवश्यकता नहीं रही। फिर भी इतर प्रांतों के देखते हुए विद्वानों की संख्या वहाँ अब भी बहुत अधिक है। इन लोगों की रुचि सेवा-वत्ति में इतनी बढ़ी-चढ़ी

है कि कुछ लोगों के विचार में साधारण बंगालियों की इतर आय चाहे चार-पाँच सै रुपए मासिक हो, तो भी डीली नौकरी से ४५) मासिक तक कमा कर वह प्रसन्न होते हैं, तथा विना डीली आय के उन्हें इतर आय होते हुए भी अपना अस्तित्व अकर्मण्य समझ पड़ता है। यह सम्मति चाहे ठीक न भी हो और बंगाली लोग प्रायः इसे ठीक न मानेंगे, फिर भी जो बाहरवाले कलकत्ते में रहते हैं, उनमें से बहुतेरों की यही सम्मति है। बंगालियों ने शिल्प-व्यापार आदि में कोई विशेष महत्ता नहीं दिखलाई, केवल विद्वत्ता-गर्भित व्यापारों (learned professions) में उनकी विशेषता है। फल यह हुआ कि स्वयं कलकत्ते तक का शिल्प-व्यापार आधिक्य से मारवाड़ियों, बिहारियों, युक्त प्रांत-वालों आदि के हाथ में है। प्राचीन काल में युक्त प्रांतीय लोग बंगाल, पंजाब आदि प्रांतों में कुछ बहुतायत से ज़मींदारी, तालुक़दारी आदि प्राप्त कर सके, किंतु आजकल वहाँ इनकी चढ़ती कला नहीं है, वरन् विद्वत्ता-गर्भित व्यापारों में बंगालियों की विशेष पैठ है, तथा व्यापार में पंजाबियों की। बंगाल में आजकल पढ़े-लिखे बंगाली अपनी रुचि के अनुकूल उचित मात्रा में काम नहीं पा रहे हैं, क्योंकि पढ़े-लिखों की संख्या तो बहुत अधिक है, विशेषतया कलकत्ते आदि में, किंतु नौकरियों की संख्या स्वभावशः सीमित है। इसीलिये वहाँ पढ़े-लिखों को गार्हस्थ्य जीवन चलाने में कठिनाई पड़ रही है। निम्न-श्रेणियों के युक्त प्रांतीय तथा बिहारी लोग वहाँ प्रायः दरबानों में स्थान पाते हैं, तथा बिहारी लोग निम्न श्रेणी की पुलिस में भी हैं। बंगाली लोग इन व्यापारों को अपनी महत्ता के नीचे समझकर ऐसे लोगों को छातूखोर (सत्तू-मात्र खानेवाले) कह बैठते हैं, यद्यपि दरबान लोग अपने नियमित व्यय के कारण धन एकत्र करके, दफ़्तरों आदि में बाबुओं को तथा इतर स्थानों में इतरों को सूद पर धन उधार देकर प्रायः लखपती हो जाते हैं। निम्न-श्रेणी के पुलिसवाले वहाँ स्वदेशियों के ऊपर कृपा भी न्यूनाधिक कर दिया करते हैं।

कांग्रेस में सन् १८८५ से पहले सारे देश के लोग परिमित संख्याओं में एकत्र होकर अपनी-अपनी व्याख्यान-कला की योग्यता-मात्र दिखलाया करते थे, और कांग्रेस अँगरेज़ी सरकार से प्रार्थनाएँ-मात्र करती थी, जिनकी वह कोई परवा नहीं करती थी। एक वर्ष सर हेनरी काटन ने, अपने कांग्रेसी सभापतित्व के पीछे, वहाँ के मंतव्य बड़े लाट महोदय के सामने निजू रूप से रखने चाहे, तो उन्होंने यह प्रार्थना तक अस्वीकृत कर दी। लार्ड कर्जन के समय में पहले-

पहले जब आर० सी० दत्त महोदय ने कांग्रेसी सभापति के रूप में मालगुजारी के विषय पर करारा व्याख्यान दिया, तो उन्होंने उसका उत्तर दिया, जिस पर पीछे समाचार-पत्रों में बहुत कहा-सुनी हुई। इसी समय से कांग्रेस की कुछ महत्ता बढ़ी। अनंतर उन्हीं बड़े लाट महोदय ने बंगाल के प्रांत को बहुत भारी समझकर दो खंड कर दिए, और पूर्वी बंगाल और आसाम का एक प्रांत बनाया तथा पश्चिमी बंगाल, बिहार और उड़ीसा का दूसरा। इस पर अपने प्रिय देश के दो खंड हो जाने से बंगालियों को भारी क्षोभ हुआ, और उन्होंने, कांग्रेस के द्वारा तथा बाहर भी, भारी आंदोलन मचाया, जिसका सारे भारत ने समर्थन किया। फलतः १६११ में यह बटवारा मिटकर पूरा बंगाल तो एक में कर दिया गया, किंतु आसाम अलग हो गया, तथा बिहार और उड़ीसा का एक पृथक् प्रांत बना। इससे बिहारी प्रसन्न हो गए, क्योंकि बंगाल के साथ दीर्घ काल-पर्यंत होने से उन्हें सरकार में जगहें कम मिलती थीं, और विशेष विद्वत्ता के कारण बंगालियों को बहुत अधिक। इस नवीन विभाजन से बंगाल की हानि तो बहुत हुई, किंतु इतर प्रांतों की प्रसन्नता के कारण वह कुछ कह न सका, क्योंकि शेष भारत भी इतरों को अप्रसन्न करके बंगाल का साथ नहीं दे सकता था। पीछे से कांग्रेस में नरम दल का महत्त्व बढ़ा, जिसके नेता महाराष्ट्रीय गोखले महोदय थे। सर सुरेंद्रनाथ का भी कुछ प्रभाव था, किंतु मुख्यता गोखले की थी तथा उनके पीछे मालवीयजी की। जब नरम दल के प्रतिकूल गरम दल कांग्रेस में निकला, तो उसके भी नेता महाराष्ट्र बाल गंगाधर तिलक महोदय थे। अतएव कांग्रेस में उस काल बंगाल की महत्ता न बढ़ी। समय पर जब महात्मा गांधी का प्रभाव बढ़ा, तब उन्हीं के साथ कुछ अन्य गुजरातियों के कार्यों का भी मान हुआ, जिनमें दोनो पटेल बंधुओं की महत्ता थी। इसके कुछ पहले कांग्रेस में लाल-बाल-पाल की महत्ता प्रसिद्ध थी—अर्थात् लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक तथा विपिनचंद्र पाल की। तीन महापुरुषों की यह महिमा थोड़े ही काल रही, तथा महात्मा गांधी के घोर असहयोग के प्रतिकूल ज्येष्ठ नेहरू अथच दास महोदय की स्वराजिस्ट पार्टी भी कुछ ही काल चलकर टूट गई। अतएव बंगाल पार्टीशन (बंग-भंग) वाले आंदोलन के पश्चात् कांग्रेस में बंगाली महत्ता बहुत कम हो गई। वास्तव में समझा यह जाता है कि १६११ के पीछे बंगाल ने कांग्रेस का पूरा मान किया ही नहीं। कदाचित् उसकी प्रवृत्ति नरम दल की ओर विशेष हो। पीछे नेताजी

सुभाषचंद्र बोस की विचार-धारा कर्कशता में महात्मा गांधी वाले विचारों के भी आगे निकल गई, और उनके द्वारा समर्थित पट्टाभि सीतारमैया को भी वोटों द्वारा पराजित करके आप कांग्रेस के राष्ट्रपति बने। किंतु कांग्रेस महात्माजी के प्रभाव में थी, अतः नेताजी को राष्ट्र पति की पदवी छोड़कर इतर कार्यों में संलग्न होना पड़ा। इस काल द्वितीय संसारव्यापी महायुद्ध हो रहा था, सो आप जर्मनी आदि में होते हुए जापान पहुँचे, और जापानी सहायता से स्वतंत्र भारतीय सेना बनाकर अँगरेजों से भारत जीतने में प्रवृत्त हुए। यह प्रयत्न सफल न हो सका, तथा नेताजी सुभाषचंद्र बोष महोदय का शरीरांत भी हो गया। किंतु उनके प्रभाव से कलकत्ते में कांग्रेस के प्रतिकूल गरम अग्रगामी दल का बल न्यूनाधिक स्थापित हुआ। जब भारतीय बटवारे के संबंध में बंगाल के दो भाग पूर्वी और पश्चिमी बनने का प्रश्न उठा, तो बंग-भंग के पूर्णतया प्रतिकूल होने पर भी पश्चिमी हिंदू बंगाल को पृथक् होना पड़ा। एक बार बंगाल ने यह प्रश्न उठाया अवश्य कि भारत और पाकिस्तान दोनो से पृथक् होकर पूरा बंगाल एक स्वतंत्र राज्य बनाया जाय, किंतु यह बात न तो भारत ने स्वीकार की, न पाकिस्तान ने।

बंगाल में महायुद्ध के समय जब मुसलिम लीगी मंत्रिमंडल स्थापित था, तब अकाल के न होते हुए भी वहाँ सरकारी अयोग्यता से अनाज की ऐसी कमी हुई कि प्रायः २५ लाख लोग भूखों मर गए। कलकत्ते तक में जहाँ देखिए लँगोटा लगाए तथा पट खलाए भूखे लोग अन्न-कणों के लिये बिललाते फिरते थे। फिर भी इतने आदमी भूखों मर गए, किंतु भारतीय जनता ऐसी शांतिप्रिय है कि कोई लड़ाई-दंगा न हुआ। मुसलिम लीग से लोगों की भारी अश्रद्धा भी न हुई, यहाँ तक कि वह मंत्रिमंडल भी न गिरा। जब स्वराज्य स्थापित हो गया, तब लोग इस आशा में हुए कि दूध-दही की नदियाँ बहने लगेंगी; किंतु यदि ऐसी ही सुगम संभावना होती, तो ब्रिटिश लोग ही अपना जमा-जमाया डेढ़ सै वर्षों का राज्य क्यों छोड़ते? अब भी तो देश में सब से कठिन धान्याभाव है, और बंगाल तो अपने खाने-भर को अनाज कभी नहीं पैदा कर सकता था, उसके लिये सदैव बर्मा आदि से चावल आते थे। अब गेहूँ उपजानेवाले पश्चिमी पंजाब के भी निकल जाने से उत्तरी भारत में इसकी भी कमी हो गई। लड़ाई के समय गोरों आदि के खाने को गाय-बैल भी बहुतायत से कटे। जन-वृद्धि के कारण यों भी अनाज, दूध-दही तथा इतर भोज्य पदार्थों की कमी

पड़ने लगी। अतएव स्वराज्य से जनता को मानसिक आह्लाद के सिवा कोई आनंद न प्राप्त हुआ। बेचारे पढ़े-लिखे बंगाली जैसे पहले उदर-पालनार्थ महती चिंताओं में थे, वैसे ही फिर भी रहे, वरन् अनाज, कपड़े आदि के दाम बहुत बढ़ जाने से और भी काठिन्य पड़ा। सरकार ने भी कोई विशेष प्रबंध तो किया नहीं, केवल शराब-बंदी और लवण-कर उठाकर आय में कई करोड़ का घाटा कर लिया। फिर स्वतंत्रता के कारण सेना बढ़ानी पड़ी, इतर देशों को एलची (राजदूत) भेजने पड़े, अध्यापन-विभाग तथा औषधोपचार-विभाग के व्यय बढ़ाने पड़े, तथा अनेकानेक बातों में आवश्यक व्यय बढ़े। इधर बाहर से सवा डेढ़ अरब का अनाज मँगाने से भारतीय व्यापार बिगड़ रहा है। प्रयत्न हो रहा है कि १६५१ के पीछे बाहरी अनाज न मँगाना पड़े। अनाज की उपज अपने यहाँ बढ़ेगी अवश्य, किंतु चार-पाँच वर्षों के पहले बाहर से कुछ भी अनाज न मँगाने से शायद काम न चले। आशा है, जैसे उद्दाम प्रयत्न हो रहे हैं, उनके कारण चार-पाँच वर्षों तक बाहरी अनाज का आयात दिनोदिन घटता अवश्य जायगा। अनंतर बंद भी हो जायगा। प्रयत्न इस विषय में बढ़िया हो रहा है। सरकार ने श्रमियों तथा किसानों से अपने पराने वचनों के कारण उनका मूल्य बढ़ा अवश्य दिया है, सो भी कुछ अनुचित शीघ्रता से। इससे यहाँ का माल ऊँचे दामों पर बनने लगा है, जिससे न तो उसे भारतीय समुचित मात्रा में मोल ले सकते हैं, न बाहरवाले ही इसी से सोच-समझकर अब सरकार को शिल्प-व्यापार-संबंधी ऊँचे कार्यकर्ताओं पर भी भारी दबाव डालने का साहस उचित प्रतीत नहीं होता। इस पर उधर से समाजवादी, साम्यवादी आदि गला फाड़े रक्खे देते हैं कि सरकार संपत्तिवादिनी हो गई है, जो बात नितांत मिथ्या है। आजकल मध्यश्रेणी की नागर जनता व्यय-वृद्धि से जैसी इतर प्रांतों में नीचे गिरती जाती है, उससे भी बुरी दशा बंगाल में है। जितनी कुछ कठिनता जनता में पड़ती है, उसके कारण कुछ भी हों, किंतु साधारण जनता अप्रसन्न सरकार ही से होती है। यही विकट प्रश्न आजकल बंगाल में उपस्थित है। सारे बंगाल का नेता कलकत्ता है, जहाँ निम्न-श्रेणी की विद्वन्मंडली को इस समय, पूर्वी बंगाल के निकल जाने से, नौकरियों के मिलने में और भी कठिनता पड़ी हुई है। कहते ही हैं कि जो कलकत्ता सोचता है, वही शेष बंगाल सोचने लगता है। बीसवीं शती के प्रारंभ में बंगाल का यह भी दर्प-पूर्ण कथन था कि जो बंगाल आज सोचता है, वही शेष भारत कल सोचने लगता है। प्रयोजन यह कि बंगाल अपने को शेष भारत का नेता समझता था, किंतु १६११ में, जब से बंग-भंग टूटा, तब से यह नेतृत्व न-जाने क्यों विलीन हो गया।

शायद राजधानी के कलकत्ते से दिल्ली उठ जाने का भी कुछ प्रभाव इस बात पर पड़ा हो। जो हो, १६११ के पश्चात् पहले तो लोकमान्य तिलक महोदय का प्रधान नेतृत्व रहा, और पीछे महात्माजी का तथा उनके प्रधान सहायक नेहरू, पटेल आदि का। अब भी केंद्र में नेहरू, पटेल, राजगोपालाचारी, राजेंद्रप्रसाद जी आदि की ही महत्ता है। अब बंगाल कांग्रेस-नीति से निकलकर अग्रगामी नीति में जानेवाला है, ऐसा भय उपस्थित है। इस काल तो सभाओं तथा रियासती यूनियनों में कांग्रेसी नीति का बोल बाला है। जब किसी प्रांत में अग्रगामी दल या किसी अन्य पार्टी का महत्त्व होगा, तब विधान कैसा चलेगा, सो देखना है। इन दिनों बंगाल में केंद्र से मतभेद की संभावना देखकर हमारे भारतभूषणजी अपने पुत्र को बैरिस्टरी के काम पर लखनऊ में छोड़कर देशोपकारार्थ सेठजी को सपत्नीक साथ लाकर कलकत्ते पधारे। यहाँ आपने समझाने के विचार से कुछ कम विद्वान् दो बंगाली बालकों से बातचीत भी चलाई।

भारतभूषण—"क्यों भाइयो! आजकल बंगाल में कांग्रेस गवर्नमेंट से कुछ असंतोष-सा कैसा दिखता है?"

गगनचंद्र—"पंडितजी महोदय! आप तो कोई कांग्रेसी नेता हैं नहीं, वरन् देश तथा कांग्रेस के शुभेच्छु-मात्र हैं। वास्तव में हम दोनो आपको भारत के सच्चे प्रतिनिधि मान सकते हैं। आपका नाम सारे देश में फैला हुआ है, तथा सभी लोग आपकी प्रशंसा करते हैं।"

भारतभूषण—"ऐसा प्रशंसनीय तो मैं नहीं हूँ, न ऐसा प्रसिद्ध ही हूँ। मैं तो लखनऊ में वकालत मात्र करता आया हूँ। वहाँ स्वेच्छा से कुछ देश का भी काम कर देता हूँ, जिसमें कांग्रेस का भी न्यूनाधिक हित हो जाता है, क्योंकि मैं उसी को सर्वोत्कृष्ट देश-हितकारिणी संस्था समझता आया हूँ।"

ज्योतिचंद्र—"आपका कथन उचित ही है। यद्यपि १६११ के पीछे से हमारे बंगाल ने देशबंधु के अतिरिक्त कांग्रेस में कोई विशेष भाग नहीं लिया, फिर भी हम लोगों ने कभी उससे अश्रद्धा प्रकट नहीं की।"

भारतभूषण—"इसी कारण तो जानना चाहता हूँ कि स्वतंत्रता-संग्राम का दीर्घकालीन समर्थन करके आजकल उसकी प्राप्ति के बहुत ही थोड़े समय के पीछे बंगाल बंग-भंग तक को सुख-पूर्वक मानकर भी कांग्रेसी राज्य-प्रबंध से कुछ उदासीन-सा क्यों हो रहा है?"

ज्योतिचंद्र—"हम लोगों ने स्वातंत्र्य की आशा से कांग्रेस का कभी विरोध नहीं किया, किंतु उसका फल ऐसा उलटा दिख रहा है कि स्वराज्य से ही अश्रद्धा-सी हुई

जाती है। सभी वस्तुएँ बाबा-मोल बिक रही हैं। साधारण आह्निक व्यवहार की वस्तुएँ भी चौगुने-पचगुने दामों पर मिलती हैं। उधर बिक्रियों पर भी टैक्स लगाया गया है, जिससे और भी दाम बढ़ रहे हैं। हम निर्धनों की शुक्लजी महाराज! गुजर कैसे हो?"

भारतभूषण—"यही सब कठिनाइयाँ देखकर तो अँगरेजों ने अपना जमा-जमाया राज्य छोड़ा। यदि यह दिन आने को उन्होंने न सोचा होता, तो साढ़े सात सौ वर्षोंवाली आपकी दासता की शृंखला ही क्योंकर टूटती? लोग दशाब्दियों-पर्यंत कठिन युद्ध करके तथा लाखों देश-वासियों को कटवाकर और अरबों व्यय द्वारा जो पद पाते हैं, वही अलभ्य पद आपको बिना मोल दिए सुगमता से मिल गया है। क्या आप समझते हैं कि आगे-पीछे कभी भी उसका कोई मूल्य न देना पड़ेगा? समझिए तो सही, भाईजी! आपको एकाएकी कैसा अलभ्य रत्न मिल गया है। जिसकी आशा पहले कभी स्वप्न में भी न होती थी, उसके लिये दस-पाँच साल भी थोड़ा-सा अनिवार्य कष्ट भोगना आपको असह्य हो गया है। अपने सौभाग्य की सराहना न करके उलटे रोने में आपको लज्जा भी नहीं लगती।"

गगनचंद्र—"सौभाग्य से प्रसन्न तो बंगाल भी है, और जिस बंग-भंग को वह प्राणांत से भी निकृष्टतर समझता था, उसे अपने ही वोट से स्वीकार किए बैठा है। एक-एक वोट के लिये हमारे प्रतिनिधियों को दो-दो लाख रुपए मिल रहे थे, फिर भी किसी ने उसकी ओर आँख भी न उठाई।"

भारतभूषण—"इसके लिये भारत आपको हृत्तल से धन्यवाद देता है, किंतु स्मरण यह भी रखना चाहिए कि आपके प्रतिनिधि तो ढुलके जाते थे, और धन से पश्चिमी बंगाल-भर की स्वतंत्रता भी बेचकर मुसलमानी दास बने जाते थे, किंतु महात्मा गांधी ने इसका पता पा लिया, और हाहाकार मचा दिया, जिससे यह नारकीय लीला बंद हो गई। इस प्रकार की वार्ता उस काल उठी बहुत थी, चाहे सत्य हो या असत्य।"

गगनचंद्र—"बात महात्माजी ने अवश्य उठाई थी, किंतु हम बंगालियों ने भी तो प्रतिनिधियों को धमकाया था कि ऐसा लालच जिसने किया, उसे बच्चों-स्त्रियों-समेत मार दिया जायगा।"

भारतभूषण—"यह तो गुप्त बात थी, जो असत्य भी हो सकती है।"

ज्योतिचंद्र—"फिर भी सारे पश्चिमी बंगाल ने सुख से शेष भारत का साथ तो दिया।"

भारतभूषण—"जिन पूर्वी बंगालवाले हिंदुओं को अवश्य पाकिस्तान में रहना

पड़ा, वे बेचारे तो प्रायः बीस लाख की संख्या में यहाँ भाग आए हैं। यदि उस समय पश्चिमी बंगाल मूर्खता कर जाता, तो उसकी क्या दशा होती, सो भी विचारणीय है।"

ज्योतिचंद्र—"इस पर तो किसी का मतभेद नहीं है। कहना हम लोगों का केवल इतना है कि अब जो असह्य वेदनाएँ भोगनी पड़ रही हैं, उनका सरकार कोई प्रबंध क्यों नहीं करती? लवण-कर उठाने, शराब-बंदी में शीघ्रता करने में तो वह धन-कुबेर हो रही थी, और करोड़ों का लालच न किया गया। यह क्यों न सोचा गया कि प्रजा भूखों मर रही है?"

भारतभूषण—"आज तक एक भी व्यक्ति मरने तो नहीं पाया है। ब्रिटिश राज्य में ही बिना अकाल २५ लाख से ऊपर बंगाली मक्खियों की भाँति भूखों मर गए। इधर सरकार को करोड़ों का धन शरणार्थियों के सँभालने में व्यय करना पड़ा है। यदि नवराज्य स्थापित होते ही यह भारी विपत्ति न आ पड़ती, तो प्रजा को इतना भी कष्ट न होता। मद्य-निराकरण तथा लवण-कर-त्याग पुराने दृढ़ वचनों के पालनार्थ-मात्र हुए। अब केंद्र की दृष्टि उन विषयों पर भी बदल रही है। इतना और समझना चाहिए कि पाकिस्तान के बनने से धान्य उपजानेवाली सिंचाई की भूमि उसमें बहुत कुछ पड़ गई। जब तक नए भारी बंधे आदि न बनें, तब तक अनाज का पहले-सा प्रबंध असंभव है। इसका डौल डाला जा रहा है, किंतु इसके लिये पूरी सफलता दस-बीस वर्षों में ही संभव है। बीच में भी अनेकानेक प्रकारों से उपज बढ़ाने के प्रयत्न हो रहे हैं। क्या अलभ्य स्वातंत्र्य पाने तथा बेचारे लाखों हिंदू-शरणार्थियों के बचाने में चार छ वर्षों का भी कष्ट जनता को असह्य है?"

गगनचंद्र—"असह्य तो कुछ भी नहीं है, पंडितजी! यदि वह अनिवार्य हो। आजकल सरकार संपत्तिवादियों के पिष्टपेषण में क्यों संलग्न है? समाजवादियों या साम्यवादियों की बात क्यों नहीं सुनती?"

भारतभूषण—"मित्रो, रूस में साम्यवादियों का राज्य १९१७ में स्थापित हो गया था, तो भी पूरे इक्कीस वर्षों तक स्वयं उनका भी कुछ किया-धरा न हुआ। इधर १९३८ में उनका जैसा-तैसा प्रबंध बैठा है। जब दो ही वर्षों में यहाँ आप लोगों का साहस छूटा जाता है, तो भला २१ वर्षों तक धैर्य धारण कौन करेगा? फिर आज तक रूसी जनता की वह उन्नति नहीं हुई, जो अमेरिका एवं इँगलैंड में है। चीन ने जन-सत्तात्मक राज्य १९११ में ही स्थापित कर लिया था। फिर भी साम्यवादियों का बहुत कुछ बल होकर भी वहाँ क्या आज तक जनता प्रसन्न हो

सकी है ? यदि यहाँ भी साम्यवादी सिद्धांतों के अनुसार राज्य-परिचालन का प्रयत्न हो, तो आंतरिक दंगा अवश्य मच जाय, और लाखों-करोड़ों लोग भूखों तक मरें अथच आपसी युद्धों से भी। यदि सरकार चाहे भी, तो सुगमता-पूर्वक यहाँ साम्यवादी शासन-प्रणाली स्थापित नहीं हो सकती। इसके लिये चीन में जैसा धन-जन-विनाश हुआ है, वैसा ही यहाँ भी हो। अभी तो संपत्तिवादी अमेरिका और ब्रितानिया ने हमको सुख-पूर्वक स्वतंत्रता भी दे दी है। यदि हम साम्यवादी बनने की इच्छा करें, तो रूस का सहारा लेना ही पड़े। ऐसी दशा में क्या निश्चय है कि करोड़ों जन तथा अरबों-खरबों की संपत्ति खोकर भी हम, आज के समान, संसार में स्वतंत्र समझे जा सकेंगे? यहाँ तक कहा जाता है कि आज भी रूस में लाखों लोगों के साथ दासता का व्यवहार किया जाता है।"

गगनचंद्र—"आप तो, पंडितजी! रूस का आवश्यकता से बहुत अधिक काला चित्र खींचते हैं। जो लोग वहाँ गए हैं, वे वहाँ की जनता की प्रसन्नता का वर्णन करते हैं। यदि वहाँ की जनता वास्तव में अप्रसन्न होती, तो जर्मन महायुद्ध के समय स्वराज्य का समर्थन क्यों करती? उस काल तो रूसी राज्य पर प्राणघाती संकट पड़ा हुआ था। ऐसे समय में अप्रसन्न जनता स्वराष्ट्र के समर्थन में कभी प्राण देकर यत्नवती न होती।"

भारतभूषण—"उस काल तो सारे संसार को विश्वास था कि जर्मनी विजित देशों के साथ बड़ा ही कठोर व्यवहार करता है, यहाँ तक कि स्वयं जर्मनी में किसी की सम्मति न चलकर केवल हिटलर का आदेश चलता था। स्वयं उसी के उच्च सेना-पति उस काल स्टैलिनग्राड का युद्ध चलाना बहुत ही अनुचित समझते थे, जब ढाई-तीन लाख जर्मन सेना वहाँ घिरी जा रही थी। फिर भी हिटलर ने मूर्खता-वश अपनी वह विशाल सेना घिर जाने देकर समाप्त हो जाने दी, किंतु युक्ति-पूर्वक वहाँ से निकलने न दिया, जो बात उस काल सुगमता-पूर्वक संभव थी। ऐसे आततायी बाह्य विजयी की अधीनता में यदि रूसी जनता ने जाना पसंद न किया, तो इससे रूसी राज्य-प्रणाली से उसकी पूर्ण सहानुभूति सिद्ध नहीं होती। प्रत्येक देश के लोग यथासाध्य अपने देश का पराजित होना पसंद भी नहीं करते। फिर अभी रूसी राज्य भी पूर्णतया संकट के बाहर नहीं है। वह सारे संसार में साम्यवाद स्थापन का उद्दाम प्रयत्न कर रहा है, जिससे आगे-पीछे उसकी भिड़ंत अमेरिका तथा उसके सहायक देशों से अवश्यंभावी-सी दिखती है। यह कोई नहीं समझ सकता कि रूस, वर्तमान दशा में, अमेरिकन उपज का सामना कर सकेगा। फिर उसके

अटम तथा हाइड्रोजन बमों का मोर्चा अलग लगा हुआ है। जापान हारा न था, फिर भी केवल दो ऐसे बमों के प्रहार से उसे आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। क्या निश्चय है कि रूस इन प्रहारों को सँभाल लेगा? फिर यदि भारत रूस की ओर जाय, और युद्ध छिड़े, तो ऐसे दस-ही-पाँच बमों से अपने कलकत्ता, बंबई, मदरास, हैदराबाद, कानपुर, लखनऊ, दिल्ली आदि समाप्त हो जायँ। तब पता चलेगा कि साम्यवाद का रोर मचाने का क्या फल तुरंत प्राप्त हो सकता है? बात यह है कि भारत की स्वतंत्रता सस्ते दामों पर, बिना समुचित प्रयत्नों के, मिल गई है। सौ-दो सै वर्षों के भीतर इसने कोई घोर विपत्ति नहीं उठाई। इससे हमारे बहुतेरे अधीर लोगों को समझ पड़ने लगा है कि हम जो चाहें, कर ले जायँ, कभी कोई विपत्ति आएगी ही नहीं। समझना चाहिए कि रूस का क्षेत्रफल भारी है, तथा उसने अपने सारे ऊँचे कारखाने यूराल पहाड़ के पूरब पहले के उजाड़ तथा प्रचंड शीत-प्रधान साइबेरिया में लगा लिए हैं। उन पर बम चलाना आजकल सुगम भी नहीं है, क्योंकि सारे रूस पर उड़कर वहाँ जाना होगा, जो लड़ाकू वायुयानों के लिये असंभवप्राय है। इधर भारत में बड़े-बड़े शिल्प वाणिज्य के केंद्र समुद्र के किनारे या निकट कलकत्ता, बंबई, अहमदाबाद आदि में हैं, जिन पर बम-प्रहार अत्यंत सुगम है। अतएव रूस से यदि हम मिलें, तो वह बमों द्वारा अर्दित होकर भी हारे या न हारे, किंतु हमारा चार ही दिनों में कहीं पता न लगेगा। यहाँ की दशा उन भेड़ों के बच्चों के समान दिखती है, जो बाड़े में बंद होने से बाहर जाकर रात में चांद्र ज्योत्स्ना में फिरने का आनंद लेना चाहते थे, फिर जब वहाँ भेड़ियों का सामना हो गया, तब पछताकर भागे किंतु उस पछतावे से काम नहीं चल सकता था।"

गगनचंद्र—"यह तो, शुक्लजी ! मेरी भी समझ में आया कि अमेरिका और बिर्तानिया से बिगाड़ करने से रूस की सहायता पाकर भी हमारा कल्याण कठिन है। अब कृपया यह बतलाइए कि बाह्य भय के अतिरिक्त साम्यवाद आंतरिक प्रकार से भी यहाँ चल सकता है या नहीं?"

भारतभूषण—"आंतरिक प्रकार से भी चलना कठिन है। जब सारे धनियों का धन छीना जायगा, तब अमेरिका आदि की सहायता हमें प्राप्त न रहेगी, तथा जैसी दशा बर्मा में है, वैसी यहाँ भी हो जायगी। सारे धनी पाकिस्तान, बर्मा, सीलोन मलाया आदि को भागेंगे। यहाँ का सारा शिल्प-वाणिज्य बैठ जायगा और सरकारी आय गिर जायगी, जिससे न तो बाहर से समुचित मात्रा में अनाज आ सकेगा, न प्रबल सेना रक्खी जा सकेगी। निर्बलावस्था में कोई भी शत्रु देश

दबाने लगेगा, और हम उसकी रक्षा न कर सकेंगे। फिर सारा भारत तो साम्यवादी हो न जायगा; ऐसी दशा में अकेला पश्चिमी बंगाल केंद्री सम्मति के प्रतिकूल ऐसी उद्दंड नीति चला भी न सकेगा। वास्तव में आपका बंगाल किसी प्रधान सिद्धांत पर है भी नहीं। उसे तो बंगाली होने-मात्र का अभिमान है। 'आमार बाँगला देश' ही उसका मूल मंत्र है। वंदे मातरम् का जातीय गीत भी बना, तो केवल सात करोड़ (बंगाली) जनता के लिये न कि तीस करोड़ (भारतीयों) के अर्थ। जब तक बंग-भंग पर सारे देश का संगठन नहीं करना था, तब तक आप लोगों ने कांग्रेस पर भी कभी विशेष ध्यान नहीं दिया, और बंग-भंग के हटते ही फिर वही उदासीनता कांग्रेस से आ गई। लोकमान्य तिलक के गरम विचारों का समर्थन बंगाल ने न किया, और महात्माजी के प्रतिकूल भी स्वराजिस्ट विचार चलाए, जिनके देखते हुए महात्माजी की विचार-धारा बहुत खरखरी थी। फिर थोड़े ही दिनों में जब नेताजी ने उनके मत से भी कठोरतर अग्रगामी विचार चलाए, तब वही नरम दल का समर्थक बंगाल नेताजी का सहायक होकर और भी खरखरे विचार चलाने लगा। इन प्रकट घटनाओं से क्या प्रत्यक्ष प्रमाणित नहीं होता कि बंगाल यदि शेष भारत से कोई संबंध नैतिक रूप में कभी रक्खेगा, तो केवल नेता बनकर, न कि किसी अन्य योग्य-से-योग्य नेता के अनुगामी के रूप में। उसे तो यह दर्पोक्ति प्रमाणित करनी है कि नव-विचारोत्पादन केवल बंगाली मस्तिष्क-प्रबलता का काम है, किसी अन्य भारतीय प्रांत का नहीं।"

ज्योतिचंद्र—"शुक्लजी महोदय! यह कुछ उद्दंड-सा मत दिखता है।"

भारतभूषण—"है तो ऐसा ही, और मुझे बड़े दुःख से इस पर आना पड़ा है। आज कोई भी बड़े-से-बड़ा भारतीय प्रांत केंद्रीय राजनीति का सामना करने का स्वप्न में भी विचार नहीं कर रहा है। इधर बंगाल पहले तो स्वतंत्र होना चाहता था, चाहे ऐसा करने में मुसलमानी बहुमत के शासनाधीन भले ही हो जाता, और जब मुसलमानों ने यह औंधा विचार न अपनाया, तब एक छोटा-सा निर्बल प्रांत होकर भी पश्चिमी बंगाल केंद्र के प्रतिकूल दुलत्तियाँ झाड़ने के स्वप्न देख रहा है। यदि अभी कल यहाँ की साम्यवादिनी बन जानेवाली धारा-सभा की सम्मतियों का मान न करके केंद्र गवर्नर द्वारा शासन चलाने लगे, तो आप लोग क्या कर सकते हैं? केवल आपके औंधे मानस से शेष सारे भारतीय प्रांत साम्यवादी तो हुए नहीं जाते। तब ऐसे कर्कश विचारों का मान बढ़ाने के प्रयत्न में आप लोग अपने ही से भारतीय सहानुभूति खो रहे हैं कि नहीं? यदि

वह आप ही के प्रांत के खंड करके जिले बिहार, उड़ीसा, आसाम आदि में लगाकर केवल कलकत्ता अलग रख छोड़े, तो आप क्या करें ?"

गगनचंद्र—"अभी ऐसा कुछ हो तो नहीं रहा है।"

भारतभूषण—"सो तो नहीं है, किंतु आनेवाली घटना-समूह की छाया-सी सामने है अवश्य।"

गगनचंद्र—"अच्छा, मैं कहता हूँ कि कांग्रेसी प्रांतिक मंत्रियों में जो किसी-किसी के उत्कोच लेने की बातें सुन पड़ती हैं, वे कैसी हैं ?"

भारतभूषण—"ऐसी बातों में तिल का ताड़ प्रायः बन जाता है। फिर इस कथन का आधार क्या है कि कोई प्रांतीय मंत्री उत्कोच-ग्रहण के दोषी हैं ? बिना प्रमाण के कोई बात मानी कैसे जा सकती है ? कुछ लोगों को थोड़े-से अनिश्चित कारणों पर संदेह हो गया, और हवा बँधने लगी। यहाँ तक निराधार रीत्या कहा गया कि अँगरेजी राज्य में सरकार भारत के प्रतिकूल होकर यहाँ की समुचित उन्नति न करके केवल झगड़े-झमेले बचाए रहती थी तथा बितानिया को लाभ पहुँचाती थी, किंतु उसके ऊँचे कर्मचारी व्यक्तिगतरीत्या ईमानदार थे। इधर अब सरकार तो ईमानदार है, किंतु ऊँचे कर्मचारियों में भी 'एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है'वाली दशा चल रही है। मेरा विचार है कि ऐसे निर्मूल कथनों में कोई सार नहीं है।"

ज्योतिचंद्र—"फिर मोटर आदि खरीदने के लाइसेंस बहुतायत से केवल कांग्रेसियों को क्यों मिले, जिन्हें औरों के हाथ बेचकर उन लोगों ने हजारों कमाए ?"

भारतभूषण—"यह कथन कांग्रेसी मंत्री श्रीशंकरराव देव के कथन से कुछ-कुछ समर्थित है। हुआ ऐसा थोड़ा ही होगा। सिद्धांत-रूपेण असमर्थनीय होकर भी उन्हीं ने कहा है कि प्रायः आधी शताब्दी तक जेल भुगतकर और भाँति-भाँति के अत्याचार सहकर यदि एक बार उन्हें दो-चार सहस्र का पारितोषिक मिल गया, तो कौन-सी बड़ी बात हो गई ? कुछ मानुषीय न्याय-पथ पर भी ध्यान देना चाहिए।"

गगनचंद्र—"ऐसी ही ऐसी बातों से तो ग्रामीण जनता में भी कांग्रेसियों का मान लुप्तप्राय हुआ जाता है।"

भारतभूषण—"इन बातों के कुछ कारण भी निम्न-श्रेणी के थोड़े-से कांग्रेसियों में मिल अवश्य गए हैं। किंतु उनके सुधारने के प्रयत्न बड़ी तीव्रता के साथ हो रहे हैं। तो भी कहना पड़ेगा कि यहाँ की ग्रामीण जनता स्वराज्य चलाने की पात्रता

का परिचय नहीं दे रही है। केवल स्वार्थपरता से ऊँचे देशीय मामले नहीं सुलझते। १६२६ में कांग्रेस ने सरकार से लड़-भिड़कर युक्त प्रांत में लगान आधा करा दिया था। इधर उपज के दाम चौगुने-पचगुने हो गए हैं, किंतु लगान न बढ़ाया गया, यद्यपि पहले के देखते हुए वह अष्टमांश या दशमांश-मात्र रह गया है। फिर भी जब सरकार ने नागर जनता की जीविकार्थ थोड़ा-सा अनाज लिया, तो उन्हीं किसानों ने कौआ-रोर मचाया, यद्यपि पहले के देखते हुए वे सेठों-से हो गए हैं। जो कांग्रेस उनके लिये जान देती फिरती थी, उसी के प्रतिकूल अप्रसन्नता प्रकट करने में उन्हें लज्जा नहीं लगती, यद्यपि जानते यह भी हैं कि जमींदारों को मेटकर सरकार आज भी उन्हें भूमिधर बना रही है। आचरणों की उच्चता कुछ तो रखनी ही पड़ती है। केवल इतना सुनकर कि कौआ कान ले गया, उन्हें बिना अपना शरीर देखे ऐसे कथनों की यथार्थता तो न मान लेनी चाहिए। यदि प्रत्येक व्यक्ति हर बात में दस का लाभ पाकर एक की हानि होने से भी सरकार से अप्रसन्न ही रहे, तो सबको प्रसन्न करने को कुबेर का कोष कहाँ रक्खा है? स्वराज्य चलाने के लिये कुछ तो चरित्र-बल की आवश्यकता है ही।"

ज्योतिचंद्र—"यहाँ बंगाल में तो, शुक्लजी! हम लोग यही समझते हैं कि अभी नेताजी कहीं जीवित हैं, और यहाँ इसलिये नहीं आते कि उनके प्रतिकूल जो अदालती कार्यवाही चल रही थी, वह अभी स्थगित नहीं की गई है, जिससे यहाँ आने से उन्हें ब्रिटिशों के यहाँ भेजे जाने का भय है।"

भारतभूषण—"ऐसे ओछे विचार रखने से आप स्वयं नेताजी के आचरण को बहुत नीचा मान रहे हैं। जब हजारों-लाखों साधारण कांग्रेसी जेल जाने से न डरे, तो इतना बड़ा प्रांतीय क्या भारतीय नेता ऐसा भीरु कैसे हो सकता है? ऐसी बातों पर विश्वास करना आप ही लोगों के विचार-दौर्बल्य का प्रमाण-सा दिखता है।"

गगनचंद्र—"आपने, पंडितजी महोदय! शिक्षाएँ तो ऐसी अनमोल दी हैं, जिनके उत्तर हमें तो समझ पड़ते नहीं, तो भी कहते ही हैं कि 'संतो भूखे भगति न होई।' यहाँ मध्यम श्रेणी की जनता आजकल प्रचंड महँगी के प्रचार तथा समुचित व्यापाराभाव से भारी कष्ट में है। जब तक इसका कोई उपचार न होगा, तब तक जनता का असंतोष न मिटेगा।"

भारतभूषण—"यह तो न केवल यहाँ का, वरन् सारे भारत का इस समय सबसे विकराल प्रश्न है। स्वयं योरपीय देशों में भी त्राहि-त्राहि मची हुई है।

कलकत्ते के लोग यहाँ व्यापार की ओर ध्यान न देकर केवल पढ़ने में चित्त लगाते हैं। यहाँ तक दोष नहीं, किंतु पढ़कर आप लोग नौकरी ढूँढ़ते फिरते हैं। जब तक अन्य प्रांतों में विद्या का प्रचार न था, तब तक आप लोगों की खपत यत्र तत्र होती रही। अब वहाँ भी बाहरी लोगों की आवश्यकता नहीं। सरकार चर्खों, इतर घरू कामों, छोटे व्यापारों आदि के चलाने के प्रयत्न कर रही है। आप लोगों को उनमें भी यथोचित ध्यान देना चाहिए। यही कलकत्ते में सहस्रों माड़वारी बालक बिना सेवा-वृत्ति के सैकड़ों-हजारों कमा डालते हैं। आप उनके, वैश्यों आदि के काम तुच्छ समझते हैं, जो भारी भूल है। बिना अपनी विचार-धारा बदले आप लोगों का कल्याण नहीं दिखता। मध्य-श्रेणीवालों को साधारण काम भी करने लगना चाहिए।"

इस प्रकार देर तक वार्तालाप के पीछे यह सभा समाप्त हुई, और ये लोग अपने-अपने कामों में लगे।

दशम परिच्छेद

बंगाल में उपदेश और घटना-चक्र

उन्नीसवीं शती के प्रारंभ में फ्रांसीसी योद्धा तथा पीछे सम्राट्, नैपोलियन बोनापार्ट ने सारे योरप को अपने पराक्रम से हिला डाला। इटली, मिस्र, स्पेन, आस्ट्रिया आदि को उसने जीत ही लिया। इँगलैंड और जर्मनी ने डटकर उसका सामना किया, किंतु पराजित ये भी हो जाते, तथापि उसने भारी भूल रूस पर आक्रमण करने की कर दी, जहाँ के प्रचंड शीत से उसकी प्रायः चार लाख सेना नष्ट हो गई, तथा उसका बल सदा को टूट गया। उसकी इच्छा भारत को भी जीतने की थी। अनंतर जर्मनी और बिर्तानिया की मिलित सेना ने उसे जीत लिया, और अंत में वह सेंटहेलेना के टापू में बंदी के रूप में मरा। अब बिर्तानिया का प्रभाव बढ़ा, और १८१८ से वह भारतीय साम्राज्य का स्वामी हो गया। अब तक रूस की विशेष महत्ता न थी, यद्यपि देश बड़ा तब भी था। वहाँ एकाधीन शासन था, और सम्राट् जार कहलाते थे। फ्रांस का बल भारत में दब गया। समय पर अमेरिका, बिर्तानिया, फ्रांस और जर्मनी की महत्ता बढ़ी। अब तक समाजवाद, साम्यवाद आदि के प्रश्न बल से न उठे थे। रूसी एकाधीन शासन प्रजा को बहुत कुछ खटकता था, जिससे साम्यवादी आग वहाँ धीरे धीरे सुलगने लगी। उन दिनों सैकड़ों-हजारों आंदोलन-कर्ता साइबेरिया के काले पानी में भेजे जाते थे। बीसवीं शती के प्रारंभ में जापान का भी प्राधान्य बढ़ा। इससे पूर्व ही वह चीन को हरा चुका था, और अब उसने रूस को भी हराकर महाशक्तियों में पदार्पण कर दिया। यहाँ भारत में भी, जापानी एशियायी शक्ति द्वारा रूस-सी एक प्रधान योरपीय शक्ति के दमन से, आत्मविश्वास तथा देश में प्रेम-गर्भित जातीयता के भाव बढ़ने लगे। कांग्रेस १८८५ से ही कार्य कर रही थी; किंतु बंग-भंगवाले आंदोलन के पूर्व उसमें महत्ता न थी पहले तो भारत से संबद्ध ब्रिटिश मंत्री ने इसे एक निर्णीत घटना कहा, तथापि पीछे आंदोलनों की प्रचंडता से प्रभावित होकर भंग कर दिया। इतने ही में १९१४ से १९१८-पर्यंत प्रथम संसारव्यापी महायुद्ध होता रहा। जर्मनी प्रबल बहुत पड़ गया था, फ्रांस तथा रूस मिलकर भी उसे एकाएकी हरा न पाते थे। उधर १९११ में

चीन ने अपने सम्राट् को पदच्युत करके प्रजा-सत्तात्मक राज्य स्थापित किया था, किंतु वहाँ के विविध सेनापतियों में मार-काट मची ही रही, और दृढ़ शासन स्थापित न हो सका। संसारव्यापी महायुद्ध के कारण इतर महाशक्तियाँ उस पर ध्यान भी न दे सकीं। इतने ही में, आंतरिक आंदोलनों के द्वारा बल बढ़ाकर रूसी साम्यवादिनी जनता ने १९१७ में, सारी सेना मिला ली, फलतः जार पदच्युत होकर थोड़े ही वर्षों में सकुटुंब मार डाले गए। कुछ रूसी राजन्य वर्ग यत्र-तत्र भाग भी निकले. किंतु सारी महत्ता खोकर १९१८ में जर्मनी पराजित हो गया। युद्धोपरांत देशों का जो विभाजन हुआ, वह वैज्ञानिक और चिरस्थायी होने के योग्य न था। जर्मनी के सारे उपनिवेश छिन गए। वहाँ के यहूदियों ने सारे संसार के सभी देशों में बसे हुए यहूदियों से तो अपना निकट का संपर्क माना, किंतु स्वयं स्वदेश जर्मनी से विद्रोहात्मक व्यवहार किया। जर्मन-पराजय का यह भी एक बड़ा कारण था। इसी संबंध में अंतरराष्ट्रीय राजमंडल 'लीग ऑफ् नेशंस' के नाम से बना, किंतु अमेरिका अपना देश ऐटलांटिक महासागर के पार समझकर शेष संसार के झमेलों से अपने को असंबद्ध मानता तथा उनसे पार्थक्य की नीति को ठीक समझता था। अतएव अंतरराष्ट्रीय राजमंडल में वह सम्मिलित न हुआ, और वह बल से हीन रहा। उधर बितानिया और फ्रांस की राजमडल में पैंतरेबाजी होने लगी, जिससे जर्मनी की शक्ति फिर दृढ़ हो गई, तथा उसके नेता हर हिटलर ने प्राचीन दुष्कर्मों के कारण यहूदियों को बड़ी निर्दयता-पूर्वक लूटा, तथा देश से निकाल दिया। चीन अब तक आंतरिक झगड़ों और मारकाटों से न तो मुक्त हुआ था, न सबल।

उधर रूस में साम्यवादी राज्य स्थापित हो गया। वह प्रधानतया खेतिहर देश था। वहाँ जोताई बैलों से न होकर घोड़ों से होती थी। अधिकारियों ने आज्ञा देदी कि प्रत्येक सधन व्यक्ति की संपदा राज्य की समझी जाय। जिसके दो तक जोतू घोड़े थे, वह साधारण किसान माना गया और जिसके तीन तक थे वह सधन। सारे धनी लोग बिलला-बिललाकर यत्र-तत्र भागे। जिनके अधिक घोड़े थे, उनमें से बहुतों ने उन्हें बिरादरी-नातेदारी आदि में छिपा-छिपाकर भेज दिया। हजारों धनी लोग पहले ही मार डाले गए थे। जिनकी उपर्युक्त कृतियाँ प्रमाणित हो गईं, उन्हें भी प्राण-दंड मिले। अनंतर जिसने जितनी भूमि जोतने को माँगी, उसे बेदाम मिल गई। जब खेतों की उपज पक गई, तब आज्ञा हुई कि जिस-जिसके घर में जितने खानेवाले हों, उन्हीं के अनुसार नियत मात्रा में वह अपनी उपज ले लें, तथा शेष काटकर और तैयार करके सरकार में जमा कर दें। इस आज्ञा से जिन खेतिहरों ने अपने-अपने

परिश्रम से भारी-भारी अन्नकूट उत्पन्न किए थे, वे मानो पेड़ों से गिर पड़े। कृषकों ने जितनी उपज जिस-जिसको मिलने की आज्ञा थी, उसे बनाकर ले लिया, तथा शेष पके-पकाए खेत काटे ही नहीं, न सरकार से उनका कुछ प्रबंध हुआ। फल यह हुआ कि वह सारा अनाज समय के साथ नष्ट हो गया और देश में अकाल पड़ गया, जिससे लाखों लोग भूखों मरने लगे। इस बात की सूचना रूसी प्रधान नेता के पास पहुँची, तो उसने कोई प्रबंध उनके लिये करने से स्पष्ट नाहीं कर दी, और कहा कि ऐसे स्वार्थी जंतुओं को मरना ही उचित है। बहुतेरे लोग हाहाकार करके भागे, किंतु जाते कहाँ और उन्हें खाना कौन देता, क्योंकि किसी कुटुंब के पास अपने खाने-भर से अधिक अनाज रक्खा ही नहीं गया था। फलतः लाखों आदमी भूखों मर गए। दैवयोग से देश में अकाल भी पड़ा, और मृतकों की संख्याएँ अगणित हो गईं। कई स्थानों पर स्त्रियों के राष्ट्रीयकरण का भी नियम चला। संपत्ति का राष्ट्रीय-करण तो पहले ही हो चुका था।

किसी को स्वयं अपने तथा कुटुंब के खाने-पहनने-भर से अधिक अनाज, कपड़े आदि मिलते तो थे ही नहीं, सो लोगों ने उपज की चिंता छोड़ दी। किसी को न तो अच्छा खाने को मिलता था, न पहनने को। सड़कों पर घास उग आई। सारी देशीय सभ्यता चौपट होने लगी। दरिद्रता के दुस्सह रूप ने सब कहीं सिर उठाया। सारी उन्नति होती तो अंत में धनाधीन ही है। उधर किसी को अपने परिश्रम का आवश्यकता से अधिक फल तो मिलना ही न था, सो व्यर्थ की मेहनत करे कौन? जब सारे देश की प्रचंड दुर्दशा हो गई, तब प्रबंधकों ने सोचा कि ऐसी नीति से काम न चलेगा। तब समय-समय पर अनेकानेक परिवर्तनों के पीछे अंत में यह नियम स्थापित हुआ कि सभी को अपनी उपज और परिश्रमों के पूर्ण फल मिलेंगे, किंतु संपत्ति द्वारा अपने ही हाथों से कोई भले ही व्यापार, शिल्पादि कर ले, किंतु किसी नौकर द्वारा ऐसा न करा सके। इंजिनियर, वैज्ञानिक आदि प्रवीण लोगों को वहाँ पारिश्रमिक अब बहुत कुछ मिलता है किंतु घरू काम भी प्रायः सबको अपने ही हाथों करना पड़ता है। घरू कामों के लिये एक नौकर तो साधारण व्यय से रक्खा जा सकता है, किंतु एकाधिक सेवकों के लिये राजनियमों के कारण व्यय बहुत आधिक्य से करना पड़ता है, जिसका उठाना प्रायः स्वामियों की शक्ति के बाहर होता है। पहले तो वहाँ ईश्वर का नाम ही वर्जित हो गया था, और गिरजाघरों को पाठशालाओं आदि के कामों में लाने लगे थे। पीछे से धार्मिक स्वतंत्रता भी स्थापित कर दी गई है।

रूस ने पहले कहा कि हमें विद्वानों की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे नव-विचारों-

त्पादनों द्वारा राज्य नियमों के प्रतिकूल विचार-धाराएँ उठाते या उठा सकते हैं। अतएव पहले विद्वानों का भी पूर्ण बहिष्कार हो गया। किंतु अब कोई ऐसा भी नियम नहीं है। १९३७ पर्यंत रूसी प्रबंध दुर्बलावस्था में रहा, किंतु पीछे न्यूनाधिक उन्नति हुई है। वहाँ समाचार-पत्रों को पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है, जिससे तद्देशीय वर्तमान दशा का पूरा हाल बाहरवालों को ज्ञात नहीं होता। रूसी सरकार ने सारा शिल्प-व्यापार अपने ही हाथ में रक्खा है। श्रमियों को खाने-भर को देती है। आजकल वहाँ मिलों, कलों आदि की उन्नति भी सुनी जाती है। सरकार के पास धन आधिक्य से है; क्योंकि प्रायः सारे देशवासी साधारण मजदूर हैं। अन्य देशों में धनिकों, शिल्प-व्यापारियों आदि को जितनी आय होती है, उतनी तो रूस में होती नहीं, फिर भी जो होती है, वह सब मिलती सरकार ही को है। केवल थोड़े-से उच्च प्रबंध-कर्ता महाधनवानों की भाँति रहते हैं। इस अपने महाधन से सरकार देशोन्नति का न्यूनाधिक प्रयत्न करती अवश्य है, तथापि उसका बृहदंश सारे संसार में साम्यवाद फैलाने में व्यय करती आई है।

जापान महाशक्ति के रूप में आ गया था, किंतु द्वितीय महायुद्ध में मूर्खता-पूर्वक कूदकर वह अमेरिका की अधीनता में हो गया। उसकी भारी जल-सेना इतर शक्तियों ने ले ली है, तथा बहुतेरी मिलें भी ले ली गईं। अब वह इतना निर्बल हो गया है कि अमेरिका उसे स्वतंत्र करने को उत्सुक होकर भी छोड़ नहीं सकता, क्योंकि ऐसा करने से यह भय है कि कहीं रूस उस पर अधिकार न कर ले। अब यह प्रश्न सोचा जा रहा है कि धीरे-धीरे उसे फिर से थोड़ा-सा सबल करके आत्मरक्षण के योग्य बनाया जाय, और तब अमेरिका उसे छोड़ दे। इस विचार में आस्ट्रेलिया, फिलिपाइन आदि को भय हो सकता है कि कहीं वह प्रबल पड़कर उन पर न टूट पड़े, क्योंकि हैं ये तथा अन्य देश द्वितीय महासमर के कारण उसके पुराने शत्रु ही। चीन बहुत काल-पर्यंत विविध सामरिक नेताओं के झगड़ों और मारकाट से उन्नति न कर पाया, और उस देश में साम्यवाद की प्रबलता हो गई। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व जापान ने उसे बहुत अर्दित किया था। पीछे से अपने ही साम्यवादियों से गृह-युद्ध होने लगा, जिसमें अमेरिका की बहुतेरी धन तथा शस्त्रास्त्र-संबंधी सहायता पाकर भी चीनी सरकार का कुछ किया-धरा न हुआ, और अंततोगत्वा वहाँ साम्य-वादी सरकार स्थापित हो गई तथा चीन की नेशनलिस्ट सरकार चीन छोड़कर फार-मोसा द्वीप चली गई। इधर साम्यवादी चीन और सोवियत रूस में तीस वर्षीय संधि हो गई, जिसके अनुसार रूस अब हर प्रकार से साम्यवादी चीन की सहायता

कर रहा है और वह पूर्णरूपेण रूस के प्रभावाधीन हो गया है। उधर फारमोसा-स्थित चीन की राष्ट्रीय सरकार की अमेरिका यद्यपि धन तथा शस्त्रास्त्र-संबंधी सहायता कर रहा है, फिर भी चीन पर उसकी पुनः विजय संभवनीय प्रतीत नहीं होती, वरन् आशंका यही है कि फारमोसा पर भी प्रबल आक्रमण करके चीन की साम्यवादी सरकार वहाँ भी कहीं अधिकार न कर ले। जैसे ऐटलांटिक पैक्ट द्वारा अमेरिका, ब्रितानिया, फ्रांस, इटली तथा कई अन्य योरपीय देशों ने रूसी आक्रमण की संभवनीयता को बहुत कुछ कम कर दिया है, उसी प्रकार कई प्रशांत महासागरीय शक्तियों को अब प्रशांत (पैसिफिक) पैक्टर की आवश्यकता समझ पड़ने लगी है। इसका भावी महत्त्व तभी संभव है, जब अमेरिका और ब्रितानिया के अतिरिक्त भारत भी इसमें सम्मिलित हो, किंतु भारत को पाकिस्तानी झमेलों तथा आंतरिक प्रश्नों से न तो अभी इतना अवसर दिखता है, न शक्ति ही है कि वह युद्धार्थ रूस के प्रतिकूल पैक्ट में खुला-खुला खड़ा हो जाय। इसी से अभी पैसिफिक (प्रशांत महासागरीय) पैक्ट की बात पूर्णतया नहीं उठ रही है। तो भी चीनी पराजित शक्ति ने फिलिपाइंस तथा दक्षिणी कोरिया से मिलकर इसकी बात उठाई थी, जिसे अमेरिकन महामंत्री ने भी आशीर्वाद दिया था। जैसे भारत ब्रितानिया के स्वाधीन था, वैसे ही थोड़े दिन पूर्व में फिलिपाइंस पर अमेरिकन का अधिकार था। ये दोनो देश स्वतंत्र हैं। तो भी प्रशांत पैक्ट के संबंध में फिलिपाइंस अमेरिका के इच्छानुसार चलता-सा दिखता है। दीर्घकालीन अमेरिकन सुप्रबंध से फिलिपाइंस ऐसी की भारी उन्नति हो चुकी है कि वह प्रजा के ऐश्वर्य में साधारण योरपीय देशों के समकक्ष हो गया है।

अमेरिका में आजकल बेकारी बढ़ रही है। बात यह है कि वहाँ शिल्पोन्नति इतनी भारी हो गई है, और आवश्यक वस्तुओं के बनाने की शक्ति इतनी बढ़ गई है कि स्वदेश में तो उन वस्तुओं की खपत असंभव है ही, विदेश भी धनाभाव से उन्हें समुचित मात्रा में खरीदने में अशक्त हैं। जब तक युद्ध चलता रहा, तब तक वे लोग सामरिक सामग्री बनाते रहे, जिससे काम चालू रहा। युद्ध समाप्त होने से युद्ध-सामग्री अनावश्यक होकर बनाई नहीं जा सकती, तथा शांति-संबंधी माल खरीदने को दुनिया के पास दाम नहीं हैं। अतएव अमेरिकन बेकारी बढ़ चुकी है, तथा और बढ़ने का भय है। अमेरिका का गुजर तभी हो सकता है, जब या तो फिर से युद्धारंभ हो या शेष संसार में ऐसी धन-वृद्धि हो जाय कि अमेरिकन माल बहुतायत से बिकने लगे। आजकल तो ब्रितानिया का व्यापार ठीक नहीं चल रहा है, और उसका सोना निकला जाता था, जिससे अमेरिकन माल के और भी कम खरीदने की

बात उठ चुकी है। कुछ अमेरिकन व्यापारी तो व्यापारोन्नति के लोभ से युद्ध चाहते हैं, किंतु प्रजा जन-विनाश के कामों से पीछे हटती है। समझा जाता है कि आगे के राष्ट्रपतिवाले चुनाव के पीछे अमेरिका युद्ध में कूदेगा।

संसार की सूक्ष्मतया ऐसी दशा है। भारत जब तक समुचित मात्रा में अनाज उत्पन्न करके अपना व्यापार न सुधार पाए, तब तक के लिये इसे बाहरी माल खरीदने का अधिकार कम करना पड़ेगा। देशी रियासतों का प्रश्न तो इसने सुलझा लिया है, तथा कश्मीर का भी मामला ठीक-सा हो चला है। अब अनाज के अतिरिक्त भारत को केवल साम्यवादियों का ही प्रश्न सुलझाना है। हैं तो इसके कुछ विचार बंबई, मदरास और हैदराबाद में भी, किंतु वहाँ यह प्रश्न क्षुद्र है। जो कुछ विशेषता है, वह कलकत्ते में ही दिखती है। इसीलिये देश को इसके सुलझाने की चिंता है। बंगाल मध्यश्रेणी वालों के कष्टों से कुपित है ही, उधर सिंहभूमि और मानभूमि के जिले बिहार से वह भाषा के प्रश्न पर लेना चाहता है। उसे समझ पड़ता है कि यदि यही मिल जायँ, तो कोप बहुत कुछ शांत हो जाय। इधर बिहार अपने जिले किसी भाँति देना नहीं चाहता, पूर्वी बंगाल के पाकिस्तानी हो जाने से पश्चिमी बंगाल सीमा-प्रांत भी हो गया है। यदि उसकी राज्य-प्रणाली साम्यवादी वोटों के बल पर कम्यूनिस्ट (समतावादी) हो जाय, तो मानो यह सीमा-प्रांत भारतीय राज्य से ही निकल जाय। यह दशा केंद्रीय सरकार को स्वभावतः न माननी चाहिए। यदि बंगाल का मस्तिष्क इतना चक्कर खा जाय कि वह भारत में ही रूसी प्रांत स्थापित करना चाहे, तो कोई चैतन्य केंद्रीय सरकार को ऐसा न होने देना चाहिए। ऐसी दशा में वहाँ या तो गवर्नर द्वारा केंद्रीय शासन चलने लगेगा या सैनिक राज्य। जब तक बंगाल की बुद्धि ठिकाने नहीं आती, तब तक इसकी क्षेत्रफल-वृद्धि भी केंद्र उचित न समझेगा। इन्हीं सब बातों को सोचकर हमारे भारतभूषणजी अपना काम छोड़कर देश-प्रेम के कारण सवर्ग कलकत्ते को पधारे हैं।

कलकत्ते में आपने इस बार व्याख्यान देने के प्रबंध किए, और प्रमुख नेताओं से मिल-मिलकर राजनीतिक विषयों पर परामर्श तथा विचार-विनिमय भी किए। शुक्लजी का संबंध कलकत्ते से प्रायः रहता था, अतएव आपने बँगला भाषा में धारा-प्रवाह व्याख्यान देने का भी अभ्यास बढ़ा लिया था। एक दिन मित्रों की सहायता से एक भारी सभा जोड़ी गई, जिसमें कई व्याख्याताओं को बोलना था, मुख्यतया शुक्लजी को। उसमें आपका भाषण यों हुआ—

"प्रिय बहनो और सज्जनो ! आजकल बंगाल का रूप बहुत कुछ बदल गया है । पहले तो सदा से नापसंद बंग-भंग का प्रश्न आपके सम्मुख, मुस्लिम-शासन से बचने के रूप में आ पड़ा, जिसका आपने उचित निर्णय कर दिया । स्वतंत्रता तो हम सबको मिल चुकी है; किंतु अभी उसका फल नहीं प्राप्त हुआ है । भाइयो ! यह समझना चाहिए कि जब टके का एक घड़ा भी बिना उचित मूल्य दिए नहीं मिल सकता, तो फिर इतना बड़ा स्वतंत्रता-रूपी रत्न क्या हमें बिना मूल्य ही मिल जायगा ? एक बार इसके दृढ़ता पूर्वक हस्तगत होने से यदि चलते बने, तो अनंत काल-पर्यंत अपने को स्वतंत्र कहलाए जाने तथा संसार की महाशक्तियों में सिर ऊँचा करके चलने का अवसर प्राप्त है । समझने की बात है। बहनो और भाइयो ! यह ऐसा रत्न है, जिसके मूल्य का कोई सीमा नहीं हो सकती । लाखों-करोड़ों भाइयों की जानें देकर यदि यह मिलता, तो भी सस्ता था । फिर अभी तक आपने इसके लिये क्या समुचित मूल्य दिया है ? यही न कि हम लोगों में से हजारों उत्साही लोग कुछ काल जेलों में रहे, तथा कुछ नवयुवक आतंकवाद में पड़कर जान खो बैठे । क्या यह नहीं समझा जा सकता है कि बिना समुचित मूल्य दिए ही हम स्वतंत्रता के फल शीघ्रातिशीघ्र पाने के लिये अधीर हो रहे हैं ? कोई भी बड़ा प्रबंध करने में समय लगता ही है । उस पर हमारे यहाँ राज्यारंभ होते ही प्रायः ७० लक्ष शरणार्थियों को बचाने, यत्र-तत्र भेजने तथा उनके स्थापित करने का महत्कार्य एकाएकी करना पड़ा । यह इतना बड़ा कार्य था कि सम्यक् प्रकारेण सुस्थिर प्राचीन महाशक्तियों के लिये भी दुःसाध्य था, न इतिहास में आद्य-पर्यंत कभी ऐसा हुआ था । फिर भी हमारी कल की ही शक्ति ने उसे यथाविधि पार लगाने के उद्दाम प्रयत्न किए, जो बहुत कुछ पूर्ण हो चुके हैं । महायुद्ध के कारण सारे संसार में भोज्य पदार्थों की कमी हो गई है । और कोई परमोन्नति-साधक कार्य भी यथावकाश स्थगित किया जा सकता है, किंतु भोजन तो जनता को नित्यप्रति करना ही पड़ेगा । उसका प्रबंध नहीं रुक सकता । आप महाशय स्वयं भुगते बैठे हैं कि ब्रिटिश काल में भी अभी कल बंगाल में प्रबंध की कमी से बेचारे प्रायः २५ लक्ष बंगाली क्षुधार्त हो-होकर काल-कवलित हो गए । इधर आपकी सरकार ने ऐसा बढ़िया प्रबंध किया है कि आज तक न तो एक भी व्यक्ति भूखों मरा है, न आगे ऐसा भय है । शरणार्थियों तथा भोज्य पदार्थों के जो ऐसे प्रशंसनीय प्रबंध हुए हैं, उनके लिये क्या जनता द्वारा सरकार धन्यवादार्ह नहीं है ? ऐसी दशा में वस्तुओं के दाम बढ़ जाना स्वाभाविक ही था, किंतु उसके रोकने के भी समुचित उद्योग किए जा रहे हैं । रियासतों का प्रश्न जो ब्रिटिश राज्य

डेढ़ सौ वर्षों में जनता के अधिकार-गर्भित नियमों पर न सुलझा पाई, उसे हमारी केंद्रीय सरकार ने चुटकी बजाते हुए वारे लगा दिया। जब तक भोज्य पदार्थों की उपज समुचित मात्रा में नहीं बढ़ती, तब तक शिल्प-व्यापार की यथोचित उन्नति कठिन ही है। लोग कहने लगते हैं कि एकाएकी अनाज की ऐसी कमी क्यों हो गई है? उत्तर सुगम ही है। एक तो यह न्यूनता संसारव्यापिनी है, जिसका मूलाधार महायुद्ध है। दूसरे स्वतंत्रता-संबंधी जो बटवारा हुआ, उसमें अच्छी तथा सिंचाई-वाली भूमि आधिक्य से पाकिस्तान में पड़ गई है, अथच अपने यहाँ क्षेत्रफल के देखते हुए जन-संख्या विशेष है। अच्छे स्वास्थ्यकारी प्रबंधों के कारण अपनी जन-संख्या बढ़ी भी परम शीघ्रता से है। धान्य उत्पन्न करने का प्रबंध असंभव नहीं है, और शीघ्र पूरा हो जायगा। यही वर्ष, जो चल रहा है, हमारे लिये अनाज के प्रश्न पर सबसे बुरा है। ज्यों-ज्यों एक-एक साल बीतता जायगा, त्यों-त्यों दशा सुधरती ही जायगी। हमारी सरकार ऐसा प्रबंध करना चाहती है कि १६५१ के पीछे बाहर से एक छटाक अनाज भी न मँगाना पड़े। ऐसा तब भी न होता था, जब पाकिस्तान हमसे पृथक् न था। जो हो, अनाज का प्रश्न चार-पाँच वर्षों के भीतर सुलझ जायगा। बहुतेरे लोग सोचते हैं कि सरकार व्यय बहुत कर रही है। है ऐसा अवश्य, किंतु वह नवागत स्वतंत्रता के कारण आवश्यक है, अनुचित नहीं। यदि अच्छी सेना न रखिए, तो ११६३ का दिन फिर से उपस्थित हो सकता है। यदि दौत्य विभाग संसार की शक्तियों में उचित साज-सामान के साथ न रखिए, तो न तो काम चलेगा, न संसार में मान रहेगा। कुछ विभागों में थोड़ा-सा अनुचित व्यय संभव है, जिसके घटाने के प्रयत्न हो रहे हैं। मद्यबंदी तथा लवण-कर छोड़ने के कार्यों में कुछ अनुचित शीघ्रता समझी जा सकती है, जिसके लिये पुनर्विचार हो रहा है। उत्कोचों के प्रश्नों पर जो जनता में अनुचित भ्रम फैला है, वह निराकार है, तथा प्रश्न भी छोटा-सा है, जिसे स्वार्थियों तथा देश के शत्रुओं ने बृहदाकार बनाने के प्रयत्न चला रक्खे हैं। जहाँ अरबों के प्रश्न हैं, वहाँ दस-बीस लाख इधर-उधर होने से क्या हुआ जाता है? प्रश्न ही कितना बड़ा है? आजकल बंगालियों के लिये मध्य-श्रेणी की जनता का प्रश्न अखरनेवाला है। यह प्रश्न केवल एक प्रांतीय न होकर देशव्यापी है। इसके लिये भी बड़े उद्योग के साथ प्रयत्न हो रहे हैं, और आशा है कि दो-चार वर्षों में यह सुलझ जायगा। बंगाल में दो ज़िलों के सम्मिलित करने का बड़ा ही लघु प्रश्न राष्ट्र के द्वेषियों द्वारा बृहदाकार बनाया जा रहा है। यह ऐसा नगण्य विषय है, जिस पर समझदार जनता को क्षण-भर भी विचार न करना चाहिए।

भाइयो और बहनो ! इस काल इतने ही प्रश्न सामने हैं, जिनके समुचित उत्तर तुरंत से पूर्व न पाकर आप ऐसे साम्यवाद को अपनाते हुए दिखते हैं, जिसके समर्थकों में यहाँ नब्बे प्रतिशत मुसलमान हैं। समझे रहना चाहिए कि यह भारत में भी पाकिस्तान बढ़ाने की एक युक्ति है । यदि हमारे मुस्लिम भाई वास्तव में साम्यवादी होते, जैसा कि वे भारत में प्रयत्न कर रहे हैं, तो वे पाकिस्तान में भी इसका प्रचार क्यों नहीं करते ? इस बात से स्पष्ट प्रकट है कि यह उनकी कोई वास्तविक नीति नहीं है, वरन् हमारे भारत के छिन्न-भिन्न करने का एक उपाय-मात्र है। जो हिंदू इसमें हैं, वे या तो इस तत्त्व को नहीं समझते, या प्रांतिकता के विचारों में ऐसे मस्त हैं कि भारत रहे या जाय, उनके नेतापन को धक्का न लगे ।

भाइयो और बहनो ! इतनी बातों पर समुचित विचार करके क्या ऐसा नहीं दिखता कि नेहरू महोदय पर जो यहाँ बम चला अथवा कुछ लोगों ने 'नेहरू वापस जाओ' के नारे ऊँचे किए, वे बड़ी ही लज्जास्पद बातें थीं ! अपने ही ऐसे महामंत्री का अपमान करना, जो अतिथि के रूप में यहाँ आपके दुख-सुख-मात्र समझने पधारे थे, कितनी घृणास्पद बात है, सो आप स्वयं समझ सकते हैं ।

एक नवयुवक—"वक्ता महोदय ! आपको हमारे ही नेताओं को स्वार्थी कहना तथा हमीं सबको ऐसे नीच शब्दों में स्मरण करना क्या उचित है ? क्या आप समझते हैं कि जिस आत्मसम्मान-प्रिय बंगाल ने नेहरू तक का मान न किया, वह आपके ऐसे दुर्वचन सिर झुकाकर सह लेगा ? हमें इस प्रकार फटकारने के पहले कुछ आप भी तो समझिए-बूझिए।"

श्रोताओं में से कुछ लोग—"निस्तब्ध रहो नवयुवक ! शुक्लजी इतने ऊँचे ऐडवोकेट होकर कभी किसी का अपमान नहीं कर सकते। क्या इन्हें भी भद्रत्व का पाठ पढ़ाने में तुम्हारा मुख योग्य है ? शुक्लजी महोदय ! आप और जो कुछ कहनेवाले थे, वह भी कृपा करके कहिए।"

भारतभूषण—"शतशः धन्यवाद सज्जनो ! आप ही लोगों के-से भद्रपुरुषों से बंगाल की शोभा है। (नवयुवक से) प्रियवर नवयुवक महाशय ! आप बंगाली आत्मसम्मान की हानि मेरे वचनों से न समझिए । मैं तो देश-दशा का वर्णन कर रहा हूँ । आप सज्जनों ने इन दिनों ऐसी ही तो भूल कर रक्खी है कि अपने बंग-प्रांत को शेष भारत से पृथक्-सा समझ रक्खा है, और यहीं के उपदेशकों को अपने पथ-प्रदर्शक मानकर शेष भारतीय नेताओं को पराया समझते हैं । यदि सारे प्रांतीय लोग अपने-ही-अपने यहाँ के नेताओं को मान-

कर इतरों से उदासीन हो जायँ, तो सारा भारत कहाँ जाय? मैं केवल बंगाली नेताओं को आत्मसम्मान-प्रिय नहीं कहता, सभी कहीं ऐसे लोग होते हैं। अनुयायियों को भी तो समझना चाहिए कि विविध नेताओं के कथन कहाँ तक मान्य हैं? आपके ऐतरेयोपनिषत् में अंतेवासी (शिष्य) को उपदेश देते हुए गुरु ने कहा था कि हमारे भी केवल मान्य आचरणों और विचारों का मान करो, सब का नहीं। जब अनुयायी अंध-परंपरा का पालन करके निकटवाले उपदेशकों को ही सर्वमान्य मान लेगा, तब स्वतंत्र विचारों की प्रथा कहाँ जायगी? समझने की बात है कि आजकल साम्यवाद का बल चीन में सर्वव्यापी हो गया है। हमारे पड़ोसी बर्मा में भी घोर युद्ध मचा हुआ है, जहाँ कैरेन लोगों से मिलकर साम्यवादी देश को डुबोए देते थे। वह तो बितानिया, भारत और पाकिस्तान की सहायता बर्मा द्वारा अपनी स्वतंत्रता घोषित करने पर भी मिल गई, जिससे देश बचा जाता है। इधर नैकट्य के कारण अपने आसाम में भी समतावादी उपद्रव मचाए हुए हैं, किंतु देखने में दब गए हैं। यदि हम लोग स्वयं कलकत्ते में मुसलमानों को प्रसन्न करके साम्यवाद चला देंगे, तो मानो पूर्वी बंगाल से पृथक् होकर भी पश्चिमी बंगाल फिर उसी में जा मिला, या कम-से-कम पाकिस्तानी हो गया। आप सज्जनों को समझना चाहिए कि पश्चिमी बंगाल न तो स्वयं इस औंधे मानस को अपनाएगा, न उसमें इतनी शक्ति है कि शेष भारत से लड़कर यहाँ मानो दूसरा पाकिस्तान बना डाले।"

इसी प्रकार जब व्याख्यान हो रहा था, तब श्रोताओं के भारी मंडल के विविध कोणों से समय-समय पर न्यूनाधिक गुल-गपाड़ा भी मचता रहा, किंतु शुक्लजी की प्रार्थनाओं पर सचेत श्रोतागण उन झमेले मचानेवालों को बाहर भी निकाल दिया करते थे। इतने ही में श्रोताओं में एक स्थान पर एक बम फेका गया, जो ज़ोर से फटा, और दस-पाँच बेचारे निर्दोष श्रोता सक्षत हुए। कुछ अन्य श्रोताओं ने बम फेकनेवाले को पकड़कर पहले तो ख़ूब ही मारा, और फिर उसे पुलीस के हाथ में दे दिया। सभा में ऐसा गड़बड़ देखकर श्रोताओं ने इनसे व्याख्यान समाप्त न करने की सहठ प्रार्थनाएँ कीं। अतएव देर तक भाषण होकर वह यथासमय समाप्त हुआ, और लोग अपने-अपने स्थानों को गए। अनंतर आतंकवाद-विभाग के पुराने इंस्पेक्टर विजयकुमारजी चटर्जी, जो अब सुपरिंटेंडेंट पुलीस का पद प्राप्त करके भी उसी विभाग में काम करते थे, एक दिन शुक्लजी से मिले। बड़े प्रेम-पूर्वक वार्तालाप होने लगा। उन्होंने इन्हें सचेत किया कि साम्यवादियों के प्रतिकूल इनके कई

व्याख्यान बहुत सबल हुए थे, जिनमें बम भी चल जाया किए थे। अतएव आप पर आतंकवादियों की भी कुछ कोप-दृष्टि पड़ चुकी थी। चटर्जी महोदय ने इन्हें लोक-हितकार्य से विरत करना तो उचित न समझा, किंतु इनके रक्षणार्थ दो गुप्त पुलीस-मैन सादे कपड़ों में इनके साथ लगाने की आज्ञा माँगी, जो बात आपने प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार कर ली। आतंकवादियों के सरदार बनर्जी महोदय का कोप इन पर न था, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि उनके प्राचीन नेता अरिंदम चटर्जी का उपकार इन्हीं के द्वारा बिना किसी प्रत्याशा के हुआ था। फिर भी उस आतंकवादिनी मंडली के दो मुसलमान लोग दो-चार अन्य साथियों की सहायता लेकर इनके पीछे लगे। एक दिन संध्या को आप वायु-सेवनार्थ एक शून्य चक्र-पथ पर जा रहे थे । अपनी समझ में तो आप अकेले थे, किंतु गुप्त पुलीस के दोनो शरीर-रक्षक थोड़ी ही दूर से इन्हें दृष्टि-पथ में रखते हुए प्रकट रूप से इनसे असंबद्ध प्रकार से जा रहे थे। मार्ग में चार आतंकवादी एकाएकी इन पर झपट पड़े, और तमंचों से गोलियाँ चलाने लगे। उनकी ऐसी शठता कुछ पहले से ही ताड़कर आप फुर्ती से निकट के एक गड्ढे में कूद गए। उधर इनके रक्षक पुलीसवालों ने उन चारों में से दो को तो गोलियों द्वारा सक्षत करके तथा शेष दोनो को यों ही डराकर चारों को पकड़कर पुलीस के हवाले कर दिया। यथासमय नर-वध के सक्रिय उद्योग के कारण उन्हें दस-दस वर्षों का सपरिश्रम कारावास मिला।

एक दिन माधवी देवी सेठजी से अलग पड़कर सैर करने निकल गई थीं, और मार्ग में इनकी मथुरादत्तजी से भेंट हो गई। बातें करते-करते युक्ति-पूर्वक पांडेयजी इन्हें सन्नाटे की एक सड़क पर ले जाकर विशेष वार्तालाप करने लगे।

मथुरादत्त—"देवीजी! आप सेठजी के यहाँ प्रसन्नता-पूर्वक हैं न? कोई कष्ट तो नहीं है?"

माधवी—"नहीं पांडेयजी! वहाँ मुझे कोई भी कष्ट नहीं है। बहुत मज़े में रहती हूँ। दो बच्चे भी हो चुके हैं। दोनो पुत्र हैं। चित्त गृहस्थी में ऐसा कुछ उलझ गया है कि प्राचीन जीवन-प्रणाली बदल-सी गई है। हैं वे विचार भी बहुत कुछ ग्राह्य, तथापि अंतर भी बहुतेरा पड़ गया है।"

मथुरादत्त—"आप तो, देवीजी! पहले स्वतंत्रता के पक्ष में ऐसी कुछ थीं कि विवाह तक नहीं करना चाहती थीं। अब स्वच्छंदता में कुछ अंतर तो नहीं पड़ा है?"

माधवी—"अंतर पड़ने की बात ही नहीं उठती। सेठजी कभी अपने विचार मनवाने का हठ ही नहीं करते।"

मथुरादत्त--"आप तो पहले विवाह करना ही नहीं चाहती थीं, फिर इस झंझट में पड़ीं ही क्यों ?"

माधवी—"जानते तो सब कुछ हो । तुम्हारी ही नीचता से मैं इस झमेले में पड़ गई । यदि बच्चे होने लगते, तो सिद्धांतों को तो कोई मानता नहीं, अपयश की ही गठरी लदती ।"

मथुरादत्त—"साधारण व्यक्तियों के विचारों का यदि ऐसा मान करना था, तो आपने पहले ही ऐसे उच्च सिद्धांत क्यों स्थापित किए थे ?"

माधवी—"उनका शुद्ध मान तो निश्छल जीवन में था, छिपे हुए कार्य-समुदाय में नहीं । ऐंद्रिय मामला चाहे जितना गुप्त रखिए, अंत में संतानोत्पत्ति से प्रकट हो ही जायगा । ऐसी दशा में या तो पूर्णतया शुद्ध जीवन कोई चलावे, या साधारण गार्हस्थ्य भाव अपनाए, मध्यवर्ती कोई मार्ग कंटक-हीन नहीं देख पड़ता ।"

मथुरादत्त—"आपने तो जब से गार्हस्थ्य जीवन अपनाया, देवीजी ! तबसे प्राचीन स्नेही मित्रों से एकदम मुख मोड़ लिया । क्या इतनी उदासीनता योग्य थी ?"

माधवी—"यदि अपना और मेरा भला चाहिए, पांडेयजी ! तो इन छल-छद्म-गर्भित बातों को छोड़िए । मैं अब न तो वैसी स्वच्छंद हूँ, न वैसी मूर्खा । अब लालच के मार्ग से दूर ही रहिए ।"

मथुरादत्त—"मैंने कहा ही क्या, देवीजी ! जो आप एकाएकी लाल-पीली होने लगीं । मैंने तो एक चलतू-मात्र बात कही है । क्या मैं कोई प्रार्थना करने का साहस कर सकता हूँ ?"

माधवी—"इसी प्रकार की बातों करके आपने मुझे उस दिन ठगा था । लोकानुभव की कमी से मैंने आपका बाहरी रूप-मात्र देखकर बिना कोई भी जाँच किए मूर्खता-वश विश्वास कर लिया । यह न जाना—"केचिन्मृगमुखाव्याघ्राः केचिद् व्याघ्रमुखा मृगाः । तत्स्वरूप विपर्यासात् विश्वासो ह्यापदास्पदम् ।" बहुतेरे व्याघ्र मृगमुख होते हैं, अर्थात् देखने में मृगों-से छल-हीन लगते हैं, तथा बहुतेरे मृग इसी भाँति व्याघ्र-मुख होते हैं, अर्थात् बनते तो हैं व्याघ्रों के समान भयानक, किंतु वास्तव में मृगों से भीरु होते हैं । इन दोनो के स्वरूपों के बदलाव से विश्वास विपत्तिदायक होता है । आप मृग-मुख व्याघ्र थे, जिसका विश्वास करके मूर्खता-वश मैंने धोखा खाया ।"

मथुरादत्त—"आप कह क्या रही हैं, देवीजी ! मेरे विषय में किसने आपको अनुचित प्रकारेण शंकित कर दिया है ? बिना पूर्ण विवरण जाने आपको किसी मित्र के आचरण पर संदेह न करना चाहिए।"

माधवी—"अब इन धोखे-धंधारियों की आवश्यकता नहीं। आपको आज भी मुझसे बात न चलानी थी।"

मथुरादत्त—"कुछ जान तो पड़े कि क्या बात है ? इतने प्रचंड कोप का कुछ कारण भी होना चाहिए।"

माधवी—"जब आप नहीं मानते हैं, तो सुनिए। बेचारी मनोरमा का हाल अब मुझसे छिपा नहीं है।"

मथुरादत्त—"उस बेचारी के संबंध में मेरा दोष ही क्या था ? उसका प्राणांत अवश्य हो गया, जिसके लिये मैं अद्यावधि दुःखित हूँ, किंतु मैंने उसके साथ कोई अपकार नहीं किया।"

माधवी—"आप तो उसके बड़े उपकारक होंगे। विष की शीशी उसे शायद मैंने दी होगी।"

मथुरादत्त—"मुझसे जैसा प्रेम-संबंध आपसे पीछे हुआ, वैसा ही उससे भी था। मुझे उसके मारने से क्या लाभ था ? मेरी तो निष्कपट मित्रता थी।"

माधवी—"तभी तो उसे मित्रता का पूरा फल चखा दिया। बेचारी ने यह न समझा कि कलंक से बचने को उसका प्राण लिया जा रहा था। कम-से-कम यदि मनोरमा का मामला आपने मुझसे कहा होता, तो विशेष मित्रता की तो बात ही क्या थी, मैं समाज तक में आपके निकट खड़ी भी न होती। आप थे तो नीचातिनीच, किंतु मुझसे भद्रता के अवतार बनते थे।"

मथुरादत्त—"देवीजी ! यदि कोई अन्य व्यक्ति मुझसे ऐसा दूषित व्यवहार करता, तो मैं उससे कभी आगे बात भी न करता। आपकी प्राचीन कृपाओं के कारण विवश हो रहा हूँ। फिर भी प्रगाढ़ मित्रों पर निराधार संदेह करना आपकी-सी विदुषी देवी को शोभा नहीं देता।"

माधवी—"शोभा तो मुझे कुछ भी नहीं देता, किंतु आपका उस बेचारी बालिका से जैसा प्रकट में व्यवहार था, उससे आपका दुराचरण सिद्ध है, तथा इसे आप स्वीकार भी करते हैं। वह गर्भधृती हो ही गई, और ऐसा आप ही के द्वारा हुआ होगा। गर्भ-मोचन की चिंता आप दोनों को होगी ही, और उसी संबंध में जाने या बिना जाने आपने उसे कोई ऐसी दवा दे दी होगी, जिससे बेचारी समाप्त

ही हो गई। जबसे यह सब हाल मैंने जाना है, तब से जब-जब आपको देखती हूँ, तब-तब मेरे नेत्रों में क्रोधाग्नि भभक उठती है। कृपया मेरे सामने पड़ने की दया न किया कीजिए, नहीं तो आपका कल्याण न होगा।"

मथुरादत्त—"देवीजी! इतना क्रोध अनुचित तथा अनावश्यक है। उस विषय में घातकपन का आरोप मुझ पर जो आप मानसरीत्या कर रही हैं, वह नितांत अशुद्ध है। उसे मैंने एक दवा गर्भ-मोचनार्थ दी अवश्य थी, किंतु यह न जानता था कि उसमें विष था। यह मूर्खता दवा बेचनेवाली की थी कि ऐसा दुष्परिणाम हो गया।"

माधवी—"आपके एक शब्द पर भी मुझे विश्वास नहीं है। मैं आपको नारकीय हत्यारा समझती हूँ। बिना ऐसी बातें जनाए आपको मुझसे मित्रता न बढ़ानी थी। अतएव अपनी हत्या में मुझे धोखा देने का पाप आपने और जोड़ दिया है। अब यदि भला चाहिए, तो मेरी आँखों से ओट हो जाइए।"

मथुरादत्त—"देवीजी! इतना क्रोध आपको योग्य नहीं। (पैर पकड़कर) मेरा अपराध क्षमा करके एक बार अपनी प्राचीन कृपा से फिर संतुष्ट कर दीजिए, इतनी प्रार्थना है।"

माधवी—"नीच, हत्यारे! मेरे पैर छोड़ दे। मेरा शरीर ऐसे नीचों का स्पर्श नहीं सह सकता।"

मथुरादत्त—"एक बार तो कृपा और कर दीजिए। आपने आज सैकड़ों गालियाँ खुली-खुली दी हैं। बिना कुछ भी कृपा किए उनका प्रतिकार नहीं हो सकता।"

माधवी—"नीच, निकम्मे! पैर छोड़, नहीं तो मुझे असह्य क्रोध आ जायगा।"

मथुरादत्त—"इस समय तो आप पूर्णतया मेरे वश में हैं। इतनी गालियाँ देने के पीछे बिना एक बार आत्मसमर्पण किए इस वज्रमुष्टि से छूट ही कैसे सकती हैं? कौन-सी नवीनता है, जो आपका सतीत्व बिगड़ा जाता है!" (हाथ पकड़ने को बढ़ता है)

माधवी—(पीछे हटकर) "पांडेयजी! यदि भला चाहिए, तो दूर ही रहिए।"

मथुरादत्त—"इतने अपमान के पीछे आज तो छोड़ सकता नहीं।" (आगे बढ़ता है)

माधवी पीछे हटकर रिवाल्वर दाग देती है, जिससे मथुरादत्त का हृदय विदीर्ण होता है, और वह गिरकर वहीं मृत हो जाता है। अनंतर माधवीदेवी अपने पति के पास जाकर सारा हाल कहती हैं, और भारतभूषण की सहायता से पुलीस में रिपोर्ट की जाती है, तथा जाँच के पीछे वह दोष-हीन प्रमाणित हो जाती हैं। अनंतर थोड़े ही दिन कलकत्ते में और ठहरकर शुक्लजी सवर्ग लखनऊ वापस जाते हैं, क्योंकि कलकत्ते में इन्हें जितने प्रयत्न करने थे, उनकी पूर्णता हो चुकी थी।

एकादश परिच्छेद

कश्मीर

भारत में ५६६ देशी रियासतें थीं, जिन्हें भी भारतीय स्वतंत्रता देने के समय बितानिया ने स्वतंत्रकर दिया था। उन्हें अधिकार था कि यदि वे चाहें, तो पाकिस्तान या भारत से मिलें, अथवा स्वतंत्र ही रहें। सिंध और बलोचिस्तान में जो मुस्लिम रियासतें थीं, वे पाकिस्तानी देश के मध्य में होने से उससे मिलती गईं। इधर बहावलपुर एक ओर तो पाकिस्तान से मिलती थी, और दूसरी ओर राजपूताना तथा पंजाब से। रईस यहाँ का एक मुसलमान था, अतः वह स्वभावशः पाकिस्तान ही से मिल गई, तथा भारत ने भी कोई आपत्ति न की। इधर भारत के अंदर शेष रियासतें थीं, जिनमें जूनागढ़, हैदराबाद, भूपाल और रामपुर कुछ बड़ी मुस्लिम रियासतें थीं। रामपुर प्रसन्नता-पूर्वक शीघ्रता से भारत से संबद्ध हो गई, और दस-बीस दिन इधर-उधर करके भूपाल भी। केवल जूनागढ़, हैदराबाद और कश्मीर का प्रश्न रह गया। शेष रियासतें भारत से मिल गईं। जूनागढ़ डेढ़ करोड़ वार्षिक आय की रियासत थी, जिसमें १८ प्रतिशत मुसलमान हैं, और शेष हिंदू। हैदराबाद ३० करोड़ की रियासत है, और जन-संख्या का हिंदू-मुस्लिम पड़ता प्रायः उपर्युक्तानुसार है। इन दोनो के ईरस मुसलमान हैं। उधर कश्मीर का रईस तो हिंदू है, किंतु मुस्लिम जनता प्रायः ८२ प्रतिशत है। जूनागढ़ और हैदराबाद भारत के उदरस्थ हैं, अथच कश्मीर अधिकतर पाकिस्तान से छूता है, तथा कुछ भारत से भी। कश्मीर के दोनो पुराने मार्ग जो रावलपिंडी और जम्मू होकर थे, वे पाकिस्तान के अंदर होकर पड़ गए हैं, जिससे भारतीय स्थान पठानकोट से कश्मीर को नया ऐसा रास्ता बनाया गया है, जो पाकिस्तान से बाहर है। नवाब जूनागढ़ पाकिस्तान से मिल गए, किंतु उनकी जनता भारत को चाहती थी, जिससे अंत में वह भारत को मिल गया, यद्यपि वहाँ के नवाब भागकर कराची (पाकिस्तानी राजधानी) को चले गए। यह राज्य सौराष्ट्रीय यूनियन का अंत हो गया है। हैदराबाद सितंबर, १९४८ में भारत द्वारा विजित हो गया, और उसका अंतिम निर्णय वहाँ की जनता करेगी। अभी भारतीय प्रबंध चल रहा है। कश्मीर में मुस्लिम बाहुल्य से पाकिस्तान उसे अवश्य चाहता था, यद्यपि वहाँ की जनता राष्ट्रीयता-प्रेमी होने से भारत की ओर झुकती थी। वहाँ के हिंदू महाराजा पाकिस्तान से न मिले, और ऑक्टोबर, १९४७ में स्वतंत्रता-प्राप्ति के दो ही मास पीछे

पाकिस्तान ने उस देश पर क़बीलों को सहायता देकर अनुचित आक्रमण करा दिया। यदि पाकिस्तान ऐसी भारी भूल न करता, तो उसका स्वत्व कश्मीरवाले शायद कुछ मानते भी, किंतु युद्ध छिड़ने से सारे राष्ट्रीयता-प्रेमी कश्मीरी उसके प्रतिकूल हो गए। महाराजा कश्मीर में पाकिस्तान से युद्ध करने की शक्ति तो थी नहीं, सो उन्होंने अपने देश को ऑक्टोबर, १९४७ में ही भारत से संबद्ध कर दिया, तथा वहाँ के प्रजा-नेता शेख़ अब्दुल्ला ने भी यह बात मान ली, यद्यपि इससे पूर्व उन्होंने खुला-खुला ऐसा कभी न कहा था। पाकिस्तान को यह आशा थी कि भारतीय सेना को कश्मीर पहुँचने का कोई अच्छा मार्ग तो था नहीं, सो भारत सहायता कर ही क्या सकेगा ? उधर भारत ने वायुयानों द्वारा अति शीघ्र थोड़ी-सी सेना राय महोदय की अधीनता में कश्मीरी एरोड्रोम (वायुयान उतरने के स्थान) पर उतार दी। यह स्थान कश्मीरी राजधानी श्रीनगर से प्रायः सात मील है, तथा वहाँ से आगे २८ मील और बढ़ने से बारामूला नगर पड़ता है, जहाँ तक पाकिस्तानी सेना आ चुकी थी, और जिसे वह भली भाँति लूट चुकी थी। क़बीलों ने लूटने के ही लालच से पाकिस्तान को कश्मीरी धावे में सहायता दी थी। वे केवल हिंदुओं की ही संपत्ति न लूटते थे, वरन् मुसलमानों की भी संपत्ति और स्त्रियाँ लूटते थे, जिनमें से कुछ पश्चिमी पंजाब की हाटों में गाय-भैंसों की भाँति बिकती थीं, खुले-खुले, कुछ छिपाकर नहीं। यदि लुटेरों ने कश्मीरी एरोड्रोम पर अधिकार कर लिया होता, तो भारतीय सेना वहाँ जा ही न सकती। इधर राय महाशय ने इस आक्रमण की महत्ता समझ न पाई, और वह केवल दो-तीन सौ सैनिक लिए धड़धड़ाते हुए बारामूला जा पहुँचे। उनका विचार था कि डकैतों में साहस ही क्या होता है, अपनी शिक्षित सेना को देखते ही भाग निकलेंगे। जब बारामूला पहुँचे, तो उन्हें पता चला कि सामना पूरी शिक्षित सेना का है, जिसकी संख्या सहस्रों तक पहुँचती थी। तब इन्होंने अपनी सेना पीछे मोड़ ली, और वह सकुशल हटकर एरोड्रोम के कुछ आगे जमी, किंतु जो थोड़ा-सा युद्ध हुआ था, उसमें एक गोली स्वयं राय महोदय के मर्म-स्थल पर लग गई, जिससे उनका शरीरांत वहीं हो गया। यदि पाकिस्तानी सेना तुरंत आगे बढ़कर प्रचंड आक्रमण कर देती, तो यह छोटा-सा भारतीय दल कुछ कर न सकता, और उसका अधिकार न केवल एरोड्रोम, वरन् श्रीनगर पर भी हो जाता, और कश्मीर का वापस लेना भारत के लिये दुस्तर हो उठता, किंतु भारतीय सौभाग्य से पाकिस्तानियों ने सोचा होगा कि जब यह सेना बारामूला

तक पहुँच गई है, तो इसका पृष्ठ-रक्षक सहायक दल अवश्य ही भारी होगा। अतएव तीन दिनों तक उसे आगे बढ़ने का साहस न हुआ, और इतने समय में भारत ने वायुयानों द्वारा सनासन भारी सेना वहाँ उतार दी, जिसने आगे बढ़कर न केवल बारामूला पर सुगमतया अधिकार कर लिया, वरन् उड़ी-पर्यंत पाकिस्तानी दल को खदेड़कर उस स्थान पर भी अधिकार जमा लिया। उड़ी के आगे अंत-पर्यंत भारत पाकिस्तान को न खदेड़ सका।

धीरे-धीरे वायुयानों द्वारा अपनी सेना तथा सामान वहाँ पहुँचते रहे, और पठानकोट से जम्मू तक जो बिना पुलों का कच्चा मार्ग था, उसे भारत ने अति शीघ्र पक्का कर लिया, तथा सारे पुल भी बना लिए, जिससे लारियों आदि के द्वारा वहाँ सेना और सामान समुचित मात्रा में पहुँचने लगे। कश्मीर की रियासत जम्मू और कश्मीर कहलाती है। गरमियों में राजधानी श्रीनगर रहती है, और जाड़ों में जम्मू। दोनो स्थान स्वास्थ्य के केंद्र हैं, और देखने में भी बड़े सुंदर लगते हैं। महाराजा की सेना में दो तिहाई हिंदू थे, और एक तिहाई मुसलमान। कुल रियासती सेना दस सहस्र थी। श्रीनगर वितस्ता (झेलम) नदी के किनारे बसा हुआ है। नदी से कई नहरें निकालकर सारे नगर में यत्र-तत्र घुमाई गई हैं। सारे नगर में लोग चाहे थल-मार्ग से आएँ-जाएँ, चाहे जल-मार्ग से। सहस्रों छोटी-बड़ी नावें नदी में चलाई जाया करती हैं, जिनका भाड़ा भी बहुत नहीं होता। श्रीनगर मानो भारत का वेनिस है। सैकड़ों मकानों के मोहरे नदी या नहरों पर भी खुलते हैं, और निर्धन लोग भी छोटी-छोटी नावें रखकर उन्हीं पर प्रायः नगर के भागों में आते-जाते हैं। अच्छी शीघ्रगामिनी नावें शिकारा कहलाती हैं, जिन पर भले आदमी भी सैर करते हैं। उन्हें दो-दो मल्लाह खेते हैं, जिन्हें हांजी कहते हैं। जिन नावों में खाना पकाने के स्थान रहते हैं, वे कुछ बड़ी होती हैं। कई सै गृह-नावें (हाउस बोट) नगर में हैं, जिनमें तीन-तीन से सात-सात, आठ-आठ तक कक्ष होते हैं। उनमें अच्छे-अच्छे क़ालीन, कुरसी, मेज आदि रहते हैं। प्रत्येक कक्ष में दो-दो, तीन-तीन खिड़कियाँ रहती हैं। पाखाने आदि के लिये एक-एक कमरा तथा कमोड होते हैं। बड़े आदमी तक उनमें पूरे आराम के साथ रहते हैं, वरन् सैकड़ों लोग वहाँ होटल आदि में रहना पसंद न करके गृह-नौकाओं में ही रहते हैं। ऐसी प्रत्येक नौका के साथ एक-एक भोजन बनाने की नाव तथा एक-एक शिकारा रहता है। बड़ी-बड़ी गृह-नौकाओं में दो-दो शिकारे भी होते हैं। हांजी अब मुसलमान

हैं, जो नाव खेने के अतिरिक्त सेवा के कार्यों में भी बड़े निपुण होते हैं। खाना भी अच्छा बनाते हैं। वहाँ हिंदुओं में सब ब्राह्मण ही होते हैं, जो 'पंडित' कहलाते हैं। कश्मीरियों में कोई अपंडित हिंदू वहाँ देखने में नहीं आता। बहुतेरे पंजाबी भी रहते हैं, जो सब पंजाबियों की बड़ी सहायता किया करते हैं। युक्त प्रांतीय, बिहारी, मध्यदेशीय आदि हिंदुओं को भी वहाँ पंजाबी ही कहते हैं। यदि कोई युक्त प्रांतीय पुरुष अपने को पंजाबी न कहे, वरन् युक्त प्रांतीय बतलाए, तो भी कहने लगते हैं कि आप पंजाब से भी दूर के होकर हैं तो पंजाबी ही, कुछ यहाँ के तो हैं नहीं। अब युक्त प्रांत उत्तर प्रदेश कहलाता है।

बड़े आदमी नदी या डल झील पर ही गृह-नौकाओं में रहते हैं। सैकड़ों नावों पर चढ़-चढ़कर फल, तरकारी, अनाज, कपड़े आदि बेचनेवाले नदी पर घूमा करते और नाववालों के हाथ सामान बेचते हैं। शाल, दुशाले आदि वहाँ बहुतायत से बनते हैं, तथा इतर ऊनी वस्त्र भी। उन्हें लोग दुकानों तथा नौकाओं पर भी बेचा करते हैं। नगर में कुछ सुंदर पार्क आदि भी हैं, तथा ट्रॉउट मछलियाँ पाली एवं बेची जाती हैं। इनका मांस बड़ा स्वादिष्ठ होता है। नगर के पास एक परमोत्कृष्ट सोता है, जिसे चश्माशाही कहते हैं। उसका पानी बड़ा सुस्वादु और लाभकार होता है। नगर के सारे महापुरुष उसी को पीते हैं। नल-कल का भी जल है, किंतु वह पीने के योग्य न होकर नहाने-धोने आदि के काम आता है। नगर के बाहर भी प्रांत-भर में यत्र-तत्र चश्मे हैं, जिनका पानी पेय तथा लाभकर होता है। जहाँ-जहाँ अच्छे चश्मे हैं, वहीं-वहीं गाँव या नगर बस गए हैं। देश में अच्छा जल-बाहुल्य है। श्रीनगर से १५-२० मील पर मुग़लसम्राट् जहाँगीर का बनवाया हुआ शालामार बाग़ है, जो अब भी दर्शनीय है। निशात बाग़ आदि कई अच्छे पार्क हैं।

डल झील नगर से मिली हुई है। उसमें भी बहुतेरी गृह-नौकाएँ पड़ी रहती हैं। बाँसों की ठठरी बिछाकर तथा उस पर थोड़ी-सी मिट्टी डालकर किसान लोग झील पर भी खेत निकाल लेते हैं। इन तैरते हुए खेतों में तरकारियाँ बोई जाती हैं। असावधानी होने से चोर रात को खेत-के-खेत नावों द्वारा रस्सी से बाँधकर खेते हुए दूर चुरा ले जाते हैं, और मालिकों को अपने खेत खोजने में कठिनाई पड़ती है। नावों पर चढ़कर सैर करने की वहाँ बहुत चाल है। कई मकानों के छज्जे नदी पर बने हुए हैं, जिनमें कमरे भी बना लिए जाते हैं। उनमें बैठने से काम करने के अतिरिक्त लोग नदी की सैर भी देखते जाते हैं। नगर में सात काठ के पुल नदी पर हैं, जिन्हें अमीरा कदल, सफा कदल, हब्बा कदल आदि कहते हैं। अमीरा कदल अब भी

पक्का पुल बन गया है, जिस पर मोटर-लारियाँ आदि भी चलती हैं। नदी से कई नहरें बा र चली जाती हैं, जिन पर होकर लोग नावों द्वारा तीन-तीन, चार-चार दिनों के लिये सैर करने जाते हैं। महाराजा के महलों का फाटक भी नदी पर खुलता है और वहाँ जानेवाले लोग नावों द्वारा भी काम-काज को जाते हैं। थल-मार्ग से भी फाटक है। अब वहाँ केवल सरकारी दफ्तर आदि हैं, और महाराजा दूसरे महल में रहने लगे हैं, जो डल झील के निकट है। चिनार के पेड़ वहाँ बहुत होते हैं। वे प्रायः बहुत बड़े तथा सघन छायायुक्त होते हैं। एक ऐसे पेड़ का तना ४५ फ़ीट के दायरे का है। देखने में पेड़ बड़ा अच्छा लगता है। नगर से अनंतनाग के मार्ग पर नदी के किनारे है। गांधारबल, गुलमर्ग, पहलगाँव आदि बड़े अच्छे और स्वास्थ्य-प्रद स्थान हैं। कई तालाब ऐसे निर्मल जल से पूर्ण हैं कि पचास-पचास फ़ीट पानी के नीचे भी पृथ्वी साफ़ दिखती है। दर्शकगण चार-चार, छ-छ की टोलियाँ बना-बनाकर सारे देश में यत्र-तत्र सैर करते हैं। नगर से दो-तीन मील नीचे वितस्ता नदी पर बंधा बना हुआ है, जिससे नदी का पानी सात-आठ फ़ीट ऊँचा हो गया है। उसके ऊपर से धारा नीचे गिरा करती है। मछलियाँ उस धारा में नीचे से ऊपर भी तैरती हुई चढ़ा करती हैं, जो दृश्य बड़ा सुंदर लगता है। वहीं किनारे पर नावों के जाने-आने को फाटक लगा हुआ है। पहले नीचे से नावें दो फाटकों के भीतर कर ली जाती हैं, और फिर ऊपर का फाटक खुलने से अति शीघ्र पानी भर जाता है, जिससे वहाँ का पानी ऊँचा होकर ऊपरवाले नदी के जल के बराबर हो जाता है, और नावें आगे चली जाती हैं। इसी भाँति फाटकों के भीतर का जल नीचा होकर नावें दूसरी ओर जाती हैं। गुलमर्ग में कुछ ऊपर चढ़ने से अलपत्थर-नामक सौ-डेढ़ सै फ़ीट गहरा स्वच्छ जल-पूर्ण तड़ाग है, जिसके नीचे का पत्थर साफ़ देख पड़ता है। समुद्र के जल से वह १३,००० से १४,००० फ़ीट तक ऊँचा है। साधारण लोग वहाँ जा भी नहीं सकते, क्योंकि उनकी साँस बंद होने लगती है। गुलमर्ग में जो धोबी का घाट है, उसका पहाड़ी दृश्य बड़ा ही सुंदर है। श्रीनगर जाने में भी मार्ग में कई सुंदर दृश्य मिलते हैं, जिन्हें देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। गांधरबल के निकट खीर भवानी का तड़ाग है, जिसका जल दिन के विविध समयों में रंग बदलता है! गांधरबल से प्रायः ५० फ़ीट की ऊँचाई पर पहाड़-ही-पहाड़ दो नहरें बनाई गई हैं, जो मीलों तक इतनी ही ऊँची चली गई हैं, तथा किसानों की सिंचाई के काम आती हैं। गांधरबल के पासवाली छोटी नदी में भी दो-चार गृह-नौकाएँ किराए के लिये

पड़ी रहती हैं। वहीं से एक दूसरी बड़ी भारी झील ऊलर के लिये नावों द्वारा नदी पर से मार्ग है। श्रीनगर से तीन दिनों का मार्ग है। वह झील भी अच्छी और बड़ी भारी कई सै मीलों की थी, किंतु अब छोटी हो गई है, तथा उसके मुहाने पर उस ओर दलदल बन गया है। लोग उसे भी देखने जाते हैं। जो लोग गृह-नौकाओं पर सैर करना चाहते हैं, वे १५-२० और हांजी किराए पर लेकर मानो सभवन तथा सकुटुंब सैर करते रहते हैं। वह सैर दिन-रात हुआ करती है। नगर में हांजियों द्वारा जब शिकारा पर सैर कीजिए, तब वे प्रायः सामान्याओं के यहाँ ले चलने की बात बिना पूछे भी कहने लगते हैं। एक बार तीन सगे भाई एक शिकारा पर बैठे जा रहे थे, तो उसी के हांजी ने कहा—"सेठ! ब्यूटी। चलें, दिखला लावें।" उन भाइयों में से एक ने कहा—"क्या बात करते हो? हम तीनों भाई हैं।" इस पर भी हांजी को लज्जा न लगी, और उसने कहा—"तो सेठ हम क्या बोला? हम तो सिर्फ़ खूबसूरती दिखलाने का बात बोला, कुछ बद-चलनी का नहीं।" नगर से प्रायः २५-३० मील पर पहलगाँव है, जहाँ एक छोटा-सा हाट लग गया है, और दो-तीन होटल भी १६३० में थे, अब अधिक हो गए होंगे। वहाँ का प्राकृतिक दृश्य बहुत सुंदर है, और वायु भी सुखद, ठंडी तीव्र गति से चला करती है। वहीं से अमरनाथ महादेव का मार्ग है। वह शिवलिंग बरफ़ का बना हुआ समुद्र-तल से प्रायः १५,००० फ़ीट की ऊँचाई पर है। मार्ग बड़ा कठिन है। थोड़ा भी चूकने से मनुष्य पचास-साठ फ़ीट गिरकर नीचे बहती हुई नदी में डूब जाय। उस नदी के ऊपर फुट-दो फ़ीट बरफ़ भी जमी रहती है, जिस पर ऊँचे से गिरने पर मनुष्य बरफ़ के नीचे नदी में अंतर्धान हो जाय, और ढूँढ़ा भी न मिले। है वहाँ बरफ़ीले पहाड़ का दृश्य बड़ा सुंदर।

श्रीनगर में लोग कारीगरी का भी अच्छा काम करते हैं। शालों आदि के अतिरिक्त चाँदी के बर्तन भी अच्छी नक़्क़ाशी के बनाते हैं, तथा अखरोट की लकड़ी पर अच्छी कारीगरी-युक्त विविध वस्तुएँ बेचने को बनाते हैं। कश्मीरियों का व्यापार भारतीयों से अच्छा लाभकर है। जो लोग वहाँ सैर करने जाते हैं, उनसे भी देश को अच्छा लाभ होता है। व्यापारी सुविधा के लालच से भी कश्मीर मुसलमान होकर हिंदुस्तान का संबंध नहीं छोड़ता। पाकिस्तान एक निर्धन तथा छोटा-सा देश है, अथच भारत बड़ा और सधन। इसीलिये व्यापार-वृद्धि के लालच से भी कश्मीर हमारा साथ नहीं छोड़ना चाहता। रावलपिंडी से श्रीनगर का मार्ग मरी तथा कोहाला होकर है। कोहाला में वितस्ता (झेलम) पर अच्छा लोहे का

पुल है, जिस पर से मोटर-लारियाँ आदि आती-जाती हैं। वहीं से पाकिस्तान छूटता और कश्मीर प्रारंभ होता है। आगे बढ़कर उड़ी, बारामूला आदि पार करने से श्रीनगर मिलता है। उधर जम्मू से श्रीनगर जाने में भी उतना ही मार्ग दूसरी ओर पार करना होता है, अर्थात् प्रायः २२५ मील। मोटर से जाने पर भी रास्ते में एक रात ठहरना होता है, जिसके लिये मार्ग में बँगले आदि अच्छे-अच्छे प्रस्तुत हैं, जहाँ आराम के सामान भी मिल जाते हैं। वहाँ कष्ट नहीं होता, केवल व्यय का प्रश्न रहता है। दोनो ओर से मार्ग में दृश्य अच्छे-अच्छे पड़ते हैं। जम्मू की ओर बड़ा ही स्वादिष्ठ तथा स्वास्थ्य-प्रद, जल-पूर्ण कुंड का चश्मा पड़ता है। वैष्णव तथा मांस-युक्त भोजन सब कहीं मिल जाता है। कश्मीर का सौंदर्य बहुत बढ़िया है। सबल पुरुष, जो घूमने-फिरने में समर्थ हो तथा आठ-दस लोगों के साथ में नौकर और डोमा लेकर चलें अथच व्यय से घबरानेवाले न हों, उनके लिये कश्मीर-यात्रा बहुत रुचिकर होगी। गांधरबल से थोड़े ही मीलों पर एक भारी तालाब है, जिसमें विविध रंगों के सैकड़ों कमल खिले रहते हैं। उस पर नावों द्वारा सैर करने में अच्छा आनंद आता है। उन्हीं से रस लेकर मधु-मक्षिकाएँ कमलमधु एकत्र करती हैं, जो खाने में बड़ा सुस्वादु तथा पौष्टिक होता है, और आँख की दवा भी है। स्थान-स्थान पर झरने, सोते, नाले आदि भरे पड़े हैं। एक बड़े कुएँ से पानी उफनाया करता है, जिससे से एक भारी पंजाबी नदी बनती है। दर्शनीय स्थान सारे कश्मीर में यत्र-तत्र भरे पड़े हैं। अच्छे सोते के निकट रहने से स्वास्थ्य-वृद्धि भी होती है। जम्मू और कश्मीर-राज्य की वार्षिक आय तो पाँच करोड़ के निकट ही होगी, किंतु यह देश भारतवर्ष का स्वर्ग है। इसकी सीमा रूसी तथा चीनी राज्यों से छूती है। उधर अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान से इसका लगाव है, और इधर भारत से भी। कहा गया है कि यदि चिड़िया का कबाब कश्मीर ले जाइए, तो उसके भी रोएँ और पखने जमेंगे, अर्थात् वह भी सजीव पक्षी हो जायगा।

जब आक्टोबर, १९४७ में भारत का पाकिस्तान से कश्मीर में युद्ध आरंभ हुआ, तब दोनो ओर से संग्राम तो प्रबल हुआ, किंतु हताहत-संख्या आधिक्य से न हुई। पाकिस्तान का विचार था कि पंजाबी लड़नेवाले तथा क़बीले बड़े बहादुर हैं, भारतीय एकाएकी उनका सामना न कर पाएँगे। फिर भी फल उल्टा हुआ। मदरासी, नैपाली तथा सिक्ख वीरों ने ऐसे प्राबल्य से युद्ध किया कि पाकिस्तानियों के दाँत खट्टे हो गए। नैपाली गोरखे तो ठंडे देश के अभ्यस्त ही

थे, किंतु अनभ्यस्त मद्रासियों का शौर्य सबके आगे निकल गया। बंगाली, युक्त प्रांतीय आदि सभी वीरों ने पुरुषार्थ दिखलाया। अपने वीरों की हताहत-संख्या पाकिस्तानियों के दशमांश से अधिक न हुई। प्रायः चौथाई कश्मीर अति शीघ्र वापस ले लिया गया, किंतु भारतीय सरकार का ऐसा विचार हुआ कि पाकिस्तान खुला-खुला तो लड़ नहीं रहा था, सो उसके अंदर घुसकर युद्धारंभ-नियमों के प्रतिकूल होगा। उधर उनके सिपाही यहाँ से दबाए जाकर पाकिस्तान में घुस जाते थे, जहाँ उन पर आक्रमण करने की आज्ञा भारत-सरकार की न थी। अतएव अपनी सेना वहाँ घुसकर युद्ध न करती थी, तथा इसके हटने से वे फिर जम्मू और कश्मीर की सीमा में घुस आते थे। प्रायः दो मास युद्ध होने के पीछे बरफ़ गिरने लगने से, घोर शीत के कारण, लड़ाई बंद हो गई, और सिपाही दोनो ओर से चार-पाँच मास जहाँ के तहाँ बने रहे। मई-जून में युद्ध फिर से प्रारंभ हो गया। पाकिस्तान के विविध स्थान कश्मीर के कई स्थानों से मिलते थे, जिससे वे लोग पश्चिमी और उत्तरी कश्मीर में यत्र-तत्र घुस आए, जहाँ अपनी सेना दुर्गम मार्गों तथा सैन्य की कमी के कारण समुचित संख्या में पहुँच न सकी। अतएव लद्दाख़-प्रांत की चार तहसीलों में से सकर्दू पर पाकिस्तान का अधिकार हो गया। वहाँ मुसलमान ही रहते भी हैं। शेष लद्दाख़ में बौद्धों की जनता है। उन पर भी पाकिस्तानी सेना ने बहुत कुछ अत्याचार किए, किंतु भारतीय सेना ने पहुँचकर उनकी रक्षा कर ली, जिससे वे लोग भारत से बहुत प्रसन्न हुए, तथा इन्हीं दिनों उनके कई महापुरुषों ने दिल्ली आकर महामंत्रीजी से प्रार्थना की कि उनका देश मुसलमानों के अधिकार में न जाने पाए। यहाँ से ऐसा ही वचन दिया गया, और समय पर महामंत्री महोदय ने वहाँ स्वयं भी जाकर उन्हें आश्वस्त किया।

मई, १९४८ के पीछे युद्ध कुछ उद्दंडता के साथ फिर से प्रारंभ हुआ, किंतु कई मास-पर्यंत कोई अच्छा फलाफल न दिखा। उधर भारतीय सरकार ने संयुक्त राष्ट्र-संघ में यह शिकायत कर दी थी कि पाकिस्तान क़बीलों की सहायता करके भारतीय प्रांत कश्मीर में अनुचित आक्रमण करा रहा है। उन दिनों भारत का बाह्य शक्तियों से व्यवहार बहुत श्रेष्ठ न था। पाकिस्तान प्रकट में ब्रितानिया का डोमीनियन (उपनिवेश) बना रहने को प्रस्तुत दिखता था। इधर भारत स्वतन्त्रता घोषित करने जा रहा था, अथच रूस से भी अच्छा व्यवहार बढ़ाने का उत्सुक समझ पड़ता था। अतएव अमेरिका, ब्रितानिया तथा उनकी मित्र शक्तियाँ पाकिस्तान की ओर

गुप्तभावेन विशेष झुकती थीं, यद्यपि प्रकट में तटस्थता दिखला रही थीं। पाकिस्तान ने बड़े ज़ोर के साथ कहा कि क़बीलों के आक्रमण से वह नितांत असंबद्ध था, और उसकी गुप्त सहायता इस मामले में कहना उसके साथ घोर अन्याय था। उस काल संयुक्त राष्ट्र-संघ का निर्णय कुछ-कुछ पाकिस्तान की ओर झुकता था। पाकिस्तान ने यह भी प्रपंच उठाया कि भारत ने मुसलमान-जाति को निर्मूल करने के जाति-वधकारी प्रयत्न किए थे। उसने अपने सारे पापों को छिपा डाला, और पहले स्वयं जो-जो जन-संहारक कृत्य किए थे, उनको नाहीं द्वारा टालकर भारत पर जाति-वध का दोष लगाया, जिसका कोई फल न निकला। यह भी समझा जाता है कि पाकिस्तान बिर्तानिया की ही गुप्त सहायता से कश्मीर में भारत से इतना लड़ सका, नहीं तो कुछ भी न कर पाता। यह संदेह-मात्र है। धीरे-धीरे भारत का बिर्तानिया और अमेरिका से श्रेष्ठ व्यवहार बढ़ गया है, और अपने को स्वतंत्र कहते हुए भी वह बिर्तानिया के संबद्ध राजमंडल (ब्रिटिश कामनवेल्थ) में सम्मिलित हो गया है। इन बातों से रूस से भारतीय व्यवहार अपने न चाहते हुए भी शैथिल्य की ओर चला गया है। पाकिस्तान को आशा थी कि ब्रिटिश राजमंडलवाले समारोह में वहाँ के लोग भारत से अधिक अपनपौ पाकिस्तान से दिखलाएँगे, किंतु फल इससे नितांत विपरीत हुआ। आज-कल पाकिस्तानी मुस्लिम लीग खुले-खुले बिर्तानिया के प्रतिकूल हो रही है। वहाँ के महामंत्री नवंबर, १९४९ में रूस जानेवाले थे, किंतु फिर नहीं गए; इधर भारत के प्रधान मंत्री श्रीनेहरू अमेरिका के अध्यक्ष के निमंत्रण पर अमेरिका हो भी आए, जहाँ उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। यहाँ तक प्रभाव हुआ कि अमेरिका के कई प्रमुख विशेषज्ञों ने खुले-खुले यह प्रस्ताव किया कि नेहरूजी को विश्व-शांति-समस्या के लिये मध्यस्थ बनाया जाय। आजकल संयुक्त राष्ट्र-संघ में भारत का प्रभाव अच्छा बढ़ रहा है। राष्ट्र-संघ से पाँच देशों के अधिकारियों का एक कमीशन कश्मीरी मामला निबटाने को भारत आया था, और मेल कराने के प्रयत्न कर रहा था। तो भी युद्ध चल रहा था। उसमें नवंबर, १९४८ में भारत ने जोजीला घाटी को पाकिस्तान से छीन लिया। उसी मास में बड़ी युक्ति-पूर्वक जीतकर ३६,००० वर्ग मील भूमि पर अधिकार कर लिया गया। अनंतर कमीशन के प्रयत्नों से युद्ध-शांति की बात दृढ़ हुई, और जनवरी, १९४९ के आरंभ से संग्राम शांत हो गया है। इन्हीं दिनों वर्तमान अधिकारों के अनुसार सीमाबंदी भी हो गई है। दक्षिण से पश्चिम होती हुई उत्तर तक एक गोट-सी कश्मीरी भूमि पाकिस्तान को

मिली है, और शेष भारत को। अंदाज़ से समझा जाता है कि कश्मीरी क्षेत्रफल का तृतीय भाग पाकिस्तान ने पाया है, और दो भाग भारत ने। पहले से भारत ने कह रक्खा था कि यद्यपि महाराज तथा जनता के महामंत्री ने कश्मीर भारत से संबद्ध कर दिया था, तथापि जन-मत से भी दृढ़ करके भारत इसे पुष्ट करेगा। अब पाकिस्तान इसी बात पर अड़ा हुआ है। इधर भारत का कथन है कि भारतीय इस वचन से पाकिस्तान का कोई संबंध नहीं है, क्योंकि वह प्रजा को दिया गया था। भारत का कहना है कि जब तक सारे कश्मीर पर प्रजा का अधिकार होकर सारी जनता वहाँ सुख-पूर्वक न बस लेगी, तब तक ठीक जन-मत कैसे प्राप्त समझा जा सकता है? उधर पाकिस्तान अपने अधिकारवाली कश्मीरी भूमि तो छोड़ना नहीं चाहता, किंतु संयुक्त राष्ट्र-संघ के अधिकारियों द्वारा जन-मत वोट द्वारा प्राप्त ही करना चाहता है। पाकिस्तानी आक्रमणों से प्रायः पाँच लाख कश्मीरी जनता बाहर भाग गई है, तथा जो भाग पाकिस्तानी अधिकार में हैं, वहाँ की जनता मत प्रदान में स्वतंत्र नहीं कही जा सकती। जब कमीशन ने पहले जन-मत का निर्णय किया था, तब यह मान लिया था कि सारा कश्मीर महाराजा के आधिपत्य में रखकर जन-मत लिया जायगा। अब पाकिस्तान के अपना अधिकार न छोड़ने से वह बात नहीं हो सकती। इसीलिये यह मामला झमेले में पड़ा हुआ है। अमेरिकन जल-सेनापति निमिज़ महोदय तटस्थ व्यक्ति के रूप में जन-मत का प्रबंध करने को चुने जा चुके हैं, किंतु उपर्युक्त मामले निर्णीत न होने से पूरा प्रश्न झगड़े में पड़ा हुआ है। इधर कश्मीर-कमीशन झगड़ा निबटाने में असक्षम होकर वापस चला गया, और उसने संयुक्त राष्ट्र-संघ में अपनी रिपोर्ट पेश करके कश्मीरी मामले को निबटाने के लिये पंच-नियुक्ति का सुझाव दिया है। अब भी कश्मीर का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र-संघ में पेश है, और उसी के संबंध में कश्मीर के प्रधानमंत्री शेख़अब्दुल्ला तथा भारत के परराष्ट्र-विभाग के प्रधानमंत्री सर गिरिजाशंकर वाजपेयी अमेरिका हो आए हैं। कश्मीर-विवाद को सुलझाने के लिये सर कोवेन डिक्सन संयुक्त राष्ट्र-संघ की ओर से मध्यस्थ नियुक्त हुए हैं। आप भारत आकर कश्मीर-विवाद को सुलझावेंगे। कश्मीर के महामंत्री शेख़ अब्दुल्ला महोदय सबको निश्चय दिला रहे हैं कि कश्मीरी मुसलमानों ने भारत में सम्मिलित होने का निर्णय बहुत सोच-समझकर किया है, और वे अपने निर्णय पर दृढ़ हैं। उधर कुछ लोगों को संदेह है कि यद्यपि वे लोग हैं भारत के अनुकूल, तथा भारत ने उन्हें बचाया, अथच पाकिस्तान ने लूटा है, तथापि जब मुसलमानों की ओर से गीता और क़ुरान के बीच में किसी को चुनने को कहा जायगा, और धार्मिक

विषयों पर अनुचित हठ किया जायगा, तब बहुतेरे मुसलमान सम्मतिदाताओं (वोटरों) का विचल जाना भी संभव है। जो हो।

इधर कलकत्ते से पलटकर हमारे शुक्लजी देश-सेवा के भाव से कश्मीर भी पधारे। इस बार आपने नवाब शमशुल हसनैनी साहब को भी समझा-बुझाकर कश्मीर ले जाना उचित समझा। नवाब साहब यद्यपि भारतीय अधिकार को कश्मीर के संबंध में आशा-युक्त नहीं समझते थे, तथापि राजभक्ति के कारण भारतीय मामला पुष्ट करने को गए वहाँ अवश्य। इस बार शुक्लजी सेठजी से प्रार्थना करके अरिंदम चटर्जी के इच्छानुसार उन्हें भी साथ ले गए। तीनो सज्जन श्रीनगर में एक बढ़िया गृह-नौका भाड़े पर लेकर उसी में ठहरे। भोजनादि के लिये उसके साथ नाव होती ही है। सेवक-वर्ग उचित संख्या में पास थे, सो किसी को कोई कष्ट नहीं हुआ। जनता में मिल-भेंटकर ये तीनो व्यक्ति उनकी भारत से भक्ति बढ़ाने के प्रयत्न करने लगे। वहाँ मुसलमानों की दो टुकड़ियाँ हैं। जिनमें से, एक तो शेख़ अब्दुल्ला की पूरी अनुयायी है, दूसरी कुछ अनिश्चित-सी। एक दिन नवाब साहब उन्हीं मुसलमानों की एक भारी सभा एकत्र करके शुक्लजी तथा चटर्जी महोदय को साथ लेकर व्याख्यान देने लगे—

भाइयो और बहनो! आज मैं हिंदोस्तान से आकर आप साहबान को अपना हाल बतलाकर मुतमैयन करने हाज़िर हुआ हूँ। हम लोग हिंदोस्तान में निहायत ख़ुश-खुर्रम हैं, किसी तरह का कोई जब्र या ज़ुल्म मुसलमानों पर नहीं है। ख़ुद महात्मा गांधी ने हमीं लोगों के बचाने की कोशिश में जान तक दे दी। उनके बराबर और किसी पर हिंदुओं का एतक़ाद न था। हम मुसलमान लोग भी उन्हें जान से ज़ायद अज़ीज़ रखते थे। उन्होंने हमेशा हिंदू-मुसलमानों को मिलकर चलने का अक़ीदा सिखलाया। इन दिनों कई जगहों पर हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए, लेकिन क़रीब-क़रीब सब झगड़े मुसलमानों की जानिब से ही शुरू हुए। इस बयान की तस्दीक़ें कलकत्ता, नोआखाली, इलाहाबाद और मग़रबी पंजाब के झगड़े हैं। बिहार और मुक्तेश्वर के झमेले जवाबी थे, इब्तिदाई नहीं। फिर क़ाबिले-ग़ौर बात यह है कि हिंदोस्तान ने कहीं हमला नहीं किया, मगर पाकिस्तान ने खास आप ही लोगों को लूटने में कसर न लगाई। हैदराबाद पर हमारा जो हमला हुआ, उसमें भी कई बार समझाने-बुझाने के पीछे भी जब निज़ाम साहब राज़ी न हुए, और लड़ाई की तैयारियाँ करके अस्लहा मुहैया करने लगे, तभी मजबूर होकर हिंदोस्तान ने धावा किया। भाइयो! हमारी जानिब से कभी कोई मुक़ाम

लूटा नहीं गया। आप लोगों का रोजगार हिंद से जमाना बिसियार से चलता आया है। अगर आप साहबान हमारा साथ छोड़ें, तो अपने ही को नुक़साने-अज़ीम पहुँचाइएगा, न कि हमको, क्योंकि जो माल हम ऊनी आपसे ख़रीदते हैं, वह जरूरी न होकर महज़ आराम पहुँचानेवाला है, उसके बग़ैर हमारा काम दूसरे तरीक़ों से आसानी से चल सकता है। लकड़ी, चाँदी वग़ैरा का माल जो आप लोग बनाते हैं, वह भी इसी तरीक़े का है। आपके शाल वग़ैरा योरप में भी नहीं बिकते। उनके खरीदार हमीं हिंदोस्तानी लोग हैं। समझने की बात है कि पाकिस्तान ने तो आपके ऊपर हमला किया, और लूट-मार मचाई, मगर जब तक आप ही ने बुलाया नहीं, तब तक हिंदोस्तान ने अपनी तरफ़ से कुछ भी न किया। हिंद में अमीरों की तादाद बहुत होने व नीज़ मुल्क के भारी होने से आपके माल की खपत हमेशा से बहुत होती आई है, और वहाँ के सैयाह बिसियार तादादों में यहाँ आते रहे हैं, और आज भी हैं, जिससे आपकी रियासत को फ़ायदा अज़ीम होता है। ये बातें पाकिस्तान के एक छोटा-सा ग़रीब मुल्क होने के बायस उससे आपको हासिल नहीं हो सकतीं। बहुतेरे लोगों ने इस मामले में मज़हबी सवाल उठाकर आपके सामने यह बात रक्खी है कि गीता और क़ुरआन शरीफ़ में से आप किसे अपनाइएगा ? मेरा कहना यह है कि यह मज़हबी सवाल ही नहीं है। आप मज़े में क़ुरआन शरीफ़ को पकड़े रहिए। गीता अपनाने को आपसे कहता ही कौन है ? यहाँ तो हिफ़ाज़त की मज़बूती और रोज़गार के सवालात हैं। साफ़ ज़ाहिर है कि हिंदोस्तान भारी ताक़त होने से आपकी हिफ़ाज़त बहुत उम्दगी से कर सकता है, जो बात पाकिस्तान से हासिल नहीं हो सकती। फिर रोज़गार भी आपका हमीं को अपनाने से अच्छा चल सकता है, पाकिस्तान से नहीं। हिंद ने आज तक किसी को लूटा नहीं है। उधर पाकिस्तान पाकीज़गी की डींग मारता हुआ भी आप के माल व औरतों को बिला वजह लूटे बैठा है, और मौक़ा पाने से कल भी छोड़ न देगा। क़बीलों का काम लूटने के बग़ैर चल ही नहीं सकता। पहाड़ी मुल्क होने से उनके मुल्क में न तो काफ़ी पैदावार हो सकती है, न उनकी आदत अनाज पैदा करने या रोज़गार चलाने की है। जब तक अमीर हिंदू उधर बसे हुए थे, तब तक उन्हें हत्तुल इम्कान हमेशा लूटते रहे। जब से वे चले गए हैं, तब से क़बीले मुसलमानों को भी लूटने लगे हैं। मैं पूछता हूँ कि आप लुटेरों की मातहती में ख़ुश-ख़ुर्रम रह सकते हैं, या रिआया-परवर हिंद में ? हमारे मुल्क ने हैदराबाद को शिकस्त ज़रूर दी, मगर वहाँ के लोगों में से हिंदुओं की तो बात ही क्या है, मुसलमानों तक

को लूटा या मारा नहीं। अब भी हिंद का कहना था, और है कि जब तक कश्मीरी लोग खुद खुशी से हमसे मिलना न चाहेंगे, तब तक हम उन पर हुक्मरानी न करेंगे। यही बात हिंद ने हैदराबाद और जूनागढ़ के बाबत कही थी। उधर पाकिस्तान जबरदस्ती कश्मीर पर क़ब्ज़ा करने आया था, और है। भाइयो और बहनो! अब आप ही समझ लीजिए कि आपके लिये कौन रास्ता फ़ायदेमंद है? पहले हमीं यू० पी० के मुसलमानों ने पाकिस्तान के बनाने में निहायत सरगरमी से कोशिश की, मगर अब खुद अपनी ऐसी ग़लती पर पछता रहे हैं। हम लोगों को पाकिस्तान बनने से फ़ायदा तो कुछ भी न हुआ, उलटे अपने ही मुल्क में हुक्मराँ लोगों को शक करने के काफ़ी वजूहात मिले कि हम हिंद के खैरख्वाह नहीं हैं। तो भी हमारे साथ कोई जुल्म रवा नहीं रक्खा जाता, बल्कि हमारी इज्ज़त आज भी हिंदुओं के बराबर हो रही है। अँगरेज़ों ने हिंदू-मुसलिमों में तफ़र्क़ा डालने के खयाल से ज़माना सलफ़ में हम लोगों की खातिर ज्यादा की। वह बात तो अब क़ायम रह नहीं सकती, मगर अपनी तादाद के मुताबिक़ ओहदे हमें अब भी मिल रहे हैं। भाइयो और बहनो! इन्हीं वजूहात से मैं समझाता हूँ कि आपके लिये हर तरीक़े से हिंद के साथ मिलने में फ़ायदा है।"

इस प्रकार नवाब साहब ने अपना व्याख्यान समाप्त किया। श्रोतागण इससे बहुत ही प्रसन्न हुए, और बीच-बीच में करतल-ध्वनि करते तथा 'हियर' कहते रहे। इसी प्रकार भारतभूषणजी तथा अरिंदम चटर्जी भी व्याख्यान देते तथा लोगों से मिल-मिलकर उन्हें समझाते रहे।

द्वादश परिच्छेद

क़बीलों की दशा और ग्रंथ की समाप्ति

क़बीलों ने पाकिस्तान की सहायता से कश्मीर पर जब धावा किया, तब पहले तो धार्मिक जोश में आकर पंजाबी और कुछ कश्मीरी, कुछ मुसलमानी सेना ने उनसे मिलकर अपने ही देश के प्रतिकूल उन्हें सहायता दी। जब हिंदुओं के साथ वे लोग मुसलमानों तक को लूटने लगे, तब इन देश-द्रोही सैनिकों को पछताने का दिन आ गया। जब भारतीय सेना ने लुटेरों के दल का डटकर सामना किया, तब सारी कश्मीरी जनता ने इनका प्रसन्नता-पूर्वक स्वागत किया। भारतीय सैनिकों ने कश्मीरियों को न केवल कोई कष्ट न दिया, वरन् सब प्रकार से उनकी सहायता की। फिर भी दोनो ओर के भेदिए छिप-छिपकर दोनो ओर का पता लेते रहे। जब भारतभूषणजी शुक्ल ने सब ओर घूम-फिरकर कश्मीरी जनता को पूर्ण चोप के साथ सुबुद्धि का उपदेश दिया, तब इसका पता पाकर क़बीलों का इनके प्रतिकूल क्रोध आधिक्य से भभका। इनको इस बात का पता तो चला नहीं, सो ये न केवल यत्र-तत्र उपदेश देते रहे, वरन् नवाब साहब तथा चटर्जी के साथ घूम-घामकर कश्मीरी सुंदर दृश्यों की सैर भी करते रहे। एक बार श्रीनगर से कुछ दूर गुलमर्ग देखने आप लोग पधारे। वह स्थान उन्हीं की ओर है ही, सो कुछ क़बीलों का सामना हो गया। वे लोग नवाब साहब तथा चटर्जी को न तो पकड़ना चाहते थे, न ये दोनो उनके निकट थे। दुर्भाग्य-वश शुक्लजी अपने साथियों से कुछ दूर निकल गए थे, और पंद्रह-बीस क़बीलों ने इन्हें पकड़ लिया। दो-तीन को इन्होंने खड्ग से मारा भी, किंतु उनके जन-बल के आगे आप स्वतंत्र न हो पाए, तथा इन्हें लेकर वे भाग गए। इनके दोनो साथियों ने उतनी बड़ी शत्रु-संख्या के सामने छुड़ाने का सक्रिय प्रयत्न अपनी शक्ति के बाहर समझा। चटर्जी महोदय ने नवाब साहब को वहीं ठहरने की सलाह देकर युक्ति-पूर्वक वेष बदलकर शुक्लजी का शोध लगाना निश्चित किया। प्राचीन समय में आतंकवाद के कार्यों द्वारा आपको ऐसे कामों में अनुभव सम्यक् प्रकार से था ही। इधर आप झटपट एक मुस्लिम फ़क़ीर बनकर क़बीलों का शोध लेते हुए चले, और उधर नवाब साहब गुलमर्ग में अपनी पार्टी के सेवकों से मिलकर उन्हीं

के साथ श्रीनगर चले गए। चटर्जी ने इनसे यह कह रक्खा था कि वे प्रति सप्ताह सेवकों आदि द्वारा इन्हें अपने समाचार देते तथा इनसे संदेश लेते रहेंगे। नवाब साहब को देश पलट जाने की भी सम्मति चटर्जी ने दी थी, किंतु इन्होंने यह पसंद न किया था, वरन् तीनो साथियों का साथ-ही-साथ पलटना इन्हें अच्छा लगा।

भारतभूषणजी शुक्ल शत्रुओं के हाथ में पड़कर अपने साधारण गांभीर्य के कारण घबराए नहीं, वरन् देखने में प्रसन्न रहकर यथासाध्य छूटने के डौल-डाल सोचने लगे। क़बीलों ने इनके साथ विशेष क्रूरता का व्यवहार तो किया नहीं, तथापि स्वाभावशः क्रूर होने से उनके अधिकार में इन्हें न्यूनाधिक कष्ट था ही। ये जंजीर से बँधे रहते थे, तथा साधारण रोटी और शोरबा-मात्र इन्हें भोजन को मिलता था। उन डकैतों ने इन्हें कुछ लोगों के साथ अपने देश भिजवा दिया, क्योंकि कश्मीर में सहायकों द्वारा इनके छूटने का भय था। जब चार-छ दिनों तक इन्होंने न तो छूटने का कोई प्रयत्न किया, न किसी बात पर हठ किया, तब उन लोगों ने इन्हें सीधा-सादा बंदी समझकर साधारणी निगाह रखकर इनके बंधन के संबंध में कोई विशेष प्रबंध नहीं किया। समय पर आप क़बीलों के सर्द पहाड़ी देश में पहुँच गए। दस-पंद्रह दिनों तक वहीं बंधन में बने रहे। शत्रुओं ने इनसे कहा था कि एक लक्ष रुपए यदि इनके साथी देते, तो इनका मोचन हो सकता था। इन्होंने धन-संबंधी असमर्थता बतलाकर अपने को केवल राजनीतिक कार्यकर्ता बतलाया, और कहा कि सरकार इनके लिये क़बीलों को धन देने का अपयश उठाना कभी न चाहेगी, तथा स्वयं इनके पास धनाभाव था। इस प्रकार शीघ्रता-पूर्वक छूटने की कोई बात न चली। क़बीलों ने समझा कि यदि बंदी सधन होगा, तो बंधन के कष्टों से छुटकारा पाने को आप-से-आप धन की बात चलाएगा। यद्यपि इनकी अवस्था प्रायः ४८ साल की थी, तथापि देखने में आप ४०-४२ वर्षों के ही लगते थे, और शारीरिक सौंदर्य में भी न्यूनता न आई थी। उन लोगों की औरतें घर का काम करके घूमने-फिरने तथा विविध कार्यों के संबंध में बाहर भी जाया करती थीं। जिस कुटुंब में आप बंदी थे, उसकी एक बीस वर्षीया परम रूपवती कन्या इन पर मुग्ध हो गई, किंतु इतरों के भय से कभी कोई बात इनसे कहती न थी, केवल उनसे छिपाकर इन्हें चोरी से सुस्वादु भोज्य वस्तुएँ नित्यप्रति देने लगी थी। पहले तो आप उन लोगों की भाषा पश्तो न जानते थे, किंतु फ़ारसी में कुछ अभ्यास होने से कुछ ही दिनों

में पश्तो भी कुछ-कुछ समझने लगे, तथा अपने साधारण भाव इतरों पर प्रकट करने की क्षमता इनमें आ गई। तब धीरे-धीरे उस नवयौवना से इनकी कुछ-कुछ बातें भी अकेले में यथावसर होने लगीं। उसके प्रेम का हाल जानकर इन्होंने उसे बहुत समझाया कि इन्हें उससे वैवाहिक संबंध स्थापित करने में आपत्ति न थी, किंतु अपने अन्नदाता के घर में धोखे की बात चलाना न चाहते थे। यद्यपि थे आप बंदी, तथापि उसके लवणभोगी होकर उसकी लाज नहीं भुलाना चाहते थे। इस विषय पर एक दिन अवसर पाने से उस नवोढ़ा से इनसे यों वार्तालाप हुआ—

नवोढ़ा—"पंडितजी! हैं तो आप क़ैदी, फिर इस क़दर नमकहलाली के क़ायल क्यों हैं?"

भारतभूषण—"देवीजी, एक तो मैं आपके पिता का लवणभोजी हो ही चुका हूँ, और यद्यपि युद्ध करने में संकोच नहीं करता, तथापि धोखा देना ठीक नहीं समझता। यदि यह बात आवश्यकता से अधिक भद्रत्व-पूर्ण मानूँ, तो भी आप तो उनकी कन्या हैं, तथा आपके ऊपर उनके साथ पूर्ण भद्रत्व का व्यवहार बाध्य है ही।"

नवोढ़ा—"यह तो मेरे चाल-चलन की बात है, न कि आपके। आपके साथ हमारे ख़ानदान ने कोई अच्छा बर्ताव न तो किया है, न आज कर रहा है।"

भारतभूषण—"जब आप मेरी रक्षा में आना चाहती हैं, तब क्या मैं यह संबंध आपके अनुचित कृत्यों के साथ आरंभ करूँ? आप लोग एक उजाड़ प्रांत में रहने के कारण लूट-मार के अभ्यस्त हो गए हैं, किंतु अन्य आचरणों द्वारा अपने जिरगों के नियमों का पालन उत्तमता से करते हैं। रहने को समुचित संख्या में घर तक नहीं हैं, और अधिकतर निवासियों को गिरि-गुफाओं और कंदराओं में रहना पड़ता है। तो भी डेढ़-डेढ़ हाथ लंबे व्यास की गोल रोटियाँ आप लोग बनाते हैं, जो चार-चार अंगुल तक मोटी होती हैं। फिर भी उनके खंड स्वादिष्ठ बहुत होते हैं।"

नवोढ़ा—"उनमें कई अच्छे-अच्छे मसाले पड़ते हैं, जिससे ज़ायक़ा अच्छा हो जाता है। वे पत्थरों पर आग जलाकर सेंकी जाती हैं। तीन बाँसों के सहारे लोहे के तारों से पूरा बकरा टाँग दिया जाता है, और सख़्त आँच से पकता है।"

भारतभूषण—"उसका भी स्वाद बड़ा अच्छा रहता है। भोजन आप

लोग कई प्रकार के अच्छे-अच्छे बनाते हैं। है तो आपकी सभ्यता बीहड़ पहाड़ी, किंतु नियम-पालन में कमी नहीं है। अच्छा, जो मैंने आपसे माता-पिता के साथ कर्तव्य-पालन के विषय में कहा, उस पर आपका क्या विचार है?"

नवोढ़ा—"बात तो आपकी मुनासिब है, मगर वाल्दैन तो आपके साथ मेरे बर्ताव को पसंद करेंगे नहीं, फिर मुदआबरारी का क्या तरक़ा हो?"

भारतभूषण—"एक बात मुझे और कहना है कि मेरी अवस्था ४८ साल की है, और आपकी केवल २० वर्ष की। ऐसी दशा में आपके साथ मेरा विवाह कुछ अशोभित-सा लगेगा।"

नवोढ़ा—"देखने में तो आप इतने बड़े मालूम नहीं पड़ते। ३६-४० के समझ पड़ते हैं।"

भारतभूषण—"है मेरी वास्तविक अवस्था ४८ वर्ष की।"

नवोढ़ा—"तो भी मैं अपनी राय पलटना नहीं चाहती। मर्दों की असली उम्र वही है, जितने बड़े वे मालूम हों, और औरतों की वही असली उम्र है, जैसा कि वे अपने को समझें।"

भारतभूषण—"मैं धोखा देकर आपको फँसाना नहीं चाहता हूँ। यदि वास्तविक बातें जानकर भी आप संबंध को प्रस्तुत हैं, तो मुझे नाहीं थोड़ा ही करनी है। इतना तो भी जाने रहिए कि अवस्था में मेरा पुत्र भी आपसे दस-पाँच वर्ष बड़ा है।"

नवोढ़ा—"आप मोहब्बत से पीछे हटने की-सी बातें क्यों करते हैं?"

भारतभूषण—"ऐसा न सोचिए देवीजी! मैं केवल धोखे में आपको नहीं डालना चाहता। प्रेम में न्यूनता नहीं है।"

नवोढ़ा—"सच-ही-सच कहते हैं न?"

भारतभूषण—"सत्य-ही-सत्य बिनती करता हूँ।"

नवोढ़ा—"तब फिर निकलने की तरकीब सोचिए। मदद मैं पूरी करूँगी ही।"

भारतभूषण—"है तो इस प्रयत्न में आपका माता-पिता से विद्रोह।"

नवोढ़ा—"जब वे आपके साथ बेजा बर्ताव कर रहे हैं, और मेरी मोहब्बत की भी क़द्र न करेंगे, ऐसा यक़ीन है, तब मुझे भी आपके बचाने में देरा क्यों हो?"

भारतभूषण—"कुल बातें सोचकर मैं भी यह बात ठीक समझने लगा हूँ। अच्छा, यह बतलाइए कि निकलने की युक्ति क्या है? यहाँ से बचकर चल

देना तो सुगम है, किंतु रास्ता कई दिनों का होने से मार्ग में पकड़ न लिया जाऊँगा, इसका क्या भरोसा है ?"

नवोढ़ा—"यही तो मुश्किल है। सोच-समझकर कोई तदबीर निकालनी होगी।"

इस प्रकार नवोढ़ा हश्मतजान से प्रेम जोड़कर भारतभूषणजी बच निकलने की युक्तियाँ सोचने लगे। उधर क़बीलों का एक भेदिया फ़क़ीर बनकर नवाब शम्शुलहसनैनी के पास पहुँचकर भारतभूषण के विषय में धन लेकर छोड़ाने की बात करने लगा। नवाब साहब को ज्ञात था कि यह लोग धोखा देकर हैसियत जानने के प्रयत्न किया करते हैं, जिससे उन्होंने अपना ग़रीब होना बतलाया, तथा भारत-भूषण से कोई विशिष्ट संबंध न कहकर धन व्यय करने की अपनी तत्परता से भी इनकार किया। फिर भी इतना कहा कि दो-चार सहस्र पर मामला यदि निर्णीत हो जाय, तो उनकी स्त्री से कह-सुनकर संभवतः बात पक्की हो सके। उनके छूटने के स्थान के संबंध में कोई बात निश्चित न हो सकी, क्योंकि जितने धन से नवाब साहब ने मामला सुलझाना चाहा था, उतने से क़बीलों को संतोष न हुआ। वे लोग अपने देश में भी बाहर निकलकर अनाज लूटने का प्रयत्न कम करते हैं, और धन तथा शस्त्रास्त्र पाने को उत्सुक रहते हैं। नवाब साहब को आशा थी कि दो-चार दिनों में वह फ़क़ीर फिर से आएगा, किंतु वह फिरकर उनके पास न गया। इन्होंने भारतीय सामरिक विभाग में शुक्लजी के पकड़े जाने की बात कही, तथा छोड़ाने के प्रयत्नों पर बड़ा हठ किया, किंतु वे लोग युद्ध में संलग्न रहने से ऐयारी के कामों में कोई विशेष सहायता न दे सके, और साधारण ही सहायता देने की बात रही।

इधर अरिंदम चैटर्जी शुक्लजी के प्रगाढ़ मित्र होने के अतिरिक्त किसी समय आतंकवादियों तथा साहसियों के नेता रह चुकने के कारण ऐसी बातों और युक्तियों में परम प्रवीण थे, तथा पश्तो भाषा के अतिरिक्त मुसलमानी धर्म एवं क़बीलों की रस्मों से भी पूर्णतया अभिज्ञ थे। पहले तो वेष बदलकर आप यत्र-तत्र बहुत फिरे, किंतु इन साधारण प्रयत्नों से जब शुक्लजी का पता न लगा, तब आप मुसलमान फ़क़ीर बनकर उन्हीं के देश में फिरने लगे। आपने मुसलमान उपदेशक का रूप धारण करके धर्म-शिक्षण का कार्य उठाया, और यत्र-तत्र घूमते-फिरते जनता में घुल-मिलकर गंभीर गुप्तभावेन शुक्लजी का पता लगाने में मन लगाया। आप ऐसी उत्तमता से पश्तो बोलते और मुस्लिम धर्म पर ऐसा प्रगाढ़ अधिकार रखते थे कि किसी को रंचक संदेह न होता था कि आप क़बीलों ही में से नहीं थे। थोड़ों

और कंदराओं में भी प्रसन्नता-पूर्वक ठहरते थे, और वहीं के एक स्थान को अपना मूलनिवास बतलाते थे। सियालकोट में कई साल रह चुके ही थे, सो वहाँ के मामलों से पूर्णतया अभिज्ञ थे। वहीं के एक प्रसिद्ध शाह साहब को अपना पीर बतलाकर निर्द्वंद्वता-पूर्वक देश में सब कहीं फिरते थे। वहाँ के अनेकानेक जिर्गों में आपसी लड़ाई भी प्रायः हुआ करती थी। वे लोग अतिथि-सत्कार बहुतायत से करते थे, यहाँ तक कि यदि उनका कोई मित्र उनके गाँव में जाकर उनका अतिथि न बने, तो उससे इसी बात पर लड़ाई हो जाय। यदि किसी वंश के किसी मनुष्य को किसी ने कभी मारा हो, तो जब तक उसका बदला न ले लिया जाय, तब तक उस कुटुंब को चैन नहीं होती। प्रायः दो मास यत्र-तत्र घूम-फिरकर इन्होंने दाढ़ी, मूछ तथा अन्य बाल भी बहुत बढ़ा लिए थे, जिससे किसी को और भी संदेह नहीं हो सकता था। उधर अपनी प्रेमिका की सलाह से भारतभूषणजी ने भी केश बढ़ाकर मुसलमानों का-सा रूप बना लिया था। अरिंदम चटर्जी बातों-ही-बातों उन लोगों का पता युक्ति-पूर्वक लगाया करते थे, जो किसी के यहाँ बंदी हों। कई ऐसे बंदियों से आप मिले भी। उनके यहाँ पहुँचने में आपको एक-एक, दो-दो सप्ताह तक व्यय करने पड़े, किंतु अंत में विफलता ही हुई। इतने पर भी आपने हिम्मत न छोड़ी, और धर्मोपदेशक के रूप में अपना अन्वेषण-कार्य दत्त-चित्तता-पूर्वक चलाया। अंत में एक दिन आप घूमते-फिरते उस स्थान पर भी पहुँच गए, जहाँ हमारे शुक्लजी बंदी थे। अरिंदम को देखते ही आपकी बाछें खिल गईं तथा वह भी पूर्णतया प्रसन्न हुए। शुक्लजी की प्रेमिका ने पहुँचा हुआ पीर समझकर अरिंदम का मान किया, तथा जब शुक्लजी के द्वारा इनका वास्तविक हाल जाना, तब वह और भी प्रसन्न हुई। सारे जिर्गे ने इन्हें पहुँचा हुआ पीर समझकर बड़ा मान किया, तथा ध्यान-पूर्वक उपदेश सुने। अनंतर इनसे हश्मतजान के पिता की बातें होने लगीं। उसका नाम मुहम्मद था।

मुहम्मद—"जनाब पीर साहब! मेरी बेटी हश्मतजान आपके मज़हबी इल्म से बहुत खुश हुई है। इसे मैंने एक अच्छे मौलवी के ज़रिए मज़हबी तालीम भी दिलाई है।"

पीर—"यह बात जानकर मैं बहुत शाद हुआ। वाल्दैन का फ़र्ज़ है कि हत्तलइम्कान औलाद को मज़हबी तालीम दिलावें। मेरा तो अक़ीदा है कि अगर कोई एक बार दिल लगाकर मआनी समझता हुआ क़ुरआन शरीफ़ को पढ़े, तो मुमकिन नहीं कि उसकी हिदायात को दिलोजान से मानने न लगे।"

मुहम्मद—"यही बात है, पीर साहब ! आपसे मिलकर मैं बहुत ही शाद हुआ हूँ। अगर हुक्म हो, तो एक अर्ज़ भी करूँ ।"

पीर—"ज़रूर फ़र्माइए, खान साहब !"

मुहम्मद—"इन दिनों कश्मीर लूटने को हम लोगों के बहुतेरे जिर्गे गए, मगर अपने क़बीले काम तो हज़ारों की तादाद में आ गए, ताहम लूट काफ़ी हाथ न आई। कम-से-कम अपने हाथ कोई अच्छी दौलत न लगी। अगर आपकी इनायत हो, तो मुमकिन है कि कुछ कामयाबी हो जाय।"

पीर—"है तो बात आपकी मुनासिब। मैंने आपकी दुख़्तर बलंद इक़बाल हश्मत खान को देखते ही समझ लिया कि उसका सितारा बलंद है ! अगर मेरी हिदायत के मुताबिक़ वह सिर्फ़ पाँच योम इबादत करे, तो फ़तेह यक़ीनी हो जाय।"

मुहम्मद—"इसमें क्या मुश्किल है ? शाह साहब ! अगर मुमकिन हो, तो आज ही से इबादत शुरू करा दीजिए।"

पीर—"ऐसा ही होगा। मैं समझता हूँ कि उसमें वह ताक़त आ जायगी कि उसी के हुक्म के मुताबिक़ काम करने से फ़तेहयाबी यक़ीनी होगी।"

मुहम्मद—"बड़ी ही मेहरबानी हुई, जनाब शाह साहब ! उम्मीद है कि जनाब भी ऐसे मौक़ों पर हम लोगों के हमरकाब रहने की इज़्ज़तबख़्शी फ़र्माएँगे।"

पीर—"ज़रूरत तो मेरी न रहेगी, क्योंकि आपकी दुख़्तर में ही काफ़ी क़ूवत मज़हबी हो जायगी। ताहम अभी बच्चा है; मुमकिन है कि कोई ग़फ़लत न कर जाय या इबादत का असर कभी कम हो जाय, ऐसे मौक़ों के लिये मैं भी साथ रहूँगा, जिसमें नाकामयाबी की बात न हो। दरहक़ीक़त मैं तो ख़ुदापरस्ती में ज़्यादातर मशग़ूल रहता हूँ, और दुनियाबी मामलात की तरफ़ कम तवज्जह देता हूँ। फिर भी हश्मतजान की मज़हबी तरक़्क़ी व नीज़ आपकी मज़हब-परस्ती से मैं ऐसा ख़ुश हो गया हूँ कि एक बार आपकी मदद इस मामले में ज़रूर कर दूँगा।"

मुहम्मद—"मैं शाह साहब का बहुत ही मशकूर व ममनून हुआ। ऐसी ही मेहरबानी हमेशा क़ायम रहे।"

पीर—"ख़ान साहब ! ऐसी बातों के क़याम से मेरा मज़हबी काम बिगड़ेगा। ज़्यादा दिनों तक साथ रहने की बात मैं नहीं कर सकता, मगर इस बार दस-बारह दिनों की कोशिश ज़रूर कर दूँगा।"

मुहम्मद—"जसी मर्ज़ी पीर साहब की। फ़ुक़रा से ज़्यादा; ज़िद करने का हम लोगों को अख्तियार ही क्या है ? उम्मीद है कि जब तक मेरी दुख्तर की तबियत होगी, तब तक जनाब मेरे ही मेहमान रहना मंज़ूर फ़र्मा सकेंगे ।"

पीर—"ऐसा तो होगा ही। लड़की को इबादत सिर्फ़ एक घंटा रोज़ करनी होगी। बाक़ी वह ख़ुदमुख्तार रहेगी । चाहे मुझसे कोई मज़हबी बातें सीखे या दीगर काम करे।"

मुहम्मद—"जैसी आपकी मर्ज़ी होगी, वैसा ही करेगी। बड़ी ही नेकबख्त लड़की है, और कभी पाबंदी हुक्म में दरेग़ नहीं करती।"

पीर—"ऐसा तो मैं उसे देखकर ही समझ गया था।"

इस प्रकार वार्तालाप के पीछे यह समाज भंग हुआ, और हश्मतजान तथा भारत-भूषण से बातचीत करके आपने सारे मामले गुप्तरीत्या निश्चित कर लिए। पाँच दिनों तक दोनो से भली भाँति मंत्र करके सारी बातें अंतिम रूप में भी दृढ़ हो गईं । अनंतर हश्मत के पिता मुहम्मदख़ाँ को बुलवाकर शाह साहब (अरिंदम चटर्जी) बात करने लगे।

पीर—"ख़ाँ साहब ! अब आपकी बेटी इबादत में पक्की हो गई है । अब इन्हीं के हुक्म की पाबंदी से मतलबबरारी हो सकेगी।"

मुहम्मद—"आप ही शाह साहब ! इससे बात चलाइए, तो मेहरबानी होगी।"

पीर—"ख़ाँ साहब ! अब इन्हें इससे न फ़र्माकर इनसे कहिए । इस वक़्त इनका शुमार मजज़ूबों में है, और दस-बीस दिनों के लिये दर्जा मुझसे भी बढ़ा हुआ है ।"

मुहम्मद—"ख़ता मुआफ़ फ़रमाइएगा । जनाब पीर साहब ! अच्छा, बेटी जान ! अब आपका क्या इर्शाद है ? किस तरह से हम लोगों को चलना चाहिए ?"

हशमतजान—"अब्बाजान ! करीब पचीस जवान हज़ारा और अबटाबाद होते हुए मुज़फ़्फ़राबाद पहुँचें। शाह साहब के साथ मैं भी चलूँगी । आपका यह क़ैदी भी साथ होगा। इसी के इशारे से सब काम चलेगा। हालाँकि है यह आपका दुश्मन, मगर मेरे इर्शाद से पचीस दिनों तक पूरा दोस्त विहीख्वाह रहेगा। इस ज़माने के बाद फिर क़ैद कर लिया जायगा, क्योंकि उस वक़्त इसकी असली हैसियत दिमाग़ी फिर से इसे वापस हो जायगी।"

मुहम्मद(बंदी से)—"क्यों क़ैदी साहब ! आप हम लोगों के साथ चलने व

मदद करने को तैयार हैं ? खूब समझ-बूझकर बात कीजिएगा ।"

भारतभूषण—"मैं तो, जहाँ तक याद पड़ता है, हमेशा दिलोजान से आपका बिहीख्वाह था, और रहूँगा।"

मुहम्मद—"यह तो अब अपनी जबान भी नहीं बोलता, शाह साहब !"

पीर—"दिमाग़ी असर की बात है, खान ! (भा० भू० से) तो चलने को तैयार हो न ?"

भारतभूषण—"तामील अहकाम में गुरेज भी क्या मुमकिन है ? अभी मुजफ्फराबाद चलिए।"

मुहम्मद—"वहाँ के आगे चलकर हमें दौलतमंद लोगों का पता बताइएगा न ?"

भारतभूषण—"जो हुक्म होगा, उसकी तामील करूँगा। वहाँ से आगे बढ़कर कोटली होते हुए पूँच पर छापा मारना होगा।"

मुहम्मद—"वह मुक़ाम तो दुश्मनों के जरिए खूब महफ़ूज़ है।"

भारतभूषण—"बी साहबा के हुक्म से सारे दुश्मन पामाल हो जायँगे; मुक़ाबला कौन कर सकता है ?"

मुहम्मद (पीर से)—"जनाब शाह साहब ! आपकी क्या राय है ?"

पीर (बी साहबा से)—"बेटा ! अपना हुक्म फर्माइए; मैं क्या कह सकता हूँ ?"

हश्मतजान—"अब्बाजान ! आपका क़ैदी मुताबिक़ मेरे इर्शाद के अर्जदाश्त कर रहा है। कोई फ़िक्र नहीं है।"

इन बातों से प्रसन्न होकर यह जिर्गा पाकिस्तान के द्वारा प्रबंध किए हुए वाहनों पर सवार हो-होकर मुजफ्फराबाद होते हुए यथासमय कोटली पहुँचा। वहाँ से हश्मतजान के हुक्म के मुताबिक़ शाह साहब आगे बढ़कर शत्रुओं की खोज लेने चले, और दो-तीन दिनों का समय पलटने के लिये लेकर युक्ति-पूर्वक भारतीय सेना से जा मिले, तथा नियत समय के लिये वाहनादि का उचित प्रबंध करके फिर जिर्गे में वापस आए। हश्मतजान की इच्छा अपने पिता अथवा जिर्गेवालों का वध करवाने की न थी, अतएव इनके पलटने पर उसने पिता के सम्मुख वार्तालाप आरंभ किया।

हश्मतजान—"शाह साहब ! पूँच तो आप देख आए होंगे। उधर का क्या हाल है। ?"

पीर—"वहाँ, बेटा ! इस वक़्त दस हजार के क़रीब फ़ौज है, ऐसा भेदियों के जरिए से जाहिर हुआ है। बंदूकें, मशीनगनें, तोपें वग़ैराह सब मुहैया है।"

हश्मतजान—"उसके अंदर जाकर अपनी आँख से भी सब कुछ देख आए हैं या नहीं ?"

पीर—"देख तो आया हूँ। जनाब के इक़बाल से किसी ने टोका नहीं, मगर सलाम वग़ैरा भी न किया। इतना तअज्जुब हुआ।"

हश्मतजान—"मेरी चद्दर लिए गए थे या नहीं ?"

पीर—"वह तो नहीं ले गया था, बेटा!"

हश्मतजान—"तब तो बच आए, यही बहुत कुछ है। चलिए, कल मैं खुद क़ैदी को साथ लेकर चलूँगी, और सारा इंतज़ाम लैस कर आऊँगी। परसों ही क़ब्ज़ा अपना शहर पूँछ पर हो जायगा। कोई मुक़ाबला नहीं हो सकेगा।"

मुहम्मद—"बेटी जान! कहीं खुद भी परेशानी में न पड़ जाना।"

हश्मतजान—"ऐसा नहीं हो सकता, अब्बाजान! कोई ख़ौफ़ नहीं है। काफ़ी दौलत परसों तक ही हाथ लगेगी।"

मुहम्मद (पीर से)—"क्यों शाह साहब! क्या राय है?"

पीर—"अगर बी साहबा का हुक्म सायब न होता, तो मैं ही दुश्मनों में घुसकर कैसे वापस आने पाता। कोई ख़ौफ़ नहीं है। आप मुतमइयन रहिए।"

मुहम्मद (बेटी से)—"तो, बेटा! यही हुक्म है न ?"

हश्मतजान—"ठीक है, अब्बाजान! आप ख़ौफ़ न कीजिए; मेरा मुक़ाबला फ़ौज नहीं कर सकती। अभी दस-बारह दिनों तक लासानी हूँ, यही हुक्म खुदाई है; पीछे से फिर शाह साहब की मदद से इबादत करनी पड़ेगी, तब यही ताक़त फिर हासिल होगी। अभी दस-बारह दिनों तक बेख़ौफ़ हूँ।"

मुहम्मद—"तब फिर ऐसा ही हो, बेटीजान! ज़रा होशियार रहना।"

हश्मतजान—"ऐसा ही होगा, अब्बाजान!"

इस प्रकार वार्तालाप करके दूसरे दिन पीर साहब तथा भारतभूषण को साथ लेकर हश्मतजान चल पड़ी। तीनो घोड़ों पर सवार थे। दो ही घंटों में पहले से स्थिर हुए स्थान पर तीनो पहुँचे, और भारतीय सेना की संरक्षकता में होकर आगे बढ़े, तथा यथासमय पीर श्रीनगर पहुँचकर गृह-नौकाओं में नवाब साहब से मिले। भारतभूषण और अरिंदम चटर्जी को देखकर नवाब साहब अत्यंत प्रसन्न हुए, और दोनो से गले मिले। उनके द्वारा हश्मतजान का भी हाल जानकर उनसे भी दुआ देते हुए मिले, और सब लोग यथापूर्व अपनी गृह-नौकाओं में रहने लगे। उधर जिर्गे का स्वामी मुहम्मद दो-तीन दिनों तक इन लोगों की राह

देखकर इनके न पलटने से बहुत चिंतित हुआ। अनंतर दो-चार दिनों में क़बीलों का वही भेदिया, जो नवाब साहब से पहले मिला था, इन सबको वहीं देखकर कोटली पलट गया, तथा मुहम्मद की सेवा में उपस्थित होकर उसने उन्हें पूरे हाल की विज्ञप्ति करा दी। यह दशा सुनकर अपनी ही बेटी के शत्रुओं से मिलने तथा पिता को धोखा देने से वह अत्यंत अप्रसन्न हुआ, और पाँच होशियार क़बीलेवाले फ़क़ीर बनकर श्रीनगर गए। मुहम्मद भी उनमें एक था। इनके पास हथियार थे अवश्य, किंतु छिपाकर रक्खे गए थे। इधर कश्मीर में अपना कार्य समाप्त समझकर भारतभूषणजी अपने तीनो साथियों तथा सेवकों-सहित पठानकोट के लिये दो मोटरों पर रवाना हो गए थे। जब क़बीलों ने यह हाल जाना, तब वे भी एक तीव्रगामिनी मोटर पर पठानकोट चले। भारतभूषण कुड के बँगले में दोपहर को ठहरे थे, वहीं ये पाँचों क़बीलेवाले भी पहुँचे। दैव-वश हश्मतजान एक नौकर के साथ कुड की सैर को निकल गई थी। जब वह पलटी, तब क़बीलों ने दूर ही से देखकर उस पर गोली चला दी। लक्ष्य-भेदन में ये लोग अत्यंत निपुण होते ही हैं, सो बेचारी हश्मतजान मरकर वहीं गिर पड़ी। चटर्जी महोदय तथा भारतभूषण ने कुछ दूर से यह दशा देखी, और तीन क़बीलेवाले फ़क़ीरों को खड़ा पाया, जिनमें मुहम्मद भी एक था। यह देखकर इन दोनो ने भी बंदूक़ों के निशाने साधे, और उनमें से दो लोग मरकर वहीं गिर पड़े, जिनमें मुहम्मद भी एक था। तीसरा भाग गया, किंतु इन्हें निश्चय था कि साथियों को उठाने शेष क़बीलेवाले अवश्य आवेंगे, अतएव नवाब साहब के भी साथ ये तीनो लोग वहीं छिपे हुए बंदूक़ें लिए बैठे रहे। दो-डेढ़ घंटों में इनका परिश्रम सफल हुआ, और तीनो क़बीलेवाले आकर अपने साथियों को उठाने लगे। तुरंत तीनो बंदूक़ें दगीं, और वे तीनो क़बीले भी समाप्त हो गए। अनंतर सेनावालों को विज्ञप्ति कराई गई कि शत्रुओं में से पाँच स्त्रीहंता समाप्त हो गए थे। नियमानुसार उनके शव गाड़े गए, तथा हश्मतजान का भी शव अत्यंत आदर के साथ दफ़नाया गया, तथा उसके ऊपर शुक्लजी ने उचित स्मारक बनाने का प्रबंध करा दिया। इन्हें बड़ा ही शोक हुआ कि एक प्रेमवती उपकारिणी महिला इन्हीं की रक्षा में गत हो गई। नवाब साहब और चटर्जी ने इन्हें बहुत समझाया, तथा दो दिन और कुड में रहकर ये लोग यथासमय पठानकोट पहुँचे, और वहाँ से रेल द्वारा लखनऊ सकुशल पहुँच गए।

पंडित भारतभूषणजी अपने कुटुंब से मिलकर प्रसन्न हुए। इनकी मित्रता

नवाब शम्शुलहसनैनी से सदैव वृद्धिगत होती रही। सेठ कपूरचंदजी, अरिंदम चटर्जी, अयोध्याप्रसादजी आदि से भी इनका मित्र-भाव सदैव उन्नतिशील रहा। राजा शैलेंद्रकुमारजी का कुटुंब तो मानो इनसे मिलकर एक ही हो गया था। कपूरचंदजी तथा माधवीबाई के दोनो पुत्रों को आप सदैव स्वपुत्रों के समान मानते रहे। इनके सुपुत्र वसुधाभूषणजी को चंद्रकुमारीदेवी से तीन पुत्र और एक कन्या यथासमय प्राप्त हुईं। राजा इटौंजा का अदालती काम शुक्लजी सदैव बिना फ़ीस लिए कर दिया करते थे। तो भी हठ करके आधी फ़ीस वह दे ही देते थे। कलकत्ते में भी यदा-कदा आ-जाकर अपने मित्र चटर्जी महोदय से भी मिल आया करते थे। आपके बेटे वसुधाभूषणजी की भी बैरिस्टरी अच्छी चलने लगी थी। क्षत्रिय पुत्री से अपने पुत्र का विवाह जो आपने किया था, उससे कुछ बिरादरीवालों ने अप्रसन्न होकर इन्हें छोड़ दिया था, किंतु धीरे-धीरे बिरादरीवालों तथा संबंधियों में से भी बहुतेरे इनसे मिल गए। उनका मान आप सदैव यथायोग्य करते रहते थे।